पुराणों में गंगा

सकलनकर्त्ता तथा अनुवादक
श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

सम्पादक
श्री दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

सवत् २००९
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

मूल्य
तीन रुपये आठ आने मात्र

मुद्रक—रामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

सम्पादकीय वक्तव्य

सवत् १९८९ मे श्री गगाजी के पवित्र तट पर मुझे गगाजी के सबध मे एक पुस्तक लिखने की प्रेरणा हुई और मैने सामग्री एकत्रित करना आरभ किया। गगाप्रेमी सज्जनो के सहयोग से यह कार्य सवत् १९९८ मे समाप्त हुआ और 'गगारहस्य' के नाम से यह पुस्तक धर्मग्रथावली द्वारा प्रकाशित हो गयी। पुराणो से श्री गगाजी के सबध मे सामग्री एकत्रित करने का कार्य मैने श्री रामप्रतापजी त्रिपाठी शास्त्री को सौपा था। शास्त्री जी ने यह कार्य बडे लगन और परिश्रम के साथ कर दिया। परन्तु उनकी सब सामग्री का उपयोग 'गगारहस्य' मे न किया जा सका। दस वर्ष तक यह सामग्री मेरे पास पडी रही।

गत वर्ष जब मै सम्मेलन का साहित्य मत्री मनोनीत किया गया तब मैने सम्मेलन द्वारा इस सकलन को प्रकाशित किये जाने का अनुरोध किया और सम्मेलन के अधिकारियों ने इसे प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। उचित सशोधन के साथ अब यह सामग्री प्रकाशित की जा रही है।

हमारे पुराण ज्ञान के भडार है। शायद ही ऐसा कोई विषय हो जिसके सबध मे पूर्ण ज्ञान पुराणों मे न प्राप्त हो सके। इस ज्ञान का उचित उपयोग करने के लिये यह आवश्यक है कि पुराणों से प्रत्येक विषय के सबध मे सामग्री एकत्रित कर ली जाय। इसी उद्देश्य से श्री गङ्गाजी के सबध मे सामग्री एकत्रित करके प्रकाशित की जा रही है। यदि हिंदी प्रेमी सज्जनो ने इस सग्रह को पसद किया तो अन्य विषयों के सबध मे भी सामग्री एकत्रित करके प्रकाशित कर दी जावेगी।

श्री दुबे निवास
दारागज, प्रयाग
अक्षय तृतीया २००९

दयाशंकर दुबे

विषय-सूची

[माहात्म्य खण्ड]

[उत्पत्ति खण्ड]

[स्तुति खण्ड]

[परिशिष्ट]

भूमिका

भारतीय सस्कृति और सभ्यता के उत्कर्ष की चर्चा करते हुए श्री गगाजी के महत्त्व को गौण कारण नही कहा जा सकता। वह न केवल हमारे ही देश की सब से महान ओर पवित्र नदी है किन्तु विश्व की सर्वश्रेष्ठ नदियो मे अपने अनेक विशिष्ट गुणो के कारण वह सर्वप्रथम स्थान रखती हे। जिस प्राचीन भारतीय सभ्यता और सस्कृति की चर्चा करते हुए आज भी हम अपने अतीत का गौरवपूर्वक स्मरण करते हे, उस सभ्यता और सस्कृति को सर्वलोकोपकारिणी बनाने मे श्री गगाजी की लहरो ने ही सर्वप्रथम मानव-हृदय को मगलमयी प्रेरणा दी थी। हमारे इस विशाल देश के पावन जीवन मे गगा की निर्मल धारा कल्पनातीत प्राचीनकाल से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हिन्दुओ के लिए तो वह धरती पर बहकर भी आकाशवासी देवताओ की नदी हे ओर इस लोक की सुख-समृद्धियो की विधात्री होकर भी परलोक का सपूर्ण लेखा-जोखा सवाचने वाली हे।

शरीर को यदि अन्नमय कहा जाय ओर कृषि कर्म को अन्न का मूल स्रोत माना जाय तो शायद गगा ही एक ऐसी नदी है जो हमारे देश भर मे सबसे अधिक अन्न देनेवाली अन्नपूर्णा हे। कृषि कर्म सदा से मानव जाति की सस्कृति का मूलाधार रहा हे और कृषि कर्म का आधार रही हे नदियाँ और इन नदियो मे हमारे देश मे गगा ही एक ऐसी रही हे जिसकी घाटी मे सर्वप्रथम कृषिकर्म का श्रीगणेश किया गया था। यही कारण है कि कृषिप्रधान भारत भूमि मे गगा एक देवी के रूप मे मानी जाती हे। समस्त ससार की सभ्य जातियो के आदिम इतिहास मे कृषिप्रधान नदियो मे देवत्व की कल्पना की गयी है। प्राचीन मिस्र निवासी अपने देश की घाटी नदी 'नील' को 'हापी' नामक देवता के रूप मे पूजते थे ओर ईराक निवासी 'सुमेरीयन' ओर 'बेबोलीनियन' अपनी प्यारी नदियो —'दजला' और 'फरात' की देवरूप मे उपासना करते थे। इसी प्रकार पुराणो तथा अन्य आचार ग्रन्थो मे गगा की भाति ही अन्य अनेक नदियो के सबध मे देवीरूप की अनेक कथाएँ तथा चर्चाएँ की गई हे। हमारे इस कथन की पुष्टि इस बात से भी होती हे कि हमारे पूर्वजो मे भी केवल उन्ही नदियो के देवरूप होने की चर्चा विद्यमान थी, जो कृषिकर्म मे विशेष सहायक रही। परिमाण, जलराशि तथा अन्य विशेषताओ के कारण कुछ ऐसी भी नदियाँ हे, जिनकी गणना दिव्य-श्रेणी मे की जा सकती थी किन्तु उनके सबध मे सभी पुराण तथा धर्मशास्त्र मौन है। मेरा तात्पर्य ब्रह्मपुत्र, महानदी आदि नदियो से हे जो गगा-यमुना अथवा गोमती से किसी प्रकार मानव-हित-साधन की दृष्टि से न्यून नही हे।

सैकडो बडी नदियो से भरे हुए हमारे देश मे जिन सात नदियो को महत्ता दी गई है, वे हे, गगा, यमुना, सिन्धु, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा तथा कावेरी। स्पष्ट ही गगा इनमे सर्वश्रेष्ठ हे। यद्यपि इन सातो नदियो मे अब सरस्वती नदी सूख गई हे और उसकी धारा तथा बहनेवाले प्रदेश के सबध मे भी सदेह होने लगा है किन्तु कोई ऐसा समय था, जब सरस्वती की अगाध महिमा थी। सहस्रो वर्ष हुए, जब उसकी धारा धरती पर से अन्तर्हित हो गई किन्तु उसके माहात्म्य की चर्चा हम आज भी बड़े पवित्र मन से करते है। इसका कारण यह हे

कि उसी सरस्वती के पावन तट पर हमारे मन्त्र-द्रष्टा ऋषियो की वह पावन वाणी प्रस्फुटित हुई थी जो आज सहस्रो वर्षों के बाद भी उसी भाँति समूचे देश मे व्याप्त-सी दृष्टिगोचर हो रही है। जब तक वेदो की एक भी ऋचा धरती पर रहेगी तब तक सरस्वती की उस विलुप्त धारा का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण अवश्य किया जायगा।

भारत की नदियो मे पवित्रता एव माहात्म्य की दृष्टि से गगा का स्थान सर्वोच्च कोटि का है। इतना ही नही अपने अनेक गुणो के प्रभाव से वह विश्व की श्रेष्ठतम नदी है। गगोत्री से लेकर गगा-सागर तक उसके सैकडो तीर्थों तथा अजस्रवाहिनी पावनधारा मे जितने नर-नारी पशु-पक्षी तथा कीट-पतग अपना ऐहिक और पारलौकिक कार्य चलाते है उतनी सख्या सभवत विश्व की किसी महानदी को नही प्राप्त है। जो लोग नित्य गगा मे स्नान करने का पुण्यावसर नही निकाल पाते वे केवल दर्शन करने अथवा स्पर्श एव आचमन करने के लिए थोडा-सा गगा का जल ले जाकर अपने घरो मे रखते है। और ऐसे लोगो की सख्या करोडो मे है। यहाँ तक तो बात कुछ समझ मे आती है किन्तु उन लाखो-करोडो धार्मिक व्यक्तियो की अगाध श्रद्धा पर विचार करते समय विस्मय विमुग्ध होना पडता है जो स्नान-पूजनादि के समय गगाजल के अभाव मे केवल गगा का नामस्मरण करते है। इस प्रकार प्रति दिन इस विशाल देश मे करोडो व्यक्तियो द्वारा सस्मृत, ध्यानावस्थित, पूजित, मज्जित और पीत गगा की महिमा की समानता भला विश्व मे कौन नदी कर सकती है? यही कारण है कि कल्पनातीत प्राचीन काल से लेकर आज तक गगा की महिमा मे हमारे साहित्य का जितना अचल भरा गया है, उतना किसी अन्य नदी की महिमा से नही। सहस्रो वर्षो की उसकी अपार महिमा देश के कण-कण मे व्याप्त हो गई है ओर ऐसा मालूम पडता है कि आधुनिक युग के नवीनतम विश्व-आश्चर्यकर आविष्कार 'ऐटम बम' की इस चकाचौंध मे भी उसकी लहरो की चमक छिपनेवाली नही है ओर विज्ञान की समस्त चुनौतियो को स्वीकार कर भारत की धरती पर अनन्त काल तक इसी भाँति वह अपनी अध्यात्म चेतना की अविरल धार बहाती ही जायगी। वैज्ञानिक भले ही सीसी बोतलो मे भरकर नई-नई खोज करके यह सिद्ध करे कि उसमे हिमालय की ओषधियो का विचित्र प्रभाव है जो उसके जल मे कीटाणु नही पडते किन्तु धार्मिक लोगो की वह पुण्यसलिला भगवान् विष्णु के पद से निकलने के कारण समस्त ऐहिक और पारलौकिक व्याधियो को हरनेवाली बनी ही रहेगी। गगा के तट-वासियो को नये वैज्ञानिको की इस खोज से कुछ विशेष प्रेरणा नही मिलेगी, वे तो अनादि काल से यह मन्त्र याद करते आये है कि—

गगा तारयति वै ुसा दृष्टा, पीताऽवगाहिता।

अर्थात् गगा का दर्शन करने, पान करने तथा अवगाहन करने से मनुष्य तर जाता है। उसके जल मे पापो एव रोगो को नाश करने की अमोघ शक्ति है। उसकी पावन धारा की कलकलमयी स्वर लहरी को सुन कर पापी का हृदय भी थोडी देर के लिए किसी दूसरे भाव मे मग्न हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक ही चोपाई मे गगा के सबध मे वह सब कुछ कह दिया है, जो परम प्राचीनकाल से हमारे पूर्वज कहते आए है ओर जो भविष्य मे नवीनतम विज्ञान के प्रकाश मे उत्पन्न होने वाली हमारी भावी पीढियाँ सैकडो-सहस्रो वर्षो के बाद गगा के सम्बन्ध मे कहेगी।

गग सकल मुद-मगल मूला।
सब सुख करनि हरनि सब सूला।

सचमुच हमारे देश मे समस्त आनन्द-मगल की विधायिनी, सुख समृद्धि की प्रदायिनी और समस्त ऐहिक-पारलौकिक आपदाओ की विनाशिनी गगा के समान कोई अन्य नदी नही है। गगा को हिन्दू लोग माता कहते है। माता के समस्त पालक गुण गगा मे विद्यमान है। यही कारण है कि हिन्दू मात्र की सब से बडी कामना इसी बात की होती है कि वे अन्त समय मे अपनी प्यारी माता की गोद मे ही अपना चिर शयन करे ओर उसके शरीर के कण कण उसकी माता के ही जल-कण मे विलीन हो जायँ।

गगा की यह अगाध महिमा चिरकाल से वाङ्मयी भारतीय प्रतिभा को प्रेरणा देती रही है। आदि कवि वाल्मीकि ने ही नही, ऋग्वेद के ऋषियो से ले कर आज तक के कवियो तक की कल्पना शक्ति को गगा की पावन-तरगो ने ही सजीवता प्रदान की है। गगा की इस अलौकिक आनन्ददायिनी महिमा मे अवगाहन करने का मोह विधर्मी कवियो की वाणी भी नही सवरण कर सकी है। हमे आज कविवर रसखान का यह सवैया देख कर आश्चर्य होगा कि अगणित नरमुण्डो की बलि दे कर पाकिस्तान बनाने वाले जिन्ना की बिरादरी मे भी गगा की कितनी अगाध भक्ति थी। रसखान कहते है—

बैद की औषधि खाऊँ कछू न करौं व्रत सजम री ! सुनु मोसे।
तेरो इ पानी पियौ 'रसखानि' सजीवन लाभ लहौ सुख तोसे।।
एरी ! सुधामयी भागीरथी ! कोउ पथ्य-कुपथ्य करै तउ पोसे।
आक धतूरे चबात फिरै विष खात फिरै सिव तोरे भरोसे।।

शिव की मृत्युञ्जयता मे भागीरथी के भरोसे को देखने वाले अकेले मुसलमान रसखान ही नही थे, रहीम, नाज, मीर आदि की सूक्तिया भी हृत्तन्त्री को झनकारने मे बडी सशक्त है। सनातन हिन्दू धर्म मे तो ईश्वर की सत्ता के अनन्तर धरती पर गगा से बढ कर कोई आराध्य नही है, किन्तु बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायो मे भी गगा की पवित्रता एव आध्यात्मिक शक्ति की विचित्रता को स्वीकार किया गया है। वह केवल शारीरिक एव भौतिक सतापो को शान्त करने वाली नही मानी गयी है प्रत्युत आन्तरिक एव आध्यात्मिक शान्ति का अविनाशी बीज भी उसकी चचल तरगो मे बहता चला आ रहा है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने गगा जी के सबध मे हिन्दुओ की बद्धमूल सास्कृतिक धारणा का निम्नलिखित सवैये मे अच्छा निरूपण किया है—

ब्रह्मको व्यापक वेद कहै, गम नाहि गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन-दुनी को।।
सोइ भयो द्रव-रूप सही जु है नाथ विरचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देव-धुनी को।।

अखिल ब्रह्माण्ड व्यापक, अग-जग के विधाता, पोषक एव सहारक, ब्रह्मा एव शकर के नाथ एव दीन-दुनिया के स्वामी ब्रह्म के द्रव रूप भागीरथी की महिमा हिन्दुओ के मानस-पटल पर एक विचित्र प्रभाव डालती है। कोई भी हिन्दू उसे नदी के रूप मे न तो देखता है न दूसरो के मुख से सुनना ही चाहता है। उसकी अतिम कामना यही रहती है कि मृत्यु के समय उसके मुख मे एक बूद भी गगा जल कही से पड जाय। कठोर नास्तिक हिन्दू का हृदय भी गगा तट पर पहुँच कर एक बार अपूर्व भावनाओ से भर जाता है। भले ही उसे वह अपनी कमजोरी अथवा अपने हृदय पर पडे प्राचीन पारिवारिक वातावरण के सस्कारो की छाप माने, किन्तु गगा की लहरो मे ऐसा प्रभाव है अवश्य। और यह प्रभाव कोई वैष्णव युग का नही है, वेदकाल से ही इसका प्रमाण मिलता है। पुराणो मे तीनो आदि देवो (ब्रह्मा,

विष्णु और महेश्वर) का गगाजी से निकट सम्बन्ध बताया गया है। भगवान् विष्णु के पद नख से प्रसूत हो कर वह ब्रह्मा के कमण्डलु और शिव की जटा मे विराजमान बतायी गयी है। इसका कारण यही है कि गगाजी के साथ होने से हिन्दुओ के किसी भी देवी-देवता की महत्ता मे चार चाँद लग जाते है। हरद्वार और प्रयाग का गगाजल ले जा कर रामेश्वरम के शिव लिग पर चढाने की पुरानी प्रथा आज भी बद नही हुई है। प्रति वर्ष सैकडो-सहस्रो धार्मिक पुरुषो एव पण्डे-पुरोहितो का यही कर्त्तव्य परम्परा का रूप धारण करता चला आ रहा है।

वेदो और पुराणों मे गगा का माहात्म्य

पुराण तो गगा के माहात्म्य एव कथाओ से पटे पडे है, किन्तु वेदो मे गगा का वह स्थान नही है। उनमे सिन्धु और सरस्वती को वही स्थान दिया गया है, जो पुराणो मे ग गा को प्राप्त है। जैसा कि ऊपर भी बताया जा चुका है, ऋग्वेद मे गगा का उल्लेख केवल दो बार आता है (ऋग्वेद, १०, ७५, ५ और ६, ४५, ३१)। किन्तु वैदिक साहित्य के दूसरे अगो मे गगा की पर्याप्त चर्चा है। शतपथ ब्राह्मण के १३, ५, ४, ११, जेमिनीय ब्राह्मण के ३, १८३ और तैत्तिरीय आरण्यक के २, १० मे गगा का उल्लेख किया गया है। वेदो मे गगा की यथेष्ट चर्चा न होने एव सिन्धु तथा सरस्वती की महिमा बारम्बार गाने का कारण यह था कि वैदिक काल मे आर्यो का मुख्य निवास स्थान पजाब और सिन्धु प्रान्त मे था, जहाँ सिन्धु और सरस्वती प्रवहमान थी। गगा की घाटी मे उनका आगमन बाद मे हुआ, उस समय वे गगा को जानते अवश्य थे किन्तु उसकी अनेक विशेषताओ एव माहात्म्यो से कम परिचित थे। किन्तु कुछ काल बाद जब वे पूर्व और दक्षिण की ओर बढे और गगा की उर्वरा घाटी मे पदार्पण किया तो वे गगा की अपार महिमा मे चमत्कृत हो गए। यह पुराणो का काल था। यही कारण है कि पुराणो मे गगा के समान किसी अन्य नदी का वर्णन नही किया गया है और सिन्धु तथा सरस्वती को तो पुराणो मे प्राय भुला ही दिया गया है।

कुछ पुराणो मे गगा की पावन कथा एव माहात्म्य का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। ब्रह्म पुराण एव वृहन्नारदीय पुराण मे तो अनेक अध्यायो मे गगा की ही चर्चा की गयी है। किन्तु ब्रह्म पुराण की कथा मे वह एकरसता, अन्विति तथा प्रबधात्मकता नही है जो वृहन्नारदीय पुराण की कथा मे है। यही कारण है कि सकलनकर्त्ता ने इस सग्रह मे वृहन्नारदीय पुराण की उक्त कथा को ही प्रधानता दी है और अन्य पुराणो की स्फुट-कथाओ को छोड दिया है। जिन पुराणो तथा उपपुराणो मे गगा की चर्चा की गयी है, उनके नाम ये है—ब्रह्म पुराण (८, ७१, ७३, ७४, ७५, ७६, ७८, ९०, १०५, १०७, ११९, १७२, १७३, १७४ और १७५ अध्याय) पद्मपुराण (स्व० ख० १६, उ० ख० २३) विष्णुपुराण (८, ४) शिव पुराण (ज्ञान सहिता ५३, ५४ अध्याय), मत्स्य पुराण (१०५ अध्याय), श्रीमद्भागवत (१९, १७), देवी भागवत (३, ४, ६, ७, १, ५, ६, ७, ११, १२, १३, १४), वृहन्नारदीय पुराण (६—११, १६, ३८–४३), मार्कण्डेय पुराण (५६), अग्नि पुराण (७०, ७१, ७२), ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति खण्ड ६, १०, ११, १२, गणेश खण्ड ३, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ३४, ३५), लिग पुराण (पूर्व भाग ५२), वराह पुराण (१७१), भविष्य पुराण प्रथम भाग (२१-२२), द्वितीय भाग (१७), स्कन्द पुराण (देव काण्ड दक्ष खण्ड २१-२५), षष्ठ सौर सहिता ६–३०, अम्बिका खण्ड, १२६–१२८, काशी खण्ड, २७, २८, २९, रेवा खण्ड, १२, ३४, अवन्ती खण्ड ४६, ७३, नागर खण्ड तीसरा परिच्छेद २२, २३, ५५, ५६, प्रभास खण्ड १६६, १८६, ब्रह्माण्ड पुराण (४९) तथा वामन पुराण (३८), वृहद् धर्म पुराण इन सभी स्थलो पर गगाजी के सम्बन्ध मे जो भी कथाए आई है, उन सब की एक-रसता वृहन्नारदीय पुराण की कथा मे है। केवल देवी भागवत की कथा कुछ अपनी विशेषता

रखती है, जिसमे केवल कथा का चमत्कार मात्र उपादेय है। जहाँ तक माहात्म्य का सम्बन्ध है, वह तो सभी पुराणो म प्राय समान है।

आदि कवि वाल्मीकि के रामायण मे गगाजी की विपुल महिमा है। उसमे केवल पौराणिक रूढियो को ही स्थान नही दिया गया है, प्रत्युत उसकी कथा का काव्य-सौन्दय ओर भाव पक्ष भी अधिक पुष्ट एव मनोरम है। गगा की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भी आदि कवि ने अपने सरस कवि-हृदय का सुन्दर परिचय दिया है। वे गगा को हिमवान की पुत्री मानते है और उनकी माता का नाम मेनका बतलाते है जो पर्वतराज सुमेरु की कन्या थी। इस प्रकार भगवान शकर की अर्द्धांगिनी उमा गगा की सहोदरा कनिष्ठ भगिनी थी। हिमवान् से गगाजी को देवताओ ने माग लिया था। हिमवान् से गगा को प्राप्त कर देवता लोग धन्य हो गए थे और उसे उन्होने तीनो लोको मे प्रतिष्ठित किया था। बगला भाषा के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कृत्तिवास रामायण मे आदि कवि की इस कल्पना को और मधर रूप दिया गया है। उनके मत मे देवताओ ने शिव से व्याह करने के लिए हिमवान् से गगा की याचना की थी। जब गगा मेनका के घर से बिना पूछे ही देवताओ के साथ चली गयी तो मेनका ने उन्हे अपने घर मे न देख जड अर्थात जलमयी हो जाने का शाप दे दिया। तभी से गगा जल रूप मे ब्रह्मा के कमण्डलु मे रहने लगी। राजा सगर के पुत्रो के कपिल मुनि के शाप से भस्म हो जाने पर उनके उद्धार के लिए गगाजी ब्रह्मा के कमण्डलु से बाहर निकल कर धरती तल पर अवतीर्ण हुई। सगर के वशज राजा भगीरथ द्वारा गगा (भागीरथी) के धरती पर अवतरण होने की यह कथा तो अति प्रसिद्ध है।

भागीरथी का दूसरा नाम विष्णुपदी है। पौराणिक कथाओ के अनुसार भगवान् विष्णु के अगूठे से निकलने के कारण उनका यह नाम पडा। कदाचित् इस कथा मे कुछ ऊँची कल्पना का आधार लिया गया है। नदियाँ जलमयी होती है और जल का उद्गम स्थल है मेघमण्डल। पौराणिक कथाओ के अनुसार मेघो का केन्द्रीभूत सचरण स्थल उस ज्योतिष्क मण्डल मे है, जो आकाश स्थित ध्रुव के चरण प्रान्तो मे व्यवस्थित है। उक्त ध्रुव मण्डल मे भगवान् विष्णु के चरणन्यास की पौराणिक कथा सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस प्रकार विष्णुपदी गगा के नामकरण का रहस्य साधारणतया अनुपमेय हो जाता है। किन्तु अन्यान्य पुराणो मे भगवान् विष्णु के पद-नख से गगा के द्रवित होने के कारण यह नामकरण बताया गया है।

गगा का जाह्नवी नाम भी सुविख्यात है। महाभारत, रामायण, विष्णुपुराण आदि धार्मिक ग्रंथो मे इस नामकरण की चर्चा अनेक बार की गयी है। उक्त कथा का अति सक्षेप रूप इस प्रकार है। स्वर्ग से धरती पर अवतरित गगा के आगे-आगे रथारूढ राजा भगीरथ चल रहे थे और उनके पीछे-पीछे ग्राम, नगर, वन, उपवन को बहाते हुए भागीरथी का प्रबल प्रवाह बह रहा था। सयोगात् भगीरथ के मध्य मार्ग मे ही महामुनि जह्नु की यज्ञ स्थली एव आश्रम पड गया, जह्नु उस समय अपने अनुष्ठानो मे इस प्रकार लीन थे कि भगीरथ के मार्ग को छोड कर दूर हटने की उन्हे तनिक भी सुविधा नही थी। फलत भागीरथी के प्रबल प्रवाह मे जह्नु का यज्ञ मण्डप एव आश्रम तथा सब सामग्री विलीन हो गयी। इस अकल्पित विघ्न से जह्नु का प्रचण्ड कोप उद्बुद्ध हो गया और वे भागीरथी के उस भीषण प्रवाह को राजा भगीरथ की निराश आँखो के सामने ही क्षण भर मे पान कर गये। बेचारे भगीरथ का साहस टूट गया, ब्रह्मा के कमण्डलु तथा शिव की जटा से उतार लाने के बाद उन्होने इस नयी विपदा की कल्पना भी नही की थी। अन्तत देवताओ, मुनियो और गन्धर्वो ने मिल कर जब भगीरथ के साथ ही विशेष प्रार्थना की तब जह्नु का कोप कुछ शान्त हुआ और उन्होने अपने

कान के छिद्र से गगा को फिर धरती पर गिरा दिया। इस प्रकार जह्नु के कान से उत्पन्न गगा का नाम जाह्नवी पड गया और वे जह्नु की कन्या के रूप मे भी विख्यात हुई।

देवी भागवत की कथा के अनुसार गगा भगवान् नारायण (विष्णु) की पत्नी तथा लक्ष्मी और सरस्वती की सपत्नी है। सयोगात् एक दिन गगा ओर सरस्वती मे कलह उत्पन्न हो गया, जिसमे लक्ष्मी ने बीच-बचाव करने का यत्न किया। किन्तु क्रोध के दुर्विवेक मे तीनो सपत्नियो ने परस्पर यथेच्छ कटु शब्दो का प्रयोग कर शाप-अभिशाप दिया। परिणामत तीनो को स्वर्ग से च्युत हो कर धरती पर अवतीर्ण होना पडा। गगा और सरस्वती का नदी रूप तो विख्यात ही है—लक्ष्मी का नदी रूप पद्मावती के नाम से विख्यात है।

ब्रह्म पुराण के गोतमी खण्ड मे गगोत्पत्ति का प्रसग कुछ अधिक मनोरजक है। उसके अनुसार जब स्वर्ग से च्युत हो कर गगा शिव की जटा मे समा गई तो उसके अनन्तर उनके दो रूप हुए। प्रथम रूप गौतमऋषि द्वारा पृथ्वी पर अवतारित होने के कारण गोतमी नाम से तथा दूसरा क्षत्रिय राजा भगीरथ द्वारा अवतारित होने के कारण भागीरथी नाम से विख्यात हुआ। गौतमी का वर्तमान नाम गोदावरी है। सभवत गगा मे गोदावरी के ज्येष्ठ होने एव गगा के अवतारक क्षत्रिय भगीरथ की अपेक्षा गोदावरी के अवतारक गौतम के ब्राह्मण होने के कारण कुछ क्षेत्रो मे गोतमी को 'आदिगगा' के नाम से पुकारा जाता है। उत्तर प्रदेश के कई मण्डलो मे 'गोमती' को ही आदि गगा के रूप मे पुकारते है। किन्तु गोमती के स्थान पर 'गौतमी' को 'आदि गगा' कहने की बात अधिक युक्ति युक्त है। सभव है, राजा भगीरथ द्वारा गगा के पृथ्वी तल पर अवतारित होने की कथा ही 'गोमती' को 'आदि गगा' कहने की प्रेरणा देती है। क्योकि वैज्ञानिक दृष्टि मे उक्त गगावतरण की कथा से यह सिद्ध होता है कि अन्य प्राचीन नदी-प्रवाहो की अपेक्षा गगा की धारा नवीन है।

गगा की उत्पत्ति की यह कथा कुछ थोडे बहुत परिवर्तनो के साथ प्राय सभी पुराणो मे एक-सी है किन्तु उसका सागोपाग वर्णन नारदीय पुराण ही मे उपलब्ध है। उसका कारण कदाचित् यह है कि नारदीय पुराण वैष्णवो का प्रिय पुराण है और विष्णु से सम्बन्धित होने के कारण गगा का उसमे सविस्तर वर्णन करना स्वाभाविक ही है। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे पृथ्वीतल पर गगा की अवस्थिति केवल पॉच सहस्र वर्षो की ही बतायी गयी है। सरस्वती के शाप से सत्रस्त हो कर गगा ने जब भगवान् विष्णु से शाप-मोचन की प्रार्थना की तो भगवान् विष्णु ने कहा—

अद्य प्रभृति देवेशि! कले पञ्चसहस्रकम्।
वर्ष स्थितिस्ते भारत्या शापेन भारते भुवि॥

वराह पुराण मे बताया गया है कि—

पृथ्वी गगया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ।

अर्थात्—कलियुग के अन्तिम चरण मे पृथ्वी गगा की धारा से विलीन हो जायगी। स्कन्द पुराण की सनत्कुमार सहिता मे यही प्रसग इस प्रकार वर्णित है—

कलेर्दश सहस्रान्ते विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीम्।
तदर्धं जाह्नवी तोय तदर्धं ग्राम देवता॥

किन्तु कलियुग का पाच सहस्र वर्ष तो बीत चुका है और गगा की धारा आज भी पूर्ववत् अपने प्यारे प्रदेशो को सीच रही है। अत इस प्रसग मे वराह पुराण का कथन अधिक युक्तियुक्त मालूम पडता है।

धरती पर गगावतरण की तिथि के सम्बन्ध मे पुराणो मे एक वाक्यता नही है। कुछ पुराणो के मत से वैशाख

शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षय तृतीया को गगा धरती पर अवतीर्ण हुई और कुछ उसे 'कार्त्तिकी पूर्णिमाजाता' अर्थात् कार्त्तिक की पूर्णिमा को अवतीर्ण मानते है। किन्तु लोक प्रसिद्धि एव अनेक पुराणो के मत से ज्येष्ठ शुक्ल दशमी अर्थात् गगा दशहरा ही गगा के अवतीर्ण होने की पुण्य तिथि है। निम्नलिखित श्लोक इस सम्बन्ध मे अति प्रसिद्ध है —

दशमी शुक्ल पक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेऽहनि।
अवतीर्णा यत स्वर्गात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥

अर्थात्—ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मगलवार एव हस्त नक्षत्र मे गगा स्वर्ग से धरती पर अवतीर्ण हुई ।

कुरुवशी राजा शन्तनु के साथ गगा के विवाह की चर्चा भी पुराणो मे प्रसिद्ध है। गगा के पुत्र भीष्म का महान् त्याग एव अविप्लुत ब्रह्मचर्य गगा की धारा की भाँति ही भारतीय सस्कृति मे कभी नष्ट न होने वाली निधि है। पिता के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले सत्यसध भीष्म की पुण्य कथा कैकेयी सुत भरत की पावन कथा के समान ही सर्वदा गर्व से गायी जायगी। गगा के साथ परिवार व्यवस्था की इस विचित्र कथा मे पुराणकर्त्ताओ के तात्पर्य का वैज्ञानिक पहलू ढूढना व्यर्थ है। पुराणो मे तो ऐसी कथाओ का भण्डार ही भरा है। किन्तु गगा के प्रति अगाध निष्ठा रखने वाले भावुक भक्तो को ही नही, गगापुत्र भीष्म का उज्ज्वल जीवन तो सर्वसाधारण पाठको को भी थोडी देर के लिए विस्मय विमुग्ध कर देता है। ऐसे नररत्न की उत्पत्ति गगा जैसी परम पावनी एव सर्वदा सब को शान्ति देने वाली ममतामयी माता से ही सभव था।

गगा के धार्मिक एव आध्यात्मिक पहलुओ पर प्रकाश डालते समय किसी भी लेखक के सामने भारतीय वाङ्मय मे इतना अधिक साहित्य मिलता है कि वह मेरी ही भाँति किकर्त्तव्य विमूढ हो सकता है कि किसे लिया जाय और किसे छोडा जाय। पुराणो के अतिरिक्त आचार ग्रन्थो मे भी गगा की महिमा का विशाल वर्णन है। कदाचित् गगा के समान किसी अन्य नदी के सम्बन्ध मे इतना अधिक वर्णन किया ही नही गया है। इसका कारण यह है कि गगाजी के समान कोई ऐसी अन्य नदी नही है, जिसका इतना विशाल ऐतिहासिक, आर्थिक एव वैज्ञानिक इतिहास हो। परम प्राचीन काल से यह भारत की राजधानियो को बसाने वाली नदी थी। कितने ही राज्यो के आविर्भाव, उत्थान और पतन मे इसकी चचल लहरो का हाथ रहा है। बडे-बडे साम्राज्यो का वैभव-विलास इसके पावन तटो पर ही सभव हुआ है, और इसी के कूल-कगारो पर आर्य सभ्यता ने अपनी उन्नति के सुनहरे दिन देखे थे। हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रतिष्ठानपुर, काशी, पाटलिपुत्र, चम्पा आदि प्राचीन ऐतिहासिक राजधानियो ने अपने गौरवपूर्ण दिन इसी के तट पर देखे है। इसी प्रकार इसी के तट पर वे सुप्रसिद्ध लडाइयाँ भी हुई है, जो नवनिर्माण का कारण बनी है। गगा तट की उर्वरता अतिप्रसिद्ध है, साथ ही अनेक महानदियो का सगम स्थल होने के कारण नौ-व्यवसाय मे यह देश की सब से बडी उपकारक नदी रही है। रेलवे की स्थापना के पूर्व गगा का महत्त्व व्यावसायिक दृष्टि से भी सर्वोपरि था। और इसके तीन लाख इक्यानबे हजार एक सौ वर्ग मील के उपजाऊ कछार की समानता तो ससार की किसी भी अन्य नदी का कछार नही कर सकता। यह बात ध्यान देने योग्य है कि समूचे भारतवर्ष की जन-सख्या का एक तिहाई भाग गगा के तटवर्ती प्रान्तो मे निवास करता है। (भारतवर्ष की जनसख्या चालीस करोड है और लगभग चौदह करोड व्यक्ति गगा के कछारो मे बसते है)। इसका परिणाम यह हुआ है कि नवीन वैज्ञानिक साधनो का जितना जाल गगा तट पर बिछा हुआ है, उतना देश की किसी अन्य नदी पर नही। देश के

अनेक प्रख्यात नगर कलकत्ता, पटना, काशी, प्रयाग, कानपुर आदि इसी के तट पर अवस्थित है जिनका आज के वैज्ञानिक युग मे विशेष महत्त्व है।

और तीर्थ। गगा की तो एक एक लहरे तीर्थ है। गगोत्री से लेकर गगासागर तक सैकडो तीर्थो मे प्रति वर्ष करोडो मनुष्य गगा के पावन जल मे अपने दैहिक, दैविक एव भौतिक सन्तापो को शान्त कर आध्यात्मिक चेतना प्राप्त करते है, भले ही उन पर गगा जल का स्थायी लाभ न हो किन्तु क्षण भर के लिए ही सही, उतनी ही देर तक वे इस अपने जीवन मे दूर सुख शान्ति के लोक मे पहुँच जाते है। अनादि काल मे ले कर लोकोत्तर पवित्रता एव शुभभावना के उदय का जो चमत्कार गगाजल मे है वह किसी अन्य नदी के जल मे नही है। उसमे स्नान करते समय एक अपूर्व चेतना एव स्फुरणा प्राप्त होती है। आध्यात्मिक अथवा धार्मिक भावना-प्रवण हृदयो मे तो वह आनन्द की लहरे फैला देती है।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान के प्रचण्ड ताप मे धार्मिक अथवा आध्यात्मिक चेतना का स्रोत कुछ सूख-सा रहा है। अत सभव है, भविष्य मे गगा के धार्मिक एव आध्यात्मिक माहात्म्य का कुछ ह्रास हो जाय किन्तु गगा के वैज्ञानिक महत्त्व की पताका उस युग मे भी फहराती रहेगी। गगाजल का वैज्ञानिक महत्त्व भी चमत्कारो से भरा पडा है। कई वर्षो तक बद कर के रखे रहने पर भी अन्य नदियो के जलो की भाँति गगा जल मे कीडे नही पडते। कुछ असाध्य रोगो को समूल नष्ट करने की क्षमता गगाजल की अति प्रसिद्ध है। कुष्ठ के सहस्रो रोगी प्रतिवर्ष गगा का सेवन कर आरोग्य लाभ करते है। इसी प्रकार राजयक्ष्मा, पुरानी सग्रहणी, अजीर्ण के अन्य असाध्य उपद्रव, जीर्ण ज्वर एव दमा को दूर करने की भी विचित्र शक्ति गगा जल मे है। वैद्यक राज निघण्टु के मत मे गगा का जल शीतल, स्वादिष्ट, स्वच्छ, अत्यन्त रुचिकर, पथ्य, पवित्र, पाप नाशक, तृष्णा और मोह निवारक, दीपन एव प्रज्ञा-वृद्धि-कारी है।

गगा के अदभुत जल का माहात्म्य चर्म चक्षुओ से भी द्रष्टव्य है। उसमे ऐसी विचित्र गूढ शक्ति है कि किसी भी जल को अपने मे मिला कर तद्रूप कर लेता है। गगोत्री से नीचे मैदानो पर आ जाने से ले कर गगा सागर तक सैकडो बडी बडी नदियाँ आ कर उसमे मिलती है किन्तु सब का जल गगा जल मे विलीन हो जाता है। प्रयाग मे सगम स्थल के पूर्व अनेक बडी नहरो के निकाले जाने के कारण गगा की धारा अत्यन्त क्षीण हो जाती है और उधर सगम से पहले अनेक बडी-बडी चम्बल एव बेतवा आदि नदियो से मिलने के कारण यमुना की धारा अगम और प्रभूत जलराशि युक्त दिखलायी पडती है। सामान्यत वैशाख-ज्येष्ठ मास मे तो गगा की धारा से यमुना की धारा कई गुना बडी, गहरी और जलयुक्त दिखाई पडती है किन्तु सगम स्थल पर आकर यमुना के कई गुनी अधिक जलराशि की नीलिमा कहाँ विलुप्त हो जाती है, इसका कुछ पता नही चलता। रूप का ही नही अन्य नदियो के जलो का गुण भी गगा के गुणो मे विलुप्त हो जाता है। गगा सागर तक सैकडो नदियो की प्रभूत जलराशि गगा की धारा मे आ कर मिलती है किन्तु वह सब भी गगा जल की भाँति शोधक एव अविकृत होने के गुणो से युक्त हो जाती है। गगोत्री के जल के समान उसमे भी सभी गुण आ जाते है।

गगा जल की इस विचित्रता से आकृष्ट हो कर अनेक पाश्चात्य वैज्ञानिको ने उसका शोध भी किया है और उन सब का भी यही मत है कि गगा के जल मे सामान्य नदियो के जल से कई गुना अधिक गुण है। इस प्रसग मे आगरा के सरकारी वैज्ञानिक विभाग के कर्मचारी मि० हैनकेन का अन्वेषण कुछ विशेष मनोरजक है। उक्त महोदय ने गगाजल की परीक्षा के लिए उस स्थान का जल लिया जहाँ स्नान घाट के पास ही बने हुए पनाले से बनारस शहर का गन्दा पानी आ कर गिरता था। उन्होने आरभिक परीक्षण से यह देखा कि उस स्थल के गगा जल मे हैजे के लाखो कीडे बिलबिला

रहे हैं। किन्तु छ घंटा के बाद ही उन्होने देखा कि वे सब कीडे मर कर नीचे बैठ गए और ऊपर गगा का पवित्र जल लहराने लगा। अपने इस प्रयोग मे उन्होने कई क्रम रखे। एक हैजे के रोग से मरे हुए शव को उन्होने गगा जल मे डाल कर देखा कि उसमें रहने वाले असख्य हैजे के कीडे भी छ घटे मे साफ हो गए। वे इतने ही मे विरत नही हुए, गगा के जल मे उन्होने लाखो सक्रामक रोगा के कीडे छोडे और बाद मे देखा कि वे सब भी छ घटे मे बिल्कुल मरे हुए पाए गये। जब कि अन्यनदियो तथा कूपो के स्वच्छ जलो मे वे सक्रामक कीटाणु छही घटे के भीतर असख्य हो गए।

अन्यान्य पाश्चात्य वैज्ञानिको के भी शोध के परिणाम इसी प्रकार के है। सब ने एक स्वर से गगा जल की अद्भुत शक्ति को स्वीकार किया है और बताया है कि गगा जल के समान स्वास्थ्य एव शक्ति प्रद कोई अन्य जल नही है। भारतीय प्राचीन वैज्ञानिको का तो कुछ कहना ही नही है उन्होने गगा के जल की जो महिमा गाई है, उसे सुनकर आज के लोग आश्चय करेगे। मृत्यु के समय रोगी के मुख मे गगाजल डालने की प्रथा आज भी पाई जाती है। साधारणतया लोग समझते है कि यह स्वर्गप्राप्ति के लिए है किन्तु गगाजल मे चेतना और शक्ति उत्पन्न करने के जो अमोघगुण है, उसके कारण भी यह प्रथा प्रचलित हुई होगी। कई पाश्चात्य डाक्टरो ने प्रयोगो मे तथा अनुभव से सिद्ध करके यह बताया है कि शरीर के शक्ति पुज जब जबाब देने लगते है, वाक्शक्ति विलुप्त हो जाती है, उस समय गगाजल का सेवन कराने से रोगी को पुन शक्ति की प्राप्ति होती है तथा वह आनन्द मे निमग्न हो उठता है।

गगाजल की इस अमोघ शक्ति का ही यह परिणाम है कि भारतवर्ष के सभी सुप्रसिद्ध महापुरुषो ने अपने जीवन मे गगा से पर्याप्त लाभ उठाया है। सभी सम्प्रदायो एव धर्मो के अनुयायियो ने गगा का समान आदर किया है। शैव लोग उसे भगवान् शकर की जटा मे विराजमान मानकर अपने सम्प्रदाय की इष्टदेवी मानते है। शिव पुराण मे गगा की अपार महिमा का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार वैष्णवो की तो गगा परम आराध्य देवी है। भगवान् विष्णु के पदनख से सम्भूत होने के कारण वैष्णवो की दृष्टि मे धरती पर गगा से बढकर कोई तीर्थ ही नही है। यही कारण है कि समस्त वैष्णव ग्रथो मे गगा एव गगाजल की आगाध महिमा का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार शाक्त सम्प्रदायो मे भी गगा को अनादि शक्ति का एक रूप मानकर परम आराध्य स्वीकार किया गया है। स्वामी शकराचार्य, रामानुज, बल्लभाचार्य, रामानन्द, कबीर, तुलसी, चैतन्य महाप्रभु, आदि आचार्यो तथा सतो ने तो गगाजी को अपनी साधना का अविभाज्य अग स्वीकार किया था। स्वामी शकराचार्य ने अपने गगाष्टक मे कहा है --

विधिर्विष्णु शम्भुस्त्वमसि पुरुषत्वेन सकला,
रमोमागीर्मुख्या त्वमसि ललना जह्नुतनये।
निराकारागाधा भगवति ! सदा त्व विहरसि,
क्षितौ नीराकारा हरसि जनतापान्स्वक्रिपया।।

अर्थात् हे जह्नतनये ! तुम पुरुष रूप मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो और स्त्री रूप मे तुम्ही उमा, रमा तथा सरस्वती का रूप धारण करने वाली हो, हे परम ऐश्वर्यशालिनी ! तुम ही निराकार ब्रह्ममयी और नितान्त अपार महिमा वाली हो। इस धरती तल पर तुम जल का रूप धारण कर जनता के सन्तापो को अपनी कृपा से दूर करती फिरती हो।'

स्मरण रहे कि स्वामी शकराचार्य भक्तिवादी नही ब्रह्मवादी अर्थात् वेदान्त सिद्धातो के आद्य उपस्थापक तथा समस्त जगत् को मिथ्या मानने वाले महापुरुष थे, किन्तु गगा के सम्बन्ध मे भोली भावुकता से भरे उनके इस उद्गार को सुनकर गगा की सनातन महिमा के सामने शिर अपने आप झुक जाता है।

गगा का नाम करण सार्थक है। इस शब्द का अर्थ है निरन्तर गतिशील जलप्रवाह। गमनार्थक गम् धातु मे ओणादिक गन् प्रत्यय करने पर गगा शब्द की निष्पत्ति होती है, किन्तु पौराणिको ने इसके अनेक अर्थ बताए है। कुछ विद्वान् 'गम्यते ब्रह्मपदमनया' इस प्रकार, कर विग्रहब्रह्म पद प्राप्त कराने के कारण इनका गगा नाम बतलाते है। किन्तु गतिशीलता का अर्थ अधिक युक्तियुक्त है। सदा तीव्र गति से प्रवाहित होने वाली उस जलधारा का नाम गगा उचित ही है जिसके प्रवाह के सामने ब्रह्मा को अपना कमण्डलु तथा शकर को अपनी जटा फैलानी पडी। त्रैलोक्य भर मे किसी मे इनके प्रवाह को अवरुद्ध करने की शक्ति थी ही नही। किन्तु इस 'गगा' शब्द मे सगीतात्मक श्रुति मधुर ध्वनि की एक ऐसी गूज उठती है कि कानो म परमानन्द के साथ-साथ हृदय मे भी भक्ति रस का सचार होने लगता है। यही कराण है कि श्रेष्ठ कवियो ने दिल खोलकर गगाकी पुण्य स्तुति की है। और उनकी स्तुतियो को देखकर पुराणोके माहात्म्य भी पीछे पड जाते है। पण्डित राज जगन्नाथने, जो सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और जिन्होने अपना विवाह एक परमसुन्दरी रमणी से कर लिया था, अपनी 'गगा लहरी' मे गगा की जो स्तुति की है उसे पढकर सहृदयो को रोमाच हुए बिना न रहेगा। एक छन्द म उन्होने कहा है — (उनके छन्द का यह अनुवाद हम स्व० आचाय द्विवेदी के निम्नलिखित सवैया के रूप मे उद्धृत कर रहे है—)

कै लघु पाप तुरन्त जे त्यागत जागत मानस मे पछिताई।
तारन को तिन आजु त्रिलोक मे आहि हजारन तीरथराई।।
हे जननी! पै करै नित जे उठि पातक घोर कठोर अघाई।
ताप निवारन को तिनको जग तेरी समान तुही सुनि पाई।।

कविवर पद्माकर की श्रद्धाजलि तो इससे भी आगे बढ गयी है। वे अपने पापो को ललकारते हुए कहते है —

जैसे तै न मोको कैहूँ नेकहू डरात हुतो ऐसे अब तोसो हौंहुँ नेकहूँ न डरिहौ।
कहै पद्माकर प्रचड जो परैगो तौ उमडकरि तोसो भुजदड ठोकि लरिहौ।।
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीचही ते, कीच बीच नीच! तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
ऐरे दगादार! मेरे पातक अपार तोहि गगा की कछार मे पछारि छार करिहौ।।

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एव उनके पिता गोपालचन्द्र की गगा-महिमा-वर्णन सुविख्यात है। उन्ही की भाँति कविवर बाकीदास, मतिराम, केशव, विद्यापति, कविरत्न सत्यनारायण, पूर्णसिह, हरिऔधजी आदि की गगा सम्बन्धी कविताएँ भक्ति रस से ओत प्रोत है। इस प्रगतिशील युग मे भी गगा के सम्बन्ध मे जो रचनाए हुई है, उनमे भी भक्ति रस का ही पूर्ण सचार है। इसका कारण यह है कि अनादि काल से भक्ति की पावनधारा बहाने वाली गगा का स्मरण करते ही नीरस हृदय मे भी भक्ति का उद्रेक हो जाता है। मशीनो के इस युग मे पहुँच कर भी मनुष्य मनुष्य रहेगा वहाँ लोहे का यन्त्र नही होगा, उसकी कृतज्ञता, सरसता एव सहृदयता का सर्वथा लोप तब तक न होगा जब तक यह धरती रहेगी। और जब तक यह धरती रहेगी तब तक धरती पर गगा की अपार महिमा भी गाई जायगी।

गगा के सम्बन्ध मे अनेक पुराणो मे फैले हुए इन पुण्य-प्रसगो को एक सूत्र मे पिरोने की प्रेरणा प्रयाग विश्व-विद्यालय के अर्थ शास्त्र के अध्यापक पडित दयाशकर दुबेजी की थी। वे गगा के अनन्य भक्त है। लगभग आठ वर्ष पूर्व

उन्होने मुझसे यह सग्रह करने की चर्चा की थी। और यह उसी समय तैयार भी हो गया था, किन्तु अनेक कठिनाइयो के कारण इसके प्रकाशन का अवसर आज लगा है। इस ग्रन्थ के सकलन एव सम्पादन का मुख्य उद्देश्य यही है कि गगा के सम्बन्ध मे निष्ठा एव भक्ति रखने वाले भक्तो को समस्त पुराणो का मन्थन न करना पडे और उन्हे इच्छित सामग्री एक ही स्थल पर नवनीत के समान प्राप्त हो जाय। आशा है, श्री गगाजी के सम्बन्ध मे रुचि और भक्ति रखने वाले सज्जनो को मेरे इस प्रयास से थोडी बहुत सहायता अवश्य मिलेगी।

चैत्री पूर्णिमा, २००९

रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

श्रीगणेशायनम॰

पुराणों में गंगा

[प्रथम भाग]

श्रीगंगा माहात्म्यम्

प्रथमोऽध्याय:

नमस्तस्मै मुनीशाय तपोनिष्ठाय धीमते। वीतरागाय कवये व्यासायामिततेजसे ॥१॥
मुनीन् सूर्यप्रभान् धर्म पाठयन्त सुवर्च्चसम्। नानापुराणकर्त्तार वेदव्यास महाप्रभम् ॥२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्य यस्याशा लोकसाधका। तमादिदेव चिद्रूप विशुद्ध परम भजे ॥३॥
शौनकाद्या महात्मान ऋषयो ब्रह्मवादिन। नैमिषाख्ये महारण्ये तपस्तेपुर्मुमुक्षव ॥४॥
एकदा ते महात्मान. समाज चक्रुरुत्तमा। धर्मार्थकाममोक्षाणामुपायान् ज्ञातुमिच्छव॰ ॥५॥
मुनयो भावितात्मानो मिलितास्ते महौजस। लोकानुग्रहकर्त्तारो वीतरागा विमत्सरा ॥६॥
कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि भूतले। कथ वा प्राप्यते मुक्तिर्नृणा तापार्तचेतसाम् ॥७॥
इत्येव प्रष्टुमात्मानमुद्यतान् प्रेक्ष्य शौनक। प्राञ्जलिर्वाक्यमाहेद विनयावनत॰ सुधी ॥८॥

उस अमित तेजस्वी, वीतराग, परम बुद्धिमान्, तपोनिष्ठ, कवि, मुनिवर व्यास को हम नमस्कार कर रहे ह, जो महान् ऐश्वर्य से सम्पन्न हे, अनेक पुराणो का कर्त्ता हे एव सूर्य के समान तेजस्वी मुनियो को परमधर्ममय पुराणो का पढाने वाला है। जिस ब्रह्म का सृष्टिकर्त्ता होने के कारण ब्रह्मा, पालनकर्त्ता होने के कारण विष्णु एव सहार कर्त्ता होने के कारण शिव नाम पडा है और इन्द्र वरुणादि लोकपाल गण ससार का साधन करने के लिये जिसके अश से प्रतिष्ठित हे, उस आदिदेव परम विशुद्ध चिद्रूप भगवान् का मै भजन करता हूँ। ब्रह्मवादी शौनकादि महात्मा ऋषिगण मोक्षप्राप्ति की अभिलाषा से तपस्या कर रहे थे। एक समय उन महात्माओ ने एक उत्तम सम्मेलन किया। उसमे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के उपायो के जानने वाले, ससारी प्राणियो पर अनुग्रह बुद्धि रखने वाले, महान् तेजस्वी, मत्सरविहीन, पवित्र अन्त करण वाले अनेक मुनि सम्मिलित हुए। उन सम्मिलित मुनियो को "इस भूतल पर कौन-कौनसे तीर्थ और क्षेत्र पवित्र माने गये है ? आधिदैविक, आधिभौतिक एव आध्यात्मिक—इन त्रिविध सन्तापोसे सन्तप्त चित्तवाले मनुष्यो को किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होती है ? " इस प्रकार के प्रश्नो को अपने से करने के लिए उद्यत देखकर विनयी, परम बुद्धिमान् शौनक जी हाथ जोड कर बोले —

स्मृतार्तिनाशिनी गगा नदीना प्रवरा मुने। सर्वपापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥३५॥
सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै। गंगा विन्द्वभिषेकस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥
गगा गगेति यो ब्रूयाद् योजनाना शतै स्थित । सोऽपि मुच्येत पापेभ्य' किमुगगाभिषेकवान् ॥३७॥
विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिर स्थिता। ससेव्या मुनिभिर्देवै कि पुन. पामरैर्जनै ॥३८॥
यत्सैकतं ललाटेतु ध्रियते मनुजोत्तमै । तत्रैव नेत्र विज्ञेय विध्वर्द्धाध समुज्ज्वलत् ॥३९॥
यन्मज्जन महापुण्य दुर्लभत्रिदिवौकसाम् । सारूप्यदायक विष्णो किमस्मात् कथ्यते परम् ॥४०॥
यत्रस्नाता पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिता. । महद्विमानमारूढाः प्रयान्ति परम पदम् ॥४१॥
यत्र स्नाता महात्मान पितृमातृकुलानि वै । सहस्राणि समुद्धृत्य विष्णु लोके व्रजति वै ॥४२॥
स स्नात सर्वतीर्थेषु यो गगा स्मरति द्विज । पुण्यक्षेत्रेषु मर्त्येषु स्थितवान्नात्र सशय. ॥४३॥
यत्र स्नात नर दृष्ट्वा पापोपि स्वर्गभूमिभाक् । यदगस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत् ॥४४॥
तुलसीमूलसभूता द्विजपादोद्भवा तथा । गगोद्भवा तु मृल्लोकान्नयत्यच्युतरूपताम् ॥४५॥
गगा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला । अत्यन्तदुर्लभा नृणा भक्तिर्धर्मप्रवक्तरि ॥४६॥

सद्धर्मवक्तुःपदसभवां मृद गगोद्भवा चैव तथा तुलस्या ।
मूलोद्भवा भक्तियुतो मनुष्यो धृत्वा शिरस्येति पद च विष्णो ॥४७॥

वह गगाजी स्मरणमात्र से पीडा को दूर करनेवाली है, सभी नदियो मे श्रेष्ठ है, सभी पापो को विनष्ट करनेवाली है । जितने अन्य पवित्र तीर्थों के अभिषेक है, वे गगाजी के विन्दुओ के अभिषेक की सोलहवी कला की भी समानता नही कर सकते । जो मनुष्य चार सौ कोस पर अवस्थित रहते हुए भी गगा गगा कहता है, वह भी पापो से मुक्त हो जाता है, फिर तो जो गगा का अभिषेक करता है उसकी बात ही क्या है ? विष्णु भगवान् के चरणो से प्रकट हुई, विश्वेश्वर शिव के शिर पर स्थित भगवती गगा का सेवन देवता तथा ऋषिगण भी करना चाहते है तो पामर मनुष्यो की तो बात ही क्या है ? वे श्रेष्ठ मनुष्य जो अपने मस्तक पर गगाजी की रेती को लगाते है उनके उसी स्थान पर भगवान् शिव के अर्धचन्द्रमा के नीचे का उज्ज्वल (तृतीय) नेत्र समझना चाहिए । इन पुण्य-सलिला भगवती गगा मे स्नान करना परम पुण्यदायक है, देवताओ तक को गगाजी मे स्नान दुर्लभ है। यह गगाजी का स्नान भगवान् विष्णु का-सा स्वरूप एव पद देनेवाला है, इससे अधिक इसके माहात्म्य को भला क्या कहा जा सकता है ॥३५-४०॥

इन पवित्र गगाजी मे स्नान करनेवाले पापी जन भी सभी पापमयी वासनाओ से विमुक्त हो अति विशाल विमान पर चढकर परमपद की प्राप्ति करते है। महात्माजन इन पुण्यसलिला गगाजी मे स्नान- कर अपने माता एव पिता—दोनो कुलो की हजारो पीढियो तक को नरक से उबार लेते है तथा स्वय स्वर्ग को प्राप्त करते है। हे मुनिजी ! जो मनुष्य इन पवित्र गगाजी का स्मरणमात्र कर लेता है वह मानो अन्य सभी पवित्र तीर्थों मे स्नान कर चुका एव सभी पुनीत क्षेत्रो की यात्रा भी कर चुका । उन गगाजी मे स्नान करने वाले मनुष्य को देखकर पापी जन भी स्वर्ग मे पहुँच जाते है और उनका अग के साथ स्पर्श होने से मनुष्य देवताओ के स्वामित्व की प्राप्ति कर लेता है । इस पृथ्वीतल पर मनुष्यो को गगा, तुलसी अनन्यभगवद्भक्ति तथा धर्मोपदेशक के वचनो मे श्रद्धा—ये वस्तुए अति

कदा यास्याम्यहं गंगां कदा पश्यामि तामहम् । वांछत्यपि च यो ह्येव सोपि विष्णुपदं व्रजेत् ॥४८॥
गंगाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि । न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥४९॥
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम् । यतो वै नरकं यान्ति गंगा नाम्नि स्थितेऽपिहि ॥५०॥
संसार दुःखविच्छेदि गंगा नाम प्रकीर्तितम् । तथा तुलस्या भक्तिश्च हरि कीर्ति प्रवक्तरि ॥५१॥
सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गंगेत्येवाक्षरद्वयम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥५२॥
योजनत्रितयं यस्तु गंगायामधिगच्छति । सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं समेति हि ॥५३॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णा रेवा सरस्वती । तुंगभद्रा च कावेरी कालिन्दी बाहुदा तथा ॥५४॥
वेत्रवती ताम्रपर्णी सरयूश्च द्विजोत्तम । एवमादिषु तीर्थेषु गंगा मुख्यतमा स्मृता ॥५५॥
यथा सर्वं गतो विष्णुः जगद्व्याप्य प्रतिष्ठित । तथेयं व्यापिनी गंगा सर्वपाप प्रणाशिनी ॥५६॥
अहो गंगा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत् । पुनाति पावनीत्येषा न कथं सेव्यते नृभिः ॥५७॥
मकरस्थे रवौ गंगा यत्र कुत्रावगाहिता । पुनाति स्नानपानाद्यैर्नयन्तीन्द्रपुरं जगत् ॥५८॥
यो गंगां भजते नित्यं शंकरो लोकशंकरः । लिंगरूपी कथं तस्या महिमा परिकीर्त्यते ॥५९॥
नास्ति गंगा समं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः । नास्ति विष्णुसमं देवं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥६०॥
वर्णानां ब्राह्मणः श्रेष्ठस्तारकाणां यथा शशी । यथा पयोधिः सिन्धूनां तथा गंगा परा स्मृता ॥६१॥
नास्ति शांति समो बन्धुर्नास्ति सत्यात्परंतप । नास्ति मोक्षात्परो लाभो नास्ति गंगासमा नदी ॥६२॥
गंगायाः परमनाम पापारण्यदवानलः । भवव्याधिहरा गंगा तस्मात् सेव्या प्रयत्नतः ॥६३॥
गायत्री जाह्नवी चोभे सर्वपापहरे स्मृते । एतयोर्भक्तिहीनो यस्तं विद्यात्पतितं द्विजं ॥६४॥
गायत्री छन्दसां माता माता लोकस्य जाह्नवी । उभे ते सर्वपापानां नाशकारणतां गते ॥६५॥
यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गंगा प्रसीदति । विष्णु शक्तियुते ते द्वे सम काम प्रसिद्धिदे ॥६६॥
धर्मार्थकामरूपाणां फलं रूपे निरंजने । सर्वलोकानुग्रहार्थं प्रवर्तन्ते महोत्तमे ॥६७॥
अतीव दुर्लभा नृणां गायत्री जाह्नवी तथा । तथैव तुलसीभक्तिर्हरिभक्तिश्च सात्त्विकी ॥६८॥

दुर्लभ है । सद्धर्मो के उपदेश करने वाले सत्पुरुषो के चरणो की धूलि, गंगाजी की पुनीत मिट्टी, तथा तुलसी के नीचे की मिट्टी को श्रद्धापूर्वक मस्तक पर चढाने वाले लोग भगवान् विष्णु के पद की प्राप्ति करते है ॥४१-४७॥

मैं कब गंगा जी जाऊंगा मुझे उनका पापनाशी दर्शन कब होगा—इस प्रकार के विचारो को जो लोग करते हैं वे भी विष्णु भगवान् के स्थान को प्राप्त कर लेते हैं। हे मुनिवर ! अधिक बाते कहाँ तक बताऊँ, इन गंगाजी की महिमा को तो भगवान् विष्णु भी सैकडो वर्षो मे नही कह सकेगे । शोक है कि यह अज्ञान का आवरण लोगो के मन पर पडा हुआ है जो लोग उससे विमोहित होकर गंगाजी का नाम विद्यमान होने पर भी उधर ध्यान न देने के कारण नरक मे जाते है। गंगाजी का नाम, तुलसी मे भक्ति, भगवद्भक्ति के उपदेश मे श्रद्धा—ये तीनो संसार के दुःख से छुडाने वाले है। जो मनुष्य एक बार भी पाप वासना को निर्मूल कर गंगा यह दो अक्षर भी उच्चारण करता है वह सभी पापो से विमुक्त होकर विष्णुलोक की प्राप्ति करता है । जो व्यक्ति बारह कोस गंगाजी के क्षेत्र मे विचरण करता है, वह सभी पापो से विमुक्त होकर सूर्य लोक को प्राप्त करता है ॥४८-५३॥

अहो गगा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी। हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी ॥६९॥
यत्र स्नाता. नरा यान्ति विष्णो पदमनुत्तमम्। नारायणो जगद्धाता वासुदेव. सनातन. ॥७०॥
गगास्नानपराणा तु वाञ्छितार्थफलप्रद॰ ।
गगाजल कणेनापि य सिक्तो मनुजोत्तम । सर्वपापविनिर्मुक्त प्रयाति परम पदम् ॥७१॥
भगीरथान्वये जात सुदासो नाम भूपति. । तस्यपुत्रो मित्रसह सर्वलोकेषु विश्रुत ॥७२॥
वसिष्ठशापात्प्राप्तस्स सौदासो राक्षसी तनुम्। गगाविन्दुनिषेकेण पुर्नमुक्तो नृपोऽभवत् ॥७३॥
इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गगामाहात्म्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

हे द्विजोत्तम ! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, रेवती, सरस्वती, तुगभद्रा, कावेरी, कालिन्दी, वाहुदा, बेत्रवती, ताम्रपर्णी और सरयू—इन सभी नदियो मे कही बढकर गगाजी पुण्यमयी है। जैसे निखिल चराचर जगत् को व्याप्त कर भगवान् विष्णु अवस्थित है उसी प्रकार यह व्यापिनी गगा सभी पापो का विनाश करने वाली है। अहो ! जगत् को पुष्टि देने वाली यह गगा स्नान पानादि से समस्त जगत् को पवित्र करती है। तब भी लोग इनकी सेवा क्यो नही करते ? मकरराशि मे सूर्य के उपस्थित होने के समय गगाजी मे जहा कही भी स्नान किया जाय उसके प्रभाव से गगा स्नान पानादि के माहात्म्य से जगत् को पवित्र कर इन्द्रलोक मे भेज देती है। ससार की कल्याण भावना मे लगे रहने वाले लिंगरूपी शकर भगवान् भी सर्वदा गगा जी की सेवा मे लगे रहते है तो गगाजी की महिमा कैसे कही जा सकती है। पतित पावनी गगाजी के समान अन्य कोई तीर्थ नही है, माता के समान अन्य कोई गुरु नही है, भगवान् विष्णु के समान अन्य कोई देवता नही है और गुरु से बढकर अन्य कोई तत्व नही है। जिस प्रकार सभी ताराओ मे चन्द्रमा, वर्णो मे ब्राह्मण समुद्रो मे क्षीरसागर श्रेष्ठ है उसी प्रकार सभी तीर्थो मे गगाजी श्रेष्ठ है। शान्ति के समान कोई हितैषी बन्धु नही है, सत्य के समान कोई तप नही है, मोक्ष के समान कोई लाभ नही है। गगाजी के समान कोई नदी नही है। गगाजी का एक नाम है पापारण्यदवानल अर्थात् पाप समूह रूप जगल को दावाग्नि के समान नष्ट करनेवाली, ये गगाजी ससार की आधिव्याधियो की हरनेवाली है, इसलिए इनका सेवन नित्य करना चाहिए। गायत्री और गगा—ये दोनो सभी पापो को हरनेवाली है, जो इन दोनो की कल्याणी भक्ति से हीन है, हे द्विजवर्य ! उसे पतित समझना चाहिए। गायत्री छन्दो की (वेदो की) माता है, और यह जान्हवी सभी लोको की माता है, यह दोनो सभी पापो के नाश की कारणभूता है। जिस व्यक्ति के ऊपर गायत्री देवी प्रसन्न होती है—उस पर गगाजी भी प्रसन्न होती है—इन दोनो मे ही भगवान् विष्णु की शक्ति भरी हुई है। अतएव ये दोनो ही एक समान कामनाओ की सिद्धिदात्री है। ये दोनो ही धर्म, अर्थ, एव काम की सिद्धि देनेवाली है, निरजन है, अतिश्रेष्ठ है, अर्थात् जगत् मे इनसे बढकर कोई अन्य वस्तु नही है, और सर्वदा सभी लोगो पर अनुग्रह करने मे लगी रहती है। मनुष्यो को गायत्री, गगा, तुलसीभक्ति अथवा विष्णु भगवान् की सात्विकी भक्ति—इन चारो की प्राप्ति करना अति दुष्कर कार्य है ॥५४–६८॥

अहो ! ये महा सौभाग्य दायिनी गगा जी स्मरण मात्र से पापो को नष्ट करने वाली है। देखने पर विष्णुलोक की प्राप्ति कराने वाली तथा पीने पर विष्णु के समान स्वरूप प्रदान करने वाली है। जगत् की पालना मे लगे रहने वाले, शाश्वत् नारायण वासुदेव गगा स्नान मे निरत रहने वालो की मन कामना पूर्ण करते है। अधिक

क्या, जिस भाग्यशाली मनुष्य पर गगा जी के जल का एक कण मात्र पड जाता है, वह सभी पापो से निर्मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है ॥६८–७१॥

भगीरथ के वश में सुदास नामक एक राजा था। उसका पुत्र सभी लोको मे मित्रसह नाम से विख्यात था, वसिष्ठ जी के शाप से, उस से उस सोदास (सुदास के पुत्र मित्रसह) को राक्षसी शरीर की प्राप्ति हुई थी, किन्तु गगा जी के जलविन्दु के छीटे से वह राजा आसुरी शरीर से मुक्त हो गया—ऐसी प्रसिद्धि है ॥७१–७३॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगामाहात्म्य नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच

शप्त कथ वसिष्ठेन सौदासो नृपसत्तम । गगाविन्द्वभिषेकेण पुन शुद्धोऽभवन् कथम् ॥१॥
सर्वमेतदशेषेण भ्रातर्मे वक्तुमर्हसि । शृण्वता वदता चैव गंगाख्यान शुभावहम् ॥२॥

सनक उवाच

सौदास सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञो गुणवाञ्छुचि । बुभुजे पृथ्वी सर्वा पितृवद्रञ्जयन् प्रजा ॥३॥
सगरेण यथापूर्व महीय सप्तसागरा । रक्षिता तद्वदमुना सर्वधर्माविरोधिना ॥४॥
पुत्रपौत्रसमायुक्त सर्वैश्वर्यसमन्वित । त्रिशदष्टसहस्राणि बुभुजे पृथिवी युवा ॥५॥
सौदासस्त्वेकदा राजा मृगयाभिरतिर्वनम् । विवेश सबल सम्यक् शोधित ह्याप्त मन्त्रिभि ॥६॥
निषादै सहितस्तत्रविनिघ्नन् मृगसचयम । आससाद नदीरेवा धर्मज्ञ स पिपासित. ॥७॥
सुदासतनयस्तत्र स्नात्वा कृत्वाह्निक मुने । भुक्त्वा च मन्त्रिभि सार्ध ता निशा तत्र चावसत् ॥८॥

नारद जी ने पूछा—वसिष्ठ जी ने नृपति वर सुदास के पुत्र मित्रसह को किस कारण से शाप दिया था और फिर वह राजा गगा जी की बूदो के अभिषेक से किस प्रकार शुद्ध हुआ । भ्रात ! इन बातो को आप मुझे विस्तार से सुनाइये, क्योकि गगा जी की कथा वक्ता और श्रोता—दोनो को पवित्र करती है ॥१–२॥

सनक ने कहा—राजा सुदास का पुत्र मित्रसह सभी धर्मो का ज्ञाता, सर्वज्ञ, गुणी ओर पवित्र मन का था। वह अपने पिता ही के समान प्रजा को प्रसन्न रखते हुये समस्त पृथ्वी का भोग करता था। पूर्वकाल मे राजा सगर ने जिस प्रकार सातो समुद्रो से युक्त इस समस्त पृथ्वी मण्डल का पालन किया था उसी प्रकार राजा मित्रसह भी सभी धर्मो को समान समझते हुए पृथ्वी की रक्षा मे सर्वदा तत्पर रहता था। उसने युवावस्था मे पुत्र-पौत्र आदि से युक्त हो सभी प्रकार के ऐश्वर्यो के साथ अडतीस सहस्र वर्षो तक पृथ्वी का भली भाँति पालन किया था। एक बार उस राजा सौदास ने श्रेष्ठ मत्रियो से भली भाँति जाने हुए वन मे शिकार खेलने की इच्छा से अपनी सेना को साथ लेकर प्रवेश किया। वहाँ उसके साथ निषाद भी मृग समूहो को मारते हुए साथ चल रहे थे। प्यास लगने पर राजा रेवा के पवित्र तट पर पहुँचा। हे मुने ! वहाँ पहुँच कर राजा ने स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त हो मत्रियो के साथ भोजन किया और रात वही पर बितायी ॥३–८॥

तत' प्रात' समुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रिया। बभ्राम मन्त्रिसहितो नर्मदा तीरजे वने ॥९॥
वनाद्वनान्तरे गच्छन्नेक एव महीपति' ।आकर्णकृष्टबाण' सन् कृष्णसार समन्वगात् ॥१०॥
दूरसैन्योऽश्वमारूढ स राजानुव्रजन्मृगम। व्याघ्रद्वय गुहासस्थमपश्यत्सुरते रतम् ॥११॥
मृगपृष्ठ परित्यज्य व्याघ्रयो सम्मुख ययौ। धनु सहितबाणेन तेनासौ शरशास्त्रवित् ॥१२॥
ता व्याघ्री पातयामास तीक्ष्णा ग्रनतपर्वणा। पतमाना तु सा व्याघ्री पट्त्रिंशद्योजनायता ॥१३॥
तडित्वद्घोरनिर्घोषा राक्षसी विकृताभवत्। पतितां स्वप्रियां वीक्ष्य द्विषन्स व्याघ्रराक्षस ॥१४॥
प्रतिक्रिया करिष्यामीत्युक्त्वा चान्तर्दधे तदा। राजा तु भयसविग्न वने सैन्य समेत्य च ॥१५॥
तद्वृत्त कथयन्सर्वान्स्वा पुरी स न्यवर्त्तत। शकमानस्तु तद्रक्षात्कृत्य राजा सुदासज ॥१६॥
परितत्याज मृगया ततः प्रभृति नारद। गते बहुतिथे काले हयमेधमख नृप ॥१७॥
समारेभे प्रसन्नात्मा वसिष्ठाद्यैर्मुनीश्वरै.। तत्र ब्रह्मादि देवेभ्यो हविर्दत्वा यथाविधि ॥ १८ ॥
समाप्य यज्ञ निष्क्रान्तो वसिष्ठः स्नातकोऽपि च।
अत्रान्तरे राक्षसोऽसौ नृपहिंसितभार्यक.। कर्त्तु प्रतिज्ञा या राज्ञे समायातो रुषान्वित' ॥१९॥
स राक्षसस्तस्य गुरौ प्रयाते वसिष्ठवेष तु तदैव धृत्वा।
राजानमभ्येत्य जगाद भोक्ष्ये, मास समिच्छाम्यहमित्युवाच ॥ २० ॥
भूय समास्थाय स सूदवेष पक्वामिष मानुषमस्यचादात्।
स्थितश्च राजापि हिरण्यपात्रे धृत्वा गुरोरागमन प्रतीक्षन् ॥ २१ ॥
तन्मास हेमपात्रस्थ सौदासो विनयान्वित । समागताय गुरवे ददौ तस्मै ससादरम् ॥ २२ ॥
त दृष्ट्वा चितयामास गुरू किमिति विस्मित ॥ २३ ॥
अपश्यन्मानुप मास परमेण समाधिना। अहोऽस्य राज्ञ दौ शील्यमभक्ष्यंदत्तवान्मम ॥ २४ ॥

प्रात काल उठ कर पूर्वाह्ण के नित्य कर्म को करने के बाद मन्त्रियो को साथ ले राजा नर्मदा तटवर्ती वन मे विचरण करने के विचार से इधर उधर घूमने लगा। सयोगवश एक वन से दूसरे वन मे प्रवेश करते समय वह अकेला हो गया और कान तक बाण खीचकर वह एक कृष्णसार मृग के पीछे दौडा। उस समय उसकी सेना पीछे दूर रह गई थी। घोडे पर सवार राजा ने आगे चल कर गुफा के भीतर मैथुन करते हुए व्याघ्रदम्पति को देखा और देखते ही मृग का पीछा छोड व्याघ्र दम्पति पर झुका, तथा अपने तीखे अग्रभाग मे झुकी हुई गाठ से युक्त बाण से व्याघ्री को उसने मार गिराया। गिरते समय व्याघ्री ने विजली से युक्त बादल की भॉति घोर गर्जना की और एकसो चौवालीस कोस लम्बी भीषण आकार वाली राक्षसी का शरीर धारण कर मर गई। अपनी प्रियतमा को इस भॉति प्राणहीन देख वह व्याघ्र रूपधारी राक्षस अति द्वेष से—मै तुमसे इसका बदला चुकाऊँगा—कहते हुए वही अन्तर्हित हो गया। भय से उद्विग्न राजा ने वन मे स्थित सैन्यशिविर मे जाकर वह वृत्तान्त सब को सुनाया और फिर अपनी नगरी को वह लौट आया। राजा मित्रसह उस राक्षस की बातो से निरन्तर सशकित रहने लगा ॥९–१६॥

उस दिन से उसने शिकार खेलना ही बन्द कर दिया। हे नारद जी! तदनन्तर बहुत दिन बीत जाने के बाद प्रसन्न चित्त राजा ने वसिष्ठ आदि महर्षियो के साथ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। वहाँ ब्रह्मा आदि देवताओ

इति विस्मयमापन्नाः प्रमन्युरभवन्मुनि । अभोज्य मद्विघाताय दत्त हि पृथिवीपते ॥ २५ ॥
तस्मात्तवापि भवतु ह्येतदेव हि भोजनम् । नृमास रक्षसामेव भोज्य दत्त मम त्वया ॥ २६ ॥
तद्याहि राक्षसत्व त्व तदाहारोचित नृप । इति शाप ददत्यस्मिन् सौदासो भयविह्वल' ॥ २७ ॥
आज्ञप्तो भवतैवेति सकपोऽस्मै व्यजिज्ञपत् । भूयश्च चिन्तयामास वसिष्ठस्तेन नोदित ॥ २८ ॥
रक्षसा वचित भूप ज्ञातवान् दिव्यचक्षुषा । राजापि जलमादाय वसिष्ठ शप्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥
समुद्यत गुरू शप्त दृष्ट्वा भूयोरुपान्वितम् । मदयती प्रिया तस्य प्रत्युवाचाथ सुव्रता ॥ ३० ॥

मदयत्युवाच

भो भो ! क्षत्रियदायाद कोप सहर्तुमर्हसि । त्वया यत्कर्म भोक्तव्य तत्प्राप्त नात्र सशय ॥ ३१ ॥
गुरू तुकृत्य हुकृत्य यो वदेन्मूढधीर्नर । अरण्ये निर्जले देशे स भवेद्ब्रह्मराक्षस ॥ ३२ ॥
जितेन्द्रिया जितक्रोधा गुरुशुश्रूषणेरता । प्रयान्ति ब्रह्मसदनमिति शास्त्रेषु निश्चय. ॥ ३३ ॥
तयोक्तो भूपति क्रोध त्यक्त्वा भार्या ननन्द च । जल कुत्र क्षिपामीति चितयामास चात्मना ॥ ३४ ॥
तज्जल यत्र ससिक्त तद्भवेद्भस्मनिश्चितम् । इतिमत्वा जल तत्तु पादयोर्न्य क्षिपत्स्वयम् ॥ ३५ ॥
तज्जलस्पर्शमात्रेण पादौ कल्मषता ययौ । कल्मापपाद इत्येव तत प्रभृति विश्रुत ॥ ३६ ॥

को यथाविधि हवि देकर और यज्ञ को समाप्त कर वसिष्ठ जी यज्ञ मण्डप से बाहर चले गये और अवभृथ स्नान कर चुकने पर वह राजाभी बाहर चला आया। ठीक इसी अवसर पर राजा द्वारा स्त्री के मारे जाने के कारण वह राक्षस बदला चुकाने की भावना से अतिरोषपूर्वक यज्ञ मण्डप मे आया और वहाँ से गुरु वशिष्ठ को बाहर गया हुआ समझ कर उसी क्षण वसिष्ठ का वेश धारण कर राजा के पास पहुँचा और उससे कहने लगा कि मै मास खाना चाहता हूँ। तदनन्तर राक्षस ने रसोइये का रूप बनाया और मनुष्य का मास पका कर उसने राजा को दिया। राजा भी उसे सुवर्ण के पात्र मे रख कर गुरु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। जब वास्तव मे गुरु वसिष्ठ जी वापिस आये तब राजा ने आदर पूर्वक वह मास गुरु जी को समर्पित किया। उसे देख गुरु ने विस्मित होकर विचारा कि आखिर यह क्या चीज है ? ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि यह तो मनुष्य का मास है। अति विस्मित मुनि क्रोध से अभिभूत हो गये और सोचने लगे कि अहो ! इस राजा की दुष्टता तो देखो, इसने मुझे अभक्ष्य नरमास खाने को दिया है ॥१७–२४॥

वसिष्ट कहने लगे राजन् ! तू ने मेरे तप का विनाश करने के लिए यह अखाद्य पदार्थ खाने को दिया है—इस कारण अब से यह तुम्हारा ही भोजन होगा। अरे मूर्खराजा ! नर मास, जो राक्षसो का भोजन है, वही तूने मुझे दिया है, अत तू इसके खाने का योग्य पात्र राक्षस हो जा। वसिष्ठ के इस भीषण शाप से राजा मित्रसह भय से विह्वल हो गये और काँपते हुए कहने लगे, महाराज ! इसके लिए तो आपने ही आज्ञा दी थी। राजा की ऐसी बात सुन वसिष्ठ ने पुन विचार किया तो उन्हे दिव्य दृष्टि द्वारा ज्ञात हुआ कि राक्षस ने राजा से छल किया है। इस बात को जानने के बाद राजा भी वसिष्ठ को शाप देने के लिए उद्यत हो गया। राजा की पतिव्रता रानी मदयन्ती ने पति से क्रुद्ध होकर वसिष्ठ जी को शाप देने के लिए उद्यत देखकर कहा—क्षत्रिय पुत्र ! क्रोध शान्त करो, दुष्कर्म का जो फल तुम्हे भोगना बदा था, वही प्राप्त हुआ है। जो मूढ मनुष्य अपने गुरु से 'तू' वा 'हू' कह कर बोलता है

२

कल्माषपादो मतिमान् प्रिययाश्वासितस्तदा । मनसा सोऽतिभीतस्तु ववन्दे चरणं गुरो ।। ३७ ।।
उवाच च प्रपन्नस्त प्राञ्जलिर्नयकोविद । क्षमस्व भगवन्सर्वं ह्यपराधः कृतोमया ।। ३८ ।।
तच्छ्रुत्वोवाच भूपाल मुनिर्नि.श्वस्य दु खित । आत्मानं गर्हयामास ह्यविवेकपरायणम् ।। ३९ ।।
अविवेको हि सर्वेषामापदा परम पदम् । विवेकरहितो लोके पशुरेव न सशय ।। ४० ।।
राज्ञा त्वजानता नूनमेतत्कर्मोचित कृतम् । विवेकरहितोऽज्ञोह यत पाप समाचरम् ।। ४१ ।।
विवेकनियतो याति यो वा को वापि निर्वृतिम् । विवेकहीनमाप्नोति यो वा को वाप्यनिर्वृतिम् ।। ४२ ।।
इत्युक्त्वा चात्मनात्मान प्रत्युवाच मुनिर्नृपम् । नात्यतिक भवेदेतद् द्वादशाब्द भविष्यति ।। ४३ ।।
गगा विन्दुभिषिक्तस्य त्यक्त्वा वै राक्षसीतनुम् । पूर्वरूपं त्वमापन्नो भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ।। ४४ ।।
तद्बिन्दुसेकसभूतज्ञानेन गतकल्मष । हरिसेवा परो भूत्वा परा शान्ति गमिष्यसि ।। ४५ ।।
इत्युक्त्वाथर्वविद्भूप वसिष्ठ. स्वाश्रम ययौ । राजापि दु.खसपन्नो राक्षसी तनुमाश्रित ।। ४६ ।।
क्षुत्पिपासाविशेषार्त्तो नित्य क्रोधपरायण । कृष्णक्षपाद्युतिर्भीमो विभ्राम विजने वने ।। ४७ ।।
मृगांश्च विविधास्तत्र मानुषाश्च सरीसृपान् । विहगमान्सवंगाश्च प्रशस्तास्तानभक्षयत् ।। ४८ ।।
अस्थिभिर्बहुभिर्भूप. पीतरक्तकलेवरै । रक्तान्तप्रेतकेशैश्च चित्रासीद्भूर्भयकरी ।। ४९ ।।

वह निर्जन वनस्थल मे ब्रह्मराक्षस होता है। शास्त्रो का यह निश्चय है कि इन्द्रियो को तथा क्रोध को अपने वश मे रख कर जो अपने गुरु की सेवा मे बराबर लगे रहते हैं वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। स्त्री के समझाने पर राजा ने क्रोध छोड दिया और अपनी स्त्री की इस चतुरता पर उसका सम्मान किया और सोचने लगा, कि इस शापार्थ लिए हुए जल को अब कहाँ फेकू ? क्योकि यह जल अब जिस वस्तु पर गिरेगा वह तुरत ही भस्म हो जायगी। ऐसा सोचने के उपरान्त राजा ने उसे अपने ही पैरो पर डाल लिया। जल का स्पर्श होते ही उसके पैर चितकबरे हो गये, उसी दिन से वह राजा कल्माषपाद नाम से विख्यात हुआ ।।२५–३६।।

• कल्माषपाद परम बुद्धिमान् राजा था। स्त्री के समझाने पर मन मे बहुत डरते हुए उसने गुरु के चरणो मे प्रणाम किया और फिर उस नीतिज्ञ राजा ने हाथ जोड गुरु की शरण मे जाकर निवेदन किया—'भगवन् ! मैने जो सब अपराध किये हे, उन्हे आप क्षमा करे।' वसिष्ट जी राजा की इस आर्त वाणी को सुन स्वय परम दु खित हुए और बोले—राजन ! मै स्वय बडा अविवेकी हूँ, मुझे सैकडो बार धिक्कार हे। कार्य एव अकार्य का विवेक न रखना सभी आपत्तियो का मूल हे, विवेक से हीन व्यक्ति पशु हो जाता है—इसमे तनिक भी सन्देह नही। हे राजन ! तुम तो अनजान थे, अत यदि मुझे तुम शाप दे दिये होते तो ठीक ही था, मै तो एक दम मूढ हो गया, मेरा तो सारा विवेक चौपट हो गया, जिससे इतना गुरुतम अपराध हुआ। जो विवेक द्वारा अपने चित्त को वश मे रखता हे, वह चाहे कोई भी क्यो न हो—सुख पाता है और जो विवेक को छोड देता है, उसे सभी प्रकार की यातनाएँ आकर घेरती हे।' इस प्रकार स्वय अपनी निन्दा करते हुए वसिष्ठ जी राजा से कहने लगे —'राजन् ! तुम्हारे ऊपर यह शाप केवल बारह वर्षो तक रहेगा, इससे अधिक दिनो तक नही रह सकेगा, इसके बाद इसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। गगा जल की बूदो मे अभिषिक्त होकर उस राक्षस शरीर से तुम छूट जाओगे और पुन पूर्ववत् स्वरूप प्राप्त कर पृथ्वी का उपभोग करोगे ।।३६–४४।।

ऋतुत्रये स पृथिवीं शतयं जनविस्तृताम् । कृत्वातिदु खितां पश्चाद्वनान्तरमुपागमत् ।।५०।।
तत्रापि कृतवान्नित्य नरमासाशन सदा । जगाम नर्मदातीर मुनिसिद्धनिषेवितम् ।।५१।।
विचरन्नर्मदातीरे सर्वलोकभयकरः । अपश्यत् कचन मुनिं रमंत प्रियया सह ।।५२।।
क्षुधानलेन सतप्तस्त मुनि समुपाद्रवत् । जग्राह चातिवेगेन व्याधो मृगशिशु यथा ।।५३।।
ब्राह्मणी स्वपति वीक्ष्य निशाचरकरस्थितम् । शिरस्यंजलिमाधाय प्रोवाच भयविह्वला ।।५४।।
इति श्री बृहन्नारदीय पुराणतोगगामाहात्म्ये द्वितीयोऽध्याय ।।२।।

गगाजल के अभिषेक से तुम्हे ज्ञान प्राप्त होगा, सारे पाप नष्ट हो जायेंगे और तुम हरि सेवा कर परम शान्ति प्राप्त करोगे । इस प्रकार कह कर अथर्ववेद के ज्ञाता वसिष्ठ जी अपने आश्रम की ओर चले गये और राजा राक्षसशरीर धारण कर कष्ट का अनुभव करने लगा । सर्वदा भख प्यास से दु खी रहने लगा । सर्वदा क्रोध से पूर्ण रहने लगा । कृष्ण पक्ष की रात के समान भीषण काली आकृति से युक्त होकर निर्जन वन मे इधर उधर भटकने लगा, और जहाँ तहाँ अनेक प्रकार के मृग, मनुष्य, पक्षी, सर्प और बडे बडे वानरो को पकड-पकड कर खाने लगा । वहाँ की सारी पृथ्वी चूसे हुए रक्त वाली लाशो मे, हड्डियो से, रक्त से चिपके हुए मरे आदमियो के केशो से आकीर्ण हो गई और परम भयकर दिखाई पडने लगी । छ मास के भीतर ही चार सौ कोस की विस्तृत पृथ्वी को अति दु खित करने के पश्चात् वह दूसरे वन को चला गया । वहाँ जाकर भी उसने सर्वदा मनुष्यो का मास खाना शुरू किया और इस प्रकार एक बार मुनियो तथा सिद्ध जनो से सेवित नर्मदा के पवित्र तट पर पहुँच गया । सभी को भय पहुँचाने वाले उस भयकर राक्षस ने अपनी प्रिया के साथ रमण करते हुए किसी मुनि को देखा । देखते ही क्रोधाग्नि से अति दु खित होने के कारण झपट कर जैसे व्याधा मृग के बच्चो को दबोच ले उसी भाँति उसने अपने हाथो मे उसे कस लिया । ब्राह्मणी ने उस भयकर राक्षस के हाथो मे पडे हुए अपने प्राणपति को देखकर अति भयभीत हो हाथ जोड कर निवेदन किया ।।४५–५४।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगामाहात्म्य नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः

ब्राह्मण्युवाच

भोभो नृपति शार्दूल त्राहि मां भयविह्वलाम् । प्राणप्रियप्रदानेन कुरु पूर्णं मनोरथम् ।।१।।
नाम्ना मित्रसहस्त्व हि सूर्यवशसमुद्भव । न राक्षसस्ततोऽनाथां पाहि मा विजने वने ।।२।।
या नारी भर्तृरहिता जीवत्यपि मृतोपमा । तथापि बाले,वैधव्य किं वक्ष्याम्यरिमर्दन ।।३।।
न मातापितरौ जाने नापि बधु च कचन । पतिरेव परो बन्धु. परम जीवन मम ।।४।।
भवान्वेत्त्यखिलान्धर्मान् योषितां वर्तन यथा । त्रायस्व बुद्धिरहितां बालापत्यां जनेश्वर ।।५।।
कथ जीवामि पत्यास्मिन् हीना हि विजने वने । दुहिताह भगवतस्त्राहि मां पतिदानत ।।६।।
प्राणदानात्पर दानं न भूत न भविष्यति । वदन्तीति महाप्राज्ञा. प्राणदान कुरुष्व मे ।।७।।

इत्युक्त्वा सा पपातास्य राक्षसस्य पदाग्रत. । एव सप्रार्थ्यमानोऽपि ब्राह्मण्या राक्षसो द्विजम ॥८॥
अभक्षयत् कृष्णसारशिशु व्याघ्रो यथाबलात् । ततो विलप्य बहुधा तस्य पत्नी पतिव्रता ॥९॥
पूर्वशापहत भूपमशपत् क्रोधिता पुन. । पति मे सुरतासक्त यस्माद्धिसितवान्बलात् ॥१०॥
तस्मात्स्त्रीसगम प्राप्तस्त्वमपि प्राप्स्यसे मृतिम् । शप्त्वैव ब्राह्मणी क्रुद्धा पुन शापातर ददौ ॥११॥
राक्षसत्व ध्रुव तेऽस्तु मत्पतिर्भक्षितो यत । सोपि शापद्वय श्रुत्वा तया दत्त निशाचर ॥१२॥
प्रमन्यु प्राह विसृजन् कोपादगारसञ्चयम् । दुष्टे कस्मात्प्रदत्त मे वृथा शापद्वय त्वया ॥१३॥
एकस्यैवापराधाय शापस्त्वेको ममोचित । यस्मात् क्षिपसि दुष्टाग्रेमयि शापातर तत ॥१४॥
पिशाचयोनिमद्यैव याहि पुत्रसमन्विता । तेनैव ब्राह्मणी शप्ता पिशाचत्वे तदा गता ॥१५॥
क्षुधार्ता सुस्वर भीमा रुरोदापत्यसयुता । राक्षसश्च पिशाची च क्रोशतौ निर्जने वने ॥१६॥
जग्मतुर्नर्मदा तीरे वट राक्षससेवित । औदासीन्य गुरौ कृत्वा राक्षसी तनुमाश्रित ॥१७॥
तत्रास्ते दु खसतप्त कश्चिल्लोकविरोधकृत् । राक्षसच पिशाची च दृष्ट्वा स्ववटमागतौ ॥१८॥

ब्राह्मणी ने कहा —हे राजसिह ! मुझ भयभीता की आप रक्षा करे । मेरे प्रियतम को छोड कर मेरे मनोरथ को पूरा करे । आप राक्षस नही है, जो ऐसे कठोर कर्म कर रहे है, प्रत्युत आपतो सूर्यवशोत्पन्न मित्रसह नामक नृपति वर है । इस निर्जन वन मे मुझ असहाया की आपको रक्षा करनी चाहिये ! हे अरिमर्दन ! इस जगत् मे जिस अभागिनी स्त्री का पति नही रहता वह जीती हुई भी मरी के समान है,फिर अपने बाल वैधव्य के दु ख को मै क्या हूँ आप स्वय समझ सकते है । मैं न तो अपनी मा को जानती हूँ, न पिता को जानती हूँ, न किसी अपने भाई को ही जानती हूँ, मेरे प्राण प्रिय पति देव ही मेरे परम बन्धु हे और उन्ही को पाकर मेरा जीवन वन मे भी सार्थक है । आप समस्त मानवधर्म के जानने वाले है। स्त्रियो के धर्म की भी सब बाते तो आप को मालूम ही है । हे नरनाथ ! मैं निर्बुद्धि अबला छोटे बच्चे की मा हू । मेरी आप रक्षा करे। इस निर्जन वन मे भला मैं अपने प्राणप्यारे के बिना कैसे जीवित रह सकती हूँ। मे आपकी पुत्री हूँ, मुझे पति का दान देकर आप मेरे प्राणो की रक्षा करे । इस विश्व मे प्राणदान से बढकर समार मे कोई दान नही है, और न होगा अत यही समझ कर मुझे प्राणदान दे ।

ऐसी बाते कहती हुई वह उस ब्रह्मराक्षस के चरणो पर गिर पडी, किन्तु इतना आर्त निवेदन करने पर भी कृष्णमृग शावक को सिह की भाँति वह राक्षस उस ब्राह्मण को चबा गया । ऐसा देख उसकी पतिव्रता पत्नी ने घोर विलाप किया और प्रथम शाप से विनष्ट हुए उस राजा को पुन क्रुद्ध होकर शाप दे दिया—'हे राक्षस ! तूने रति मे आसक्त मेरे प्राणप्रिय को बलपूर्वक मार डाला है, अत तू भी स्त्री प्रसग के अवसर पर मृत्यु को प्राप्त होगा ।' अति क्रुद्ध ब्राह्मणी ने इस शाप को देने के बाद फिर दूसरा भी शाप दिया 'तूने मेरे प्रितयम को खा लिया है अत यह तेरा राक्षसत्व अटल हो जायगा ।' अपने लिए इन उग्र दो शापो को सुन राक्षस भी क्रोध से धधकने लगा और क्रोध से अगारे उगलते हुए बोला—'अरी दुष्टे ! एक अपराध के लिए तुम्हे एक ही शाप देना समुचित था, फिर तू ने मुझे व्यर्थ मे दो शाप क्यो दिये ? हे दुष्टे ! तूने मुझे अकारण ही यह दूसरा शाप दिया । अत तूभी अपने पुत्र समेत राक्षसयोनि मे उत्पन्न हो जा ।' ब्रह्म राक्षस के शाप देते ही ब्राह्मणी पुत्र समेत राक्षसी हो गई और पुत्र समेत भूखी होकर भयकर चीखे मारती हुई रुदन करने लगी । इस प्रकार शापोपहत वह राक्षस तथा बच्चे समेत राक्षसी

उवाच क्रोधबहुलो वटस्थो ब्रह्मराक्षस । किमर्थमागतौ भीमौ युवा मत्स्थानमीप्सितम् ॥१९॥
ईदृशौ केन पापेन जातौ मे ब्रुवता ध्रुवम् । सौदासस्तद्वच श्रुत्वा तया यच्चात्मना कृतम् ॥२०॥
सर्व निवेदयित्वास्मै पश्चादेतदुवाच ह ।

सौदास उवाच

कस्त्व वद महाभाग त्वया वै कि कृत पुरा ॥२१॥
सख्युर्ममातिस्नेहेन तत्सर्व वक्तुमर्हसि । करोति वचन मित्रे योवा कोवापि दुष्टधी ॥२२॥
स हि पापफल भुक्ते यातनास्तु युगायुतम् । जन्तूना सर्वदु खानि क्षीयन्ते मित्रदर्शनात् ॥२३॥
तस्मान्मित्रेषु मतिमान्न कुर्याद्वचन कदा । कल्माषपादेनेत्युक्तो वटस्थो ब्रह्मराक्षस. ॥२४॥
उवाचप्रीतिमापन्नो धर्मवाक्यानि नारद ।

ब्रह्मराक्षस उवाच

अहमास पुरा विप्रो मागधो वेदपारग· ॥२५॥
सोमदत्त इति ख्यातो नाम्ना ध र्मपरायण । प्रमत्तोऽह महाभाग विद्यया वयसा धनै. ॥२६॥
औदासीन्य गुरो कृत्वा प्राप्तवानीदृशीगतिम् । न लभेऽह सुख किचित् जिताहारोऽतिदु खित ॥२७॥
मया तु भक्षिता विप्रा शतशोथ सहस्रश· । क्षुत्पिपासापरो नित्यमन्तस्तापेन पीडित: ॥२८॥

चिल्लाते हुए अति क्षुधार्त हो नर्मदा तट पर स्थित एक राक्षस के निवासस्थान बरगद के वृक्ष के पास पहुँचे । उस बरगद के वृक्ष मे गुरु से उदासीनता का व्यवहार रखने एव लोक विरोधी होने के कारण एक राक्षस आसुरी शरीर प्राप्त कर दु ख से चिन्तित हो निवास करता था । राक्षस और पिशाची को अपने आश्रयस्थल के समीप आया देख वह अति क्रोध मे भर कर बोला । अरे भयकर प्राणियो ! तुम किस लिए मेरे इस प्रिय स्थान पर आये हुए हो, और बताओ कि किस घोर पाप के कारण तुम लोगो की यह गति हुई है । राक्षस की यह बात सुन सुदास-पुत्र मित्रसह ने स्वय अपने किये गये तथा ब्राह्मणी के किये गये अपराधो की चर्चा की और फिर कहा ॥८०--२०॥

सौदास ने कहा—हे महाभाग्यशालिन् ! आप भी यह बताइये कि आप कौन है ? और पहिले कौन-सा ऐसा अपराध किया था जिससे आपको यह दुर्गति भोगनी पड रही है, स्नेहपूर्वक मुझे अपना मित्र मान कर आप अपना सब वृत्तान्त मुझसे बताइये । जो मनुष्य अपने मित्र से कपट व्यवहार रखता है, वह चाहे कोई भी हो दस सहस्र युगो तक अपने पाप कर्म का कुपरिणाम भोगता है । मित्रो का शुभदर्शन कर प्राणी के सभी दु ख दूर हो जाते है, इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति को कभी भूलकर भी मित्र से कोई दुराव नही करना चाहिए । नारद जी ! कल्माषपाद की ऐसी बाते सुन बरगद पर अवस्थित वह ब्रह्मराक्षस अति प्रसन्न हुआ और धर्मयुक्त वाणी बोला ॥२१–२४॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा —मै पूर्वजन्म मे मगध देश निवासी, वेदो का पारगामी सोमदत्त नामक ब्राह्मण था । हे महा-भाग्यशाली ! विद्या, अवस्था और धन के मद से उन्मत्त होकर मैने गुरु के साथ उपेक्षा का व्यवहार किया, उसी अपराध के कारण आज मेरी यह दशा हो रही है । मुझे अब सुख नही मिलता, भूख ने मुझे एकदम व्याकुल कर रखा

जगत्त्रासकरोनित्य मासाशनपरायण । गुर्ववज्ञा मनुष्याणा राक्षसत्वप्रदायिनी ॥२९॥
मयानुभूतमेतद्धि तत श्रीमान्न चाचरेत् ।

कल्मापपाद उवाच

गुरुस्तु कीदृश प्रोक्त कस्त्वया श्लाघित. पुरा ॥३०॥
तद्वदस्व सखे सर्व पर कौतूहल हि मे ।

ब्रह्मराक्षस उवाच

गुरव सन्ति बहव पूज्या वन्द्याश्च सादरम ॥३१॥
तानह कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना सखे । अध्यापकश्च वेदाना वेदार्थश्रुतिबोधक ॥३२॥
शास्त्रवक्ता धर्मवक्ता नीतिशास्त्रोपदेशक । मन्त्रोपदेशव्याख्याकृद्वेदसदेहहृत्तथा ॥३३॥
व्रतोपदेशकश्चैव भयत्रातान्नदो हि च । श्वसुरो मातुलश्चैव ज्येष्ठभ्राता पिता तथा ॥३४॥
उपनेता निषेक्ता च सस्कर्त्ता मित्रसत्तम । एते हि गुरवः प्रोक्ता. पूज्या वन्द्याश्च सादरम् ॥३५॥

कल्मापपाद उवाच

गुरवो बहव प्रोक्ता एतेषा कतमो वर । तुल्या सर्वेप्युत सखे तद्यथावद्धि ब्रूहि मे ॥३६॥

ब्रह्मराक्षसउवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्ट तद्वदामि ते । गुरुमाहात्म्य-कथन श्रवणचानुमोदनम् ॥ ३७ ॥
सर्वेषा श्रेय आधत्ते तस्माद्वक्ष्यामि साम्प्रतम् । एते समान पूजार्हा सर्वदा नात्र सशय ॥ ३८ ॥

हैं, इसी कारण मे अतिशय दु खी रहता हूँ, अब तक मैने सैकडो क्या सहस्रो ब्राह्मणो को मार कर खा डाला है। इतने पर भी मेरी भख की ज्वाला शान्त नही हुई, प्यास भी नही बुझी। अन्त करण की अग्नि से सदा जला करता हूँ सर्वदा ससार को भयभी तकरता हू और मास खाने मे तत्पर रहता हूँ। गुरुजनो का अपराध मनुष्य को राक्षसयोनि मे डाल देता है, ऐसा मुझे अनुभव हो चुका, अत जो लोग श्रीमान् हैं, उन्हे ऐसा नही करना चाहिये ॥२५-२९॥

कल्माषपाद ने कहा —शास्त्रो मे गुरु का क्या लक्षण बताया गया है ? आपने कैसे गुरु की प्रशसा की है ? हे सुहृद् ! मुझे आपकी बातो से बडा कुतूहल हो रहा है अत विस्तारपूर्वक मुझे सुनाइये ॥३०॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा —हे सखे ! जगत् मे गुरु अनेक प्रकार के है, उन सभी की आदरपूर्वक पूजा और वन्दना करनी चाहिये, उनका वर्णन मे तुमसे कर रहा हूँ। एकाग्र चित्त होकर सुनो। वेदो का पढाने वाला, वेदार्थ तथा श्रुतियो को बतलाने वाला, शास्त्रो की व्याख्या बतलाने वाला, धर्मोपदेश करने वाला, नीति शास्त्र का उपदेश करने वाला, मत्र का उपदेश और व्याख्या करने वाला, वेदो मे उठी हुई शकाओ का निर्मूलन करने वाला व्रतोपदेष्टा, भय से रक्षा करने वाला, अन्नदाता, श्वसुर, मामा, बडा भाई, पिता, यज्ञोपवीत कराने वाला, गर्भाधान आदि सस्कारो को कराने वाला—ये सभी गुरु हे, मनुष्य को इन सभी की आदरपूर्वक पूजा करनी चाहिये, वन्दना करनी चाहिये ॥३१–३५॥

कल्मापपाद ने कहा —आपने बहुत-से गुरुओ को बतलाया, इनमे सर्वश्रेष्ठ कौन हे ? अथवा सभी एक समान हे ? इसका वास्तविक भेद मुझे बताइये ॥३६॥

तथापि श्रृणु वक्ष्यामि शास्त्राणां सारनिश्चयम । अध्यापकस्य वेदान्त मन्त्रव्याख्याकृतस्तथा ।। ३९ ।।
पिता च धर्मवक्ता च विशेषगुरव स्मृता । एतेषामपि भूपाल श्रृणुष्व परम गुरुम् ।। ४० ।।
सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञैर्भाषित प्रवदामिते । य पुराणादि वदति धर्मयुक्तानि पण्डित ।। ४१ ।।
ससारपाशविच्छेदकरणानि स उत्तम । देवपूजार्हकर्माणि देवतापूजने फलम् ।। ४२ ।।
ज्ञायते च पुराणेभ्यस्तस्मातानीह देवता । सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते ।। ४३ ।।
वदन्ति मुनयश्चैव तद्वक्ता परमोगुरु । य ससारार्णवा नर्तुमुद्योग कुरुते नर ।। ४४ ।।
श्रृणुयात्स पुराणानि इति शास्त्र विभागकृत् । प्रोक्तवान् सर्व धर्मांश्च पुराणेषु महीपते ।। ४५ ।।
तर्कस्तु वाद हेतुस्यान्नीतिस्त्वैहिकसाधनम । पुराणानि महाबुद्धे इहामुत्र सुखाय हि ।। ४६ ।।
य श्रृणोति पुराणानि सतत भक्तिसयुत । तस्य स्यान्निर्मला बुद्धि भूयो धर्मपरायण ।। ४७ ।।
पुराणश्रवणाद्भक्तिर्जायते श्रीपतौ शुभा । विष्णुभक्तिर्नृणां भूप धर्मबुद्धि प्रवर्तते ।। ४८ ।।
धर्मात्पापानि नश्यन्ति ज्ञान शुद्ध च जायते । धर्मार्थकाममोक्षाणां ये फलान्यभिलिप्सव ।। ४९ ।।
श्रृणुयुस्ते पुराणानि प्राहुरित्थ पुराविद । अहतु गौतममुने सर्वज्ञाद् ब्रह्मवादिन ।। ५० ।।
श्रुतवान्सर्वधर्मार्थ गगातीरे मनोरमे । कदाचित्परमेशस्य पूजा कर्तुमह गत ।। ५१ ।।
उपस्थितायापि तस्मै प्रणाम न ह्यकारिषम् । स तु शान्तो महाबुद्धि गौतमस्तेजसा निधि ।।५२।।
मन्त्रोदितानि कर्माणि करोतीति मुद ययौ । यस्त्वर्चितो मया देव शिव सर्वजगद्गुरु ।।५३।।
गुर्ववज्ञा कृता येन राक्षसत्वे नियुक्तवान् । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि योऽवज्ञां कुरुते गुरो ।।५४।।
तस्यैवायु प्रणश्यन्ति धीर्विद्यार्थात्मजक्रिया । शुश्रूषां कुरुते यस्तु गुरूणां सादर नर ।।५५।।
तस्य सपद्भवेभूय इति प्राहु विपश्चित । तेन शापेन दग्धोऽहमनन्तश्चैव क्षुधाग्निना ।।५६।।
मोक्ष कदा प्राप्स्यामि न जाने नृपसत्तम । एव वदति विप्रेन्द्र वटस्थेऽस्मिन्निशाचरे ।।५७।।

ब्रह्मराक्षस ने कहा —महा बुद्धिमान् ! तुम ने बडा अच्छा प्रश्न किया, बहुत अच्छा पूछा । जो कुछ तुमने पूछा है, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो । गुरु के माहात्म्य का कथन, श्रवण और अनुमोदन यह भी सब का कल्याण करने वाला है । इसलिए मैं इसका विवेचन करता हूँ । यद्यपि ये सभी एक ही समान पूजनीय है तथापि शास्त्रों का जो निश्चय है, मैं उसे बता रहा हूँ । सुनिये । वेदपाठी, मंत्र व्याख्याता, पिता और धर्म वक्ता—ये सभी गुरुजनों मे विशिष्ट है । हे राजन् ! इन चारो मे भी जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे भी मैं बता रहा हूँ , सुनिये । इस विषय मे सभी शास्त्रो के निष्कर्षो को जो लोग जानते है, मैं उनका अभिमत बतला रहा हूँ । जो ससार के पाश को काटने वाले धर्ममय पुराणो का व्याख्याता है, वह उत्तम गुरु है । देवपूजा के कर्म और देवपूजा के फल पुराणो द्वारा ही मालूम होते हैं । अत हे राजन् ! पुराण सभी वेदो के तात्पर्य के निचोड है, इसका व्याख्यान करने के कारण वे देवता स्वरूप है । मुनिजन भी यही बतलाते है कि जो ससार-सागर से पार होने का उद्योग करता है, वह पुराणो को सुनता है । हे राजन ! सभी शास्त्रो के विभाजक व्यास जी ने पुराणों मे सभी धर्मो का वर्णन किया है ।।३७-४५।।

हे परम बुद्धिमान् ! तर्क करना तो विवाद का मूल कारण है, नीति से इस लोक के कार्य सिद्ध होते है, पुराण ऐहिक, पारलौकिक -दोनो सिद्धियों के दाता है । जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सदा पुराणो को सुनता है, उसकी बुद्धि निर्मल

धर्मशास्त्रप्रसगेन तयो' पाप च्चयगतम् । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः ॥५८॥
कलिगदेश सभूतो नाम्ना गर्ग इतिश्रुतः । वहन् गगाजल स्कन्धे स्तुवन्विश्वेश्वर प्रभुम ॥५९॥
गायन्नामानि तस्यैव मुदाहृष्टतनूरुह. । तमागत मुनि दृष्ट्वा पिशाची राक्षसी चते ॥६०॥
प्राप्ता न पारणेत्युक्त्वा प्राद्रवन्नूर्ध्ववाहव । तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थिता ॥६१॥
अशक्तास्त धर्पयितुमिदमूचुश्च राक्षसा । अहो विप्र महाभाग नमस्तुभ्य महात्मने ॥६२॥
नामकीर्त्तनमाहात्म्याद्राक्षसा दूरगा वयम् । अस्माभिर्भक्षिता पूर्व विप्रा कोटिसहस्रश ॥६३॥
नाम प्रावरण विप्र रक्षति त्वा महाभयात् । नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम् ॥६४॥
परा शान्ति समापन्ना महिम्ना ह्यच्युतस्यवै । सर्वथा त्व महाभाग रागादिरहितोह्यसि ॥६५॥

हो जाती है, और वह अधिक धर्म करने लगता है। पुराणो के सुनने से श्रीपति भगवान् विष्णु की कल्याणकारिणी भक्ति मिलती हे, हे राजन् ! जो मनुष्य भगवान के भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि सर्वदा धर्म मे लगी रहती हे, धर्म से पाप नष्ट हो जाते ह, और निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन ज्ञानी लोग कहते हे कि 'जो धर्म, अर्थ, ज्ञान एव मोक्ष के इच्छुक ह, वे पुराणो को सुने।' मैंने तो गगा जी के रमणीय तट पर सर्वज्ञ ब्रह्मवेत्ता गोतम जी स सभी धर्मो के तात्पर्य को सुना था। एक समय मे शिवपूजा कर रहा था, इसी समय मेरे गुरु जी आ गये, पूजा मे निरत होने के कारण म ने उन्हे प्रणाम नही किया, परन्तु गौतम जी परम बुद्धिमान तथा तेजस्वी थे इसलिए वे शान्त रहे और यह समझ कर कि यह मत्र शास्त्रोक्त कार्य कर रहा है प्रसन्न हुए, परन्तु मे जिन जगत् गुरु भगवान शकर की पूजा मे तत्पर था, वे गुरु की अवज्ञा के कारण अति क्रुद्ध हुए और मुझे राक्षस बना दिया। अत जो व्यक्ति जान या अनजान मे गुरु का अपमान करता है, उसकी बुद्धि, विद्या, धन, सन्तान और सत्कर्म-सभी नष्ट हो जाते हे। और जो आदरपूर्वक गुरुजनो की सेवा मे तत्पर रहते हे, हे राजन् ! उन्हे सम्पदाये प्राप्त होती हे, ऐसा विद्वान् कहते हे। मै शिव जी के उसी शाप से जल रहा हूँ, भीतर से भूख की अग्नि मुझे और भी जलाये जा रही है। न जाने इस दु ख से मेरा कब पिण्ड छूटेगा ॥४६-५७॥

हे ब्रह्मर्षि नारद जी, बरगद के वृक्ष पर अवस्थित वह ब्रह्मराक्षस इस प्रकार की अनुतापभरी बाते कर रहा था कि धार्मिक चर्चा के कारण उसका पाप विनष्ट हो गया, और उसी अवसर पर एक परम धार्मिक ब्राह्मण वहाँ आ गया। वह विद्वान् ब्राह्मण कलिग देश का था, उसका नाम गर्ग था, कधे पर गगा जल लिये हुए वह विश्वेश्वर प्रभु की स्तुति कर रहा था, और उन्ही के नामो का कीर्तन कर रहा था, प्रसन्नता के कारण उसकी रोमावलि पुलकित थी, उस मुनि को वहा उपस्थित देख वह पिशाची और राक्षस 'हमारा भोजन आ गया,' ऐसा कहते हुए हाथ उठाकर दौड पडे, परन्तु उच्चारित किये गये नामो को सुनकर दूर ही रुक कर अशक्त हो गये और ऐसा कहने लगे-'अहो ! महाभाग्यशाली ब्राह्मण ! आप परम महात्मा हे, आप को हम लोग प्रणाम करते हैं,, जिन भगवान् विष्णु के नाम माहात्म्य से हम जैसे क्रूर राक्षस आप के समीप नही फटक सकते, ऐसे भगवान् को हमारा प्रणाम है। हमने आज के पूर्व हजारो क्या करोडों ब्राह्मणो को खा डाला है, किन्तु हे ब्राह्मण ! यह भगवन्नाम का दुर्ग इस भय से तुम्हारे पापो की रक्षा कर रहा है। हम सब यद्यपि राक्षस हे, किन्तु भगवान् के नाम श्रवण से हमे भी परम शान्ति अनुभव हो रही हे, अहो भगवान् अच्युत ही की महिमा अपार है। हे महाभाग्यशाली ! आप

गंगाजलाभिषेकेण पाह्यस्मात्पातकोच्चयात् । हरिसेवापरो भूत्वा पश्चात्मान तु तारयेत् ।।६६।।
स तारयेजगत्सर्वमितिशासति सूरय । अपहाय हरेर्नाम घोरससारभेषजम् ।।६७।।
केनोपायेन लभ्येत मुक्ति सर्वत्र दुर्लभा । लोहोडुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके तथा ।।६८।।
तथैवाकृतपुण्यास्तु तारयन्ति कथ परान् । अहो चरित्र महता सर्वलोकसुखावहम ।।६९।।
यथा हि सर्वलोकानामानन्दाय कलानिधिः । पृथिव्या यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम ।।७०।।
तानि सर्वाणि गगाया कणस्यापि समानि न । तुलसीदल समिश्रमपि सर्षपमात्रकम् ।।७१।।
गगाजल पुनात्येव कुलानामेकविशतिम । तस्माद् विप्र महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद ।।७२।।
गगाजलप्रदानेन पाह्यस्मान् पापकर्मिण । इत्याख्यात राक्षसैस्तै गगामाहात्म्यमुत्तमम् ।।७३।।
निशम्य विस्मयाविष्टो बभूव द्विजसत्तम । एपामपीदृशी भक्तिर्गंगाया लोकमातरि ।।७४।।
किमुज्ञानप्रभावाणा महता पुण्यशालिनाम् । अथासौ मनसा धर्म विनिश्चित्य द्विजोत्तमे ।।७५।।
सर्वभूतहितो! भक्त प्राप्नोतीति परपदम् । ततोविप्र कृपाविष्टो गलाजलमनुत्तमम् ।।७६।।
तुलसीदलसमिश्र तेषु रक्ष स्वसेचयत् । राक्षसास्तेनसिक्तास्तु सर्षपोपमविन्दुना ।।७७।।
विसृज्य राक्षस भावमभवन्देवतोपमा । ब्राह्मणी पुत्रसयुक्ता सोमदत्तस्तथैव च ।।७८।।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा बभूवुर्विबुधर्षभा । शखचक्रगदाचिह्नहरिसारूप्यमागता ।।७९।।
स्तुवन्तो ब्राह्मण सम्यक् ते जग्मु हरि मदिरम् । राजा कल्माषपादस्तु निज रूप समास्थित ।।
जगाम महती चिन्ता दृष्ट्वा तान्मुक्तिगानघान् ।।८०।।

तस्मिन्राज्ञि सुदु खार्ते गूढ-रुपा सरस्वती । धर्ममूल महावाक्य बभापेऽगाधया गिरा ।।८१।।
भो भो राजन् महाभाग न दु ख गन्तुमर्हसि । राजस्तवापि भोगान्ते महच्छ्रेयो भविष्यति ।।८२।।
इतीरित समाकर्ण्य भारत्या नृपसत्तम । मनसानिर्वृत्ति प्राप्य सस्मार च गुरोर्वच ।।
पूर्ववृत्त च विप्राय सर्व तस्मै न्यवेदयत् ।।८३।।
ततो नृपस्तु कालिग प्रणम्य विधिवन्मुने । नामानि व्याहरन् विष्णो सद्यो वाराणसी ययौ ।।८४।।

तो रागादि विकारो से बिल्कुल शून्य है, (अत हमारी कुचेष्टाओ के प्रतीकार की भावना आपमे न होनी चाहिए) । ।।५८-६५।।

अत गगाजल का अभिषेक कर हमे इस बहते हुए पाप से बचाइये । विद्वानो का कथन है कि जो हरिसेवा मे परायण होकर अपने को तारता है, वह समस्त जगत को भी तार सकता है । हरि का नाम इस भयकर ससार की महौषधि है, मुक्ति सबसे बढकर दुर्लभ वस्तु है। बताओ, इस भगवन्नाम को छोडकर वह किसी अन्य उपायो से भी प्राप्त हो सकती है ? लोहे की नाव द्वारा जल मे तैरनेवाला डूब जाता है, इसी प्रकार जिसने स्वय पुण्य नही किया है वह दूसरो को कैसे तार सकता है ? जैसे चन्द्रमा सभी लोगो को आनन्द देता है, उसी प्रकार महान् पुरुषो के चरित भी सबको सुख देते है । हे द्विजोत्तम ! इस पृथ्वी तल मे जितने भी तीर्थ है, वे सब गगा के कणमात्र की भी समानता नही कर सकते । तुलसी दल पड़ा हुआ सरसो के बराबर भी गगाजल इक्कीस पीढियो को तारने वाला है। अत हे सर्व शास्त्र विशारद ! महाभाग्यशाली ब्राह्मण ! गगाजल का दान देकर हम पाप कर्मियो की रक्षा कीजिये ।

षण्मास तत्र गगाया स्नात्वा दृष्ट्वा सदाशिवम् । ब्राह्मणीदत्तशापात्तु मुक्तो मित्रसहोऽभवत् ॥८५॥
ततस्तु स्वपुरी प्राप्तो वसिष्ठेन महात्मना । अभिषिक्तो मुनिश्रेष्ठ स्वक राज्यमपालयत् ॥८६॥
पालयित्वा मही कृत्स्ना भुक्त्वा भोगान् स्त्रिय विना । वसिष्ठात्प्राप्य सन्तान गतोमोक्ष नृपोत्तम ॥८७॥
नैतच्चित्र द्विजश्रेष्ठ ! विष्णोर्वाराणसीगुणान् । गृणन्श्रृण्वन् स्मरन् गङ्गा पीत्वा मुक्तो भवेन्नर ॥८८॥
तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गाया शक्यते नहि । पार गन्तु सुराधीशै ब्रह्मविष्णुशिवैरपि ॥८९॥
यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभि । विमुक्तो ब्रह्मसदन नरो याति न सशय ॥९०॥
गङ्गा गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा । तदैव पापनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥९१॥
इतिश्रीवृहन्नानारदीयपुराणतो गगामाहात्म्यखण्डे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

उन राक्षसो ने इस प्रकार जब गगा जी का माहात्म्य कहा तो वह विप्रवर अति विस्मित हुआ और सोचा कि जब इन राक्षसो की लोकजननी गगा मे ऐसी भक्ति है तो फिर जो गगा जी के माहात्य को जानते है, उन बडे पुण्यात्माओ की श्रद्धा के विषय मे क्या कहा जा सकता है ? फिर उसने सोचा कि जो सभी प्राणियो का हित करता है, वह भक्त परम पद प्राप्त करता है, अत सबो का उद्धार करना भी धर्म है—ऐसी बाते विचार कर चित्त मे करुणा भाव लेकर उस ब्राह्मण ने तुलमी दल समेत गगाजी के जल का छीटा उनपर फेका । सरसो बराबर छीटा पडते ही वे राक्षस स्वभाव को छोडकर देवताओ के समान हो गये । पुत्र समेत वह ब्राह्मणी तथा सोमदत्त कोटि सूर्य की भाति देदीप्यमान तेज से सवलित श्रेष्ठ देवता बन गये । उनका स्वरूप शख चक्र गदाधारी विष्णु के समान हो गया और वे ब्राह्मण की स्तुति करते हुए विष्णु लोक को चले गये । परन्तु राजा कल्माषपाद उन दैत्यो की मुक्ति देखता हुआ चिन्तामग्न मुद्रा मे वही खडा ही रह गया । इस प्रकार जब वह अति दुखी हुआ तो प्रच्छन्नरूपा सरस्वती देवी ने गम्भीर वाणी मे यह धर्ममय महावाक्य उच्चारण किया—"हे महाभाग राजन् ! तुम दुखी न हो, कर्म भोग के अनन्तर तुम्हारी भी मुक्ति हो जायगी" ऐसी आकाश वाणी सुन वह राजा मन मे सन्तुष्ट हुआ और उसे अपने गुरु वशिष्ठ के वचन का स्मरण हो आया, और हर्षित होकर अपना सब वृत्तान्त उस ब्राह्मण को सुनाया । हे नारदजी ! तदनन्तर उस राजा ने कलिग देशीय गर्ग ब्राह्मण को प्रणाम किया और विधिपूर्वक भगवान् विष्णु के नामो का कीर्तन करते हुए काशी पुरी को प्रस्थित हुआ ।

वहाँ उसने छ मास तक स्नान कर भगवान् सदाशिव का दर्शन किया, जिससे उस राजा मित्रसह की ब्राह्मणी के शाप से मुक्ति हो गई । तदनन्तर जब वह शाप से विमुक्त हो अपनी राजधानी को पहुँचा तो महर्षि वसिष्ठ ने उसका राज्याभिषेक किया और वह पुन अपने राज्य का पालन करने लगा । राज्य का पालन करते हुए समस्त वसुधरा का भोग किया, केवल स्त्री समागम से वचित रहा, किन्तु महर्षि वसिष्ठ की कृपा से सन्तान की प्राप्ति कर मोक्ष को प्राप्त किया । हे विप्रवर्य्य नारद जी ! इस कथा मे कोई आश्चर्य नही है, भगवान् विष्णु तथा वाराणसी पुरी के गुणो को जो लोग कहते या सुनते है, अथवा गगा जल पान करते है, वे मुक्त हो जाते है । अत हे विप्रेन्द्र ! ब्रह्मा, विष्णु, तथा महादेव जी भी गगा जी की महिमा का पार नही पा सकते, अन्य लोगो की बात ही क्या है ? पवित्र गगाजी का नाम लेने से मनुष्य करोडो महापापो से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।

चतुर्थ अध्याय

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि तीर्थाना लक्षण पृथक्। येन विज्ञातमात्रेण पापिना गतिरुत्तमा ॥१॥
सर्वेषामपि तीर्थाना श्रेष्ठा गगा धरातले। न तस्या सदृश किंचित् विद्यते पापनाशनम् ॥२॥
तच्छ्रुत्वा वचन तस्य वसो स्वस्य पुरोधस। प्रणता मोहिनी प्राह गगास्नानकृतादरा ॥३॥

मोहिन्युवाच

भगवन् वाडवश्रेष्ठ गगामाहात्म्यमुत्तमम्। सर्वेषा च पुराणाना सम्मत वद साम्प्रतम् ॥४॥
श्रुत्वा माहात्म्यमतुल गगाया पापनाशनम्। पश्चात्पापविनाशिन्या स्नातु यास्ये त्वया सह ॥५॥
तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्य वसु सर्वपुराणवित्। माहात्म्य कथयामास गगाया पापनाशनम् ॥६॥

वसु ने कहा —मोहिनि! मे तीर्थो का भिन्न लक्षण बतला रहा हूँ, सुनो। जिसके केवल लक्षण जान लेने मे पापियो को उत्तम गति प्राप्त होती है। इस पृथ्वीतल मे सभी तीर्थो मे गगा श्रेष्ठ है, उसके समान पापो का नाश करनेवाला कोई अन्य तीर्थ इस भूमण्डल मे नही है। अपने पुरोहित वसु की ये बाते सुनकर गगास्नान के लिए आदरयुक्त मन से मोहिनी ने विनम्र भाव से पूछा —

मोहिनी ने कहा —भगवन्! वाडव श्रेष्ठ! अब मुझे सभी पुराणो से सम्मत गगाजी के उत्तम माहात्म्य को बतलाइये। पापनाशिनी गगाजी के अनुपम पापनाशी माहात्म्य को सुनने के बाद तुम्हारे साथ मै स्नान को चलूँगी। सभी पुराणो के जाननेवाले वसु ने मोहिनी की प्रार्थना सुनकर गगाजी का उत्तम पापनाशी माहात्म्य बतलाया।

बृहन्नारदीय पुराण मे एकादशी माहात्म्य के प्रसग पर महर्षि वसिष्ठ ने नृपतिवर मान्धाता के प्रश्न करने पर मोहिनी की कथा इस प्रकार कही है। उक्त प्रसग बहुत विस्तृत है, अत मूल मे पूरा देने पर बहुत विस्तार हो जाता मोहनी की वह कथा सामञ्जस्य के लिए सक्षेप मे दी जा रही है—

प्राचीनकाल मे रुक्माङ्गद नामक एक परम धार्मिक राजा इस पृथ्वी पर शासन करता था। उसके प्रताप से राज्य भर मे किसी प्रकार की चिन्ता नही थी। लोग अपने अपने आश्रमो एव धर्मो मे निष्ठा रख सुखपूर्वक काल यापन करते थे। राजा की आज्ञा से राज्य भर मे ८ वर्ष से लेकर ८५ वर्ष तक के सभी मनुष्य एकादशी व्रत रखते थे। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्रकार का पाप नही करते थे। सयमपूर्वक रह कर राजा की इस आज्ञा का पालन करते थे जो उल्लघन करता था, उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। इस प्रकार सारी प्रजा सभी सुखो से पूर्ण ऐहिक जीवन व्यतीत कर स्वर्ग को जाने लगी। परिणामत नरक मे सन्नाटा छा गया। यमराज के अधिकारीगण नरक को सूना देख चिन्तित हुए, स्वय यम भी चिन्तित थे, इसी अवसर पर नारद जी पहुँचे। यम को चिन्तित एव नरक को बिल्कुल सुनसान

वसुरुवाच

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपिचाश्रमा । येषा भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा ।।७।।
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुन: । ता गति न लभेज्जन्तु गंगां ससेव्य या लभेत् ।।८।।
पूर्वे वयसि पापानि कृत्वा कर्माणि ये नरा । शेषे गगा निषेवन्ते तेऽपि यान्ति परा गतिम् ।।९।।
तिष्ठेद्युगसहस्र तु पादेनैकेन य पुमान् । मासमेक तु गगाया स्नातस्तुल्यफलावुभौ ।।१०।।
तिष्ठेतावाक्छिरा यस्तु युगानामयुत पुमान् । तिष्ठेद्यथेष्ट यश्चापि गगाया स विशिष्यते ।।११।।

वसु ने कहा —मोहिनि ! ससार मे वे देश, वे प्रान्त, वे पर्वत तथा वे आश्रम धन्य है, जिनके समीप पुण्यसलिला भगवती भागीरथी की धारा प्रवाहित होती है । तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञाराधन, तथा दानादि सत्कर्मो से प्राणी वैसी गति नही प्राप्त कर सकता जैसी गति गगा की आराधना कर प्राप्त कर सकता है । जो मनुष्य अपनी प्रथम अवस्था मे पापकर्म करते है तथा वृद्धावस्था मे भागीरथी का सेवन करते है, वे भी गगा के माहात्म्य से परमगति प्राप्त करते है । जो पुरुष एक युग पर्यन्त एक पैर से खडा होकर उग्र तपस्या करता है, और जो केवल एक मास तक गगाजी मे स्नान करता है, वे दोनो समान पुण्य प्राप्त करते है— । जो पुरुष दस सहस्रयुगो तक शिर को नीचे कर तपस्या करता है और जो जीवन पर्यन्त भागीरथी के तट पर नियमपूर्वक निवास करता है उन दोनो मे वास करने वाला विशिष्ट फल प्राप्त करता है । दुख से दुखी सभी प्रकार के जीवो के लिये—जो सगति के अन्वेषण मे रत रहते है—गगा के समान अन्य कोई गति नही है । अति घोर पातको के परिणाम से नरकलोक को जानेवाले अतिअधम पुरुषो को भी गगा अपने माहात्म्य के बल से उबार लेती है । निश्चय ही वे बडभागी मनुष्य इन्द्र-

---

देख नारद ने कारण पूछा । यम ने कहा, महाराज क्या बताऊँ ? रुक्मागद ने नरक का द्वार ही बन्द करा दिया, वह स्वय तो एकादशी का व्रत रखता ही है, उसकी प्रजा भी एकादशी पर विशेष श्रद्धा रखती है, उसी का यह परिणाम है । नारद ने कहा—महाशय, यह तो बडी अच्छी बात है, आप भी शान्ति से समय बिताइये, लोग भी सुख भोगे— इसमे दुखी होने का तो कोई कारण नही है । यम ने कहा, महाराज ! आप सच कह रहे है, किन्तु बिना कोई काम किये हराम का खाना बुरा है । अत ब्रह्मा जी से चल कर निवेदन करूँगा कि क्या किया जाय? ऐसा निश्चित कर यमराज चित्र-गुप्त और नारद के साथ ब्रह्मा के पास पहुँचे और सब निवेदन किया और अपना पाश तथा दण्ड उनके आग रख दिया । ब्रह्मा ने समझाया कि क्या किया जाय ? यह एकादशी का माहात्म्य है, यम ने कहा सो तो सही है पर मुझसे बेकार बैठे नही रहा जाता, अत या तो आप रुक्मागद को पथ भ्रष्ट करे अन्यथा हमे अवकाश दे । ब्रह्मा ने कहा—अच्छी बात है, मै सोच कर बताऊँगा । यम को समझा बुझा कर बिदा करने के बाद ब्रह्मा ने रुक्मागद को विचलित करने का उपाय सोचा और एक परम सुन्दरी कन्या उत्पन्न की । उसे देख कर सभी जीव मोहित हो जाते थे । अत उसका नाम मोहिनी रखा । समय आने पर ब्रह्मा जी ने मोहिनी से कहा, बेटी ! मैने रुक्मागद को छलने के लिए तुम्हारी सृष्टि की है, सो तुम मन्दराचल को जाओ, वहाँ तुम्हे देख कर वह मोहित हो जायगा और तुम से विवाह करने को आतुर होगा । उस समय तुम उससे कहना कि मै विवाह तो तुमसे कर लूँगी पर मेरा कहना तुम्हे सर्वदा मानना पडेगा । जब वह स्वीकार कर ले तब विवाह करना और अवसर आने पर मेरा मनोरथ पूर्ण करना ।

भूताना हि सर्वेषा दुःखोपहतचेतसाम्। गतिमन्वेषमाणाना न गगासदृशी गतिः ॥१२॥
प्रकृष्टैः पातकैर्घोरै पापिन पुरुषाधमान्। प्रसह्य तारयेद्गगा गच्छतो निरयेऽशुचौ ॥१३॥
ते समानास्तु मुनिभिर्नून देवैः सवासवैः। येऽभिगच्छन्ति सतत गगामभिमता सुरै ॥१४॥
अन्धान् जडान्द्रव्यहीनाश्च गगा सपावयेद्बृहती विश्वरूपा।
देवै सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च निषेविता। सर्वकाल समृद्ध्यै ॥१५॥

समेत देवताओ तथा वेदशास्त्र के तत्वो को जाननेवाले मुनियो के समान है, जो देवताओ द्वारा अभिमत भगवती गगा की प्रतिदिन यात्रा करते हे। सर्वदा इन्द्र समेत देवताओ, मुनियो तथा मानवो से समृद्धि के लिए सुसेवित पुण्य-सलिला गगा अन्धो, मूर्खो और निर्धनो को तारती है, वह विश्वरूपा है, परम तेजस्विनी है। यह गगा अमा-वास्या के दस दिन पहिले से अर्थात् प्रत्येक कृष्णपक्ष की पचमी से अमावास्या तक पृथ्वीलोक मे सन्निहित होती है फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर दस दिन तक पाताललोक मे सन्निधान करती है, और इसी प्रकार शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पचमी तक सर्वदा स्वर्ग मे सन्निहित होती है। सतयुग मे सभी तीर्थ महत्त्वशाली थे, त्रेता मे पुष्कर क्षेत्र का माहात्म्य अधिक था, द्वापर युग मे कुरुक्षेत्र महत्त्वपूर्ण माना गया है, कलियुग मे गगा का विशेष महत्त्व है। इसका कारण यह है कि कलियुग मे अन्य सभी तीर्थ स्वभावत अपने महत्त्व एव पराक्रम को गगा मे छोड देते है, किन्तु यह गगा अपने तेज को कही नही छोडती है। गगा के परम पुनीत जल-कण से युक्त वायु के स्पर्श मात्र से ही पापी मनुष्य भी परम गति प्राप्त करते है। जो ये सर्वान्तर्यामी भगवान विष्णु चित्स्वरूप है, वे ही द्रवस्वरूप से गगा के परम पुनीत जल है, इसमे कोई सशय नही है। ब्राह्मण की हत्या करने वाला, गुरु की हत्या करनेवाला, गो हत्यारा, चोर और गुरुपत्नी के साथ समागम करनेवाला—ऐसे घोर

निदान मोहिनी ब्रह्मा की आज्ञा प्राप्त कर मन्दराचल की ओर गई। इधर राजा रुक्मागद भी मृगया के प्रसग से वहाँ पहुँचा। वहाँ मोहिनी को देखते ही वह कामासक्त होकर मूर्च्छित हो गया। राजा को इस भाँति मर्च्छित देख मोहिनी ने जाकर उठाया और सान्त्वना भरे शब्दो मे सत्कार किया। राजा ने पूछा, सन्दरि! इस घोर पर्वत मे इतनी रूपराशि लिए तुम अकेली फिरने वाली कौन हो? मेरा सारा राज्य, यह शरीर आज से तुम्हे अर्पित है। मोहिनी ने उत्तर दिया —राजन! मै ब्रह्मा की पुत्री हूँ, मेरा नाम मोहिनी हे, मै आप का अनुरोध स्वीकार तो कर लूँगी, किन्तु यह प्रतिज्ञा आप करे कि मै जो कुछ कहूँगी वह आपको मानना पडेगा। राजा ने कहा —सुन्दरि! मै सत्यवादी राजा ऋतध्वज का पुत्र हूँ, जन्म से लेकर आज तक कभी परिहास कथा मे भी मैंने मिथ्या भाषण नही किया है, मै तुम्हारी बातो को कभी न टालूँगा—विश्वास करो। मोहिनी ने प्रसन्न चित्त हो राजा का वरण किया। भावी की प्रबलता, अपनी प्रतिज्ञा की दृढता के लिए राजा ने मोहिनी से यह भी प्रतिज्ञा की कि यदि कभी मै प्रतिज्ञा-भ्रष्ट हो जाऊँ तो मेरे सारे सुकृत नष्ट हो जायँ।

मोहिनी को साथ ले राजा अपने नगर को पहुँचा, उसके पुत्र धर्माङ्गद ने पिता समेत विमाता का बहुत सम्मान किया, उसकी रानियो ने बडी प्रसन्नता प्रकट की। मोहिनी इससे बहुत प्रभावित हुई। एक दिन मोहिनी ने कहा—महाराज! ऐसे योग्यपुत्र के होते हुए भी आप राज्य कार्य मे क्यो व्यस्त है? राज्य भार पुत्र को सौप कर स्वच्छन्द विचरण कीजिये। राजा को मोहिनी की बात पसन्द आ गई और दूसरे दिन राज्यभार पुत्र को सौप वह मोहिनी के साथ वन को प्रस्थित हुआ। धर्माङ्गद ने सुविधा के लिए अनेक दास दासियो को साथ कर दिया।

पश्चादौ कृष्णपक्षेतु भूमौ सन्निहिता भवेत् । यावत्पुण्या ह्यमावस्या दिनानि दश मोहिनि ॥१६॥
शुक्ल-प्रतिपदादेश्च दिनानि दशसख्यया । पाताले सन्निधाने तु कुरुते स्वयमेव हि ॥१७॥
आरभ्य शुक्लैकादश्या दिनानि दश यानि तु । पचम्यन्तानि सा स्वर्गे भवेत्सन्निहिता सदा ॥१८॥
कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेताया पुष्कर परम् । द्वापरे तु कुरुक्षेत्र कलौ गगा विशिष्यते ॥१९॥

पापी भी गगाजल से पवित्र हो जाते है, इसमे विचार करने की कोई बात नही है। क्षेत्र मे विद्यमान, या कही अन्यत्र उठाकर लाया गया अतिशय शीतल वा अतिशय उष्ण—सभी प्रकार का गगा का पुनीत जल आजीवन किये गये पापो को नष्ट करने वाला है। बासी जल को वर्जित रखना चाहिये, बासी पत्ते का उपयोग नही करना चाहिये, किन्तु बासी गगाजल तथा बासी तुलसी के पत्ते के लिए यह नियम नही है अर्थात् ये पुराने हो जाने पर भी काम मे लाये जा सकते है। सुमेरु पर्वत के सुवर्ण, सभी प्रकार के रत्न, पत्थरो के टुकडे तथा वहाँ के जलाशयो की परिगणना की जा सकती है किन्तु गगा जी के परम पुनीत जल गुणो की परिगणना नही की जा सकती। तीर्थयात्रा की सम्पूर्ण विधि को न करने वाला मानव भी गगाजल के माहात्म्य से समस्त फलो को प्राप्त करता है। चिन्तामणि के गुणो से भी बढ कर गुणशाली गगाजल के विन्दु है, जो कि भक्तो को मनोवाछित फलो को विशेष रूप से देने वाले है। भक्तिपूर्वक एक कुल्ला गगाजल पान कर लेने पर मनुष्य मानो स्वर्ग मे कामधेनु के स्तनो से नि सृत दिव्य रसो का पान करता है। शालग्राम की शिला पर जो मनुष्य भक्ति से गगाजल को छोडता है वह अपने हृदय के अज्ञानान्धकार को विनष्टकर प्रात कालीन सूर्य की भाँति शोभित होता है। मानसिक, वाचिक, एव शारीरिक विविध प्रकार के पापो से मनुष्य केवल गगादर्शन मात्र से छूट जाता है, इसमे सन्देह नही। गगाजल से भीगी हुई भिक्षा को भी जो मनुष्य सदा भक्षण करता है

वन मे मोहिनी के साथ सुखपूर्वक निवास करते हुए राजा के नव वर्ष बीत गये। एकादशी तथा उसके पूर्व और पश्चात् के दिनो को छोड कर वह सर्वदा भोग विलास मे लीन रहता था। एक बार उसे ध्यान मे आया कि मेरा कार्तिकव्रत छूट गया। उसने मोहिनी से कहा, कार्तिक बिष्णु का पवित्र महीना है, तुम्हारे साथ मेरा यह पवित्र व्रत कई वर्षा से छूट गया, मै इस वर्ष इसे करना चाहता हूँ। मोहिनी ने व्रत का विरोध करते हुए कहा, महाराज! व्रतादि विधान ब्राह्मणो के लिए बने है, क्षत्रिय विशेषकर आप जैसे महाराज को यह सब शोभा नही देता, यदि आपको अभीष्ट है तो रानी सन्ध्यावली से इसे पूर्ण कराइये। राजा ने वैसा ही किया। एक दिन राजा को दशमी तिथि भूल गई, उस दिन वह भोग विलास मे लिप्त था। सयोगत राज्य के ढिढोरे उसके कान मे पडे और वह मोहिनी को एकाएक छोडकर खडा हो गया। मोहिनी को यह नही रुचा। उसने बिगडकर कहा, मै व्रत की निन्दा तो नही करती परन्तु मेरी इच्छा है कि आप कल व्रती न रहे। राजा ने दु खी हो कहा —मै तुम्हारे इस प्रस्ताव पर सहमत नही हूँ। मोहिनी ने राजा को प्रतिज्ञा की याद दिलाई, पर राजा भावीवश अपनी टेक पर डटा रहा। मोहिनी ने कहा, इस प्रकार आपको कोई पाप नही लगेगा, यदि विश्वास न हो तो ब्राह्मणो को बुलाकर पूछ लीजिये। ब्राह्मणो ने कहा —महाराज! मोहिनी का कथन असत्य नही है। ब्राह्मणो की बातो से राजा बडा खिन्न हुआ, उसने स्पष्ट रूप से कहा कि यदि इस के लिए मुझे त्रिदेव भी रोके तो मै नही मान सकता। राजा की ऐसी दृढता से मोहिनी बहुत कुपित हुई, और पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण करा कर गमनोद्यत हुई। राजा की पटरानी सन्ध्यावली और पुत्र धर्माङ्गद ने बहुत बीच बचाव किया। सन्ध्यावली ने मोहिनी से कहा कि ससार मे अन्य जो भी दुर्लभ वस्तुए हो वह तुम माग सकती हो,

क्लौ तु सर्वतीर्थानि स्व स्व वीर्य स्वभावत । गगाया प्रतिमुचन्ति सा तु देवी न कुत्रचित ।।२०।।
गगाम्भ. कणदिग्धस्य वायो सस्पर्शनादपि । पापशीला अपि नरा. परा गतिमवाप्नुयु ।।२१।।
योसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दन. । स एव द्रवरूपेण गगाम्भो नात्र सशय ।।२२।।
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्न स्तेयी च गुरुतल्पग । गगाभसा च पूयन्ते नात्र कार्या विचारणा ।।२३।।

वह सर्प की केचुल की भाँति सभी पापो से विहीन हो जाता है। हिमालय एव विन्ध्याचल की भाँति कठोर पापो की राशियाँ भी गगाजल से इस प्रकार शीघ्र नष्ट हो जाती है जैसे भगवान् विष्णु की कृपा से विपत्तियाँ शीघ्र नष्ट हो जाती है।

स्नानार्थ गगा की पवित्र धारा मे प्रवेश करते ही मनुष्य के ब्रह्म हत्या आदि कठोर पाप-पुञ्ज भी हाहाकार करते हुए विनाश को प्राप्त होते है। जो पुरुष सर्वदा गगातट पर निवास करता है तथा गगा के परम पुनीत जल को पान करता है, वह पूर्वसचित पापो से मुक्त हो जाता है। जो पुरुष गगा को आश्रय बना कर नित्य निर्भय निवास करता है वह महर्षियो, देवताओ तथा मानवो सभी से पूजनीय है। अष्टागयोगसाधना से भला क्या लाभ है ? घोर तपस्याओ से भी क्या लाभ है, बडे बडे यज्ञो के करने से क्या महान् फल मिलता है ? इन सबो से बढकर विशेष फल देने वाला गगातट का निवास है। अनेक प्रकार के जपो से युक्त यज्ञो द्वारा क्या सिद्धि प्राप्त होती है, अनेक कठोर तपस्याओ तथा दानो से क्या फल प्राप्त होता है, क्योकि सुखपूर्वक सेवन करने योग्य स्वर्ग एव मोक्ष प्रदान करनेवाली गगा जब विद्यमान है। यज्ञो द्वारा, नियमो द्वारा, दान एव सन्यास द्वारा भी वे फल नही प्राप्त होते, जिन्हे गगा की सेवा कर प्राप्त किया जा सकता है। सूर्य ग्रहण के अवसर पर प्रयागक्षेत्र मे सहस्र गौ दान करने का जो फल मिलता है,उस फल को केवल एक दिन गगाजी मे स्नान करने से प्राप्त होता है । जो मनुष्य अन्य सभी कामनाओ का परित्याग कर सुनिश्चित मन से गंगातट पर निवास करता है वास्तव मे वही मोक्ष का भाजन है। विशेषत गगा जी काशीपुरी मे शीघ्र ही मोक्षदायिनी मानी गयी है। प्रत्येक महीने की चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि को उनके स्नान का विशेष माहात्म्य है। जीवन पर्यन्त सर्वदा कृच्छ्रव्रत

पर राजा की यह प्रतिज्ञा मत तोडो, मोहिनी ने कहा, अच्छी बात है, यदि राजा अपने पुत्र का शिर काटकर मेरी गोद मे डाल दे तो मै उक्त आग्रह न करूँगी। सन्ध्यावली को कुछ कष्ट तो अवश्य हुआ होगा पर वह प्रसन्न स्वर मे बोली, ऐसा ही होगा। राजा सन्ध्यावली के इस प्रस्ताव से विह्वल हो गया, उसने बहुतेरा समझाया, पर मोहिनी ने नही माना, उसने कहा—मेरी इच्छा तो यही है कि आप एकादशी को भोजन करे स्पष्ट ही आपको धर्म सकट मे डालने के लिए मै ऐसा कर रही हूँ। इसी बीच धर्माङ्गद भी आ गया, राजा की विह्वलता को उसने समझा बुझा कर दूर किया। उसने कहा, तात ! धर्म एव प्रतिज्ञा के सम्मुख पुत्र का कोई स्थान नही। आपको अवश्यमेव ऐसा करना होगा। पत्नी सन्ध्यावली और पुत्र धर्माङ्गद के आग्रह से राजा पुत्र का शिर काटने को प्रस्तुत हो गया। मोहिनी ने जब यह देखा तो विह्वल हो भूमि पर गिर पडी, उसने सोचा कि मेरा जन्म नष्ट हो गया, राजा की प्रतिज्ञा अटल बनी ही रही, मुझ अभागिनी से कुछ करते धरते नही बन पडा।

इधर ज्योही राजा पुत्र का शिर छेदन करने को उद्यत हुआ, भगवान प्रकट हो गये और बोले—मै सन्तुष्ट हूँ। अपने पुत्र धर्माङ्गद एव पटरानी सन्ध्यावली के साथ मेरे लोक को चलो। यमराज की प्रेरणा से ही मोहिनी ने तुम्हे इतना दुःखी किया है, चलो, यमराज के शिर पर लात रखकर मेरे साथ चलो।

क्षेत्रस्थमुद्धृत वापि शीतमुष्णमथापिवा। गागेय तु हरेत्तोय पापमामरणान्तिकम् ॥२४॥
वर्ज्य पर्युषित तोय वर्ज्य पर्युषित दलम्। नवर्ज्य जाह्नवीतोय नवर्ज्य तुलसीदलम् ॥२५॥
मेरो. सुवर्णस्य च सर्वरत्नै. सख्योपलानामुदकस्य वापि।
गगाजलाना न तु शक्तिरस्ति वक्तु गुणाख्या परिमाणमत्र ॥२६॥
तीर्थयात्राविधि कृत्स्नमकुर्वाणो यथा नर.। गगातोयस्य माहात्म्यात्सोप्यत्र फलभाग्भवेत् ॥२७॥
चिन्तामणिगुणाच्चापि गगायास्तोयबिन्दव। विशिष्टा यत्प्रयच्छन्ति भक्तेभ्यो वाछित फलम् ॥२८॥

के अनुष्ठान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है वह सिद्धि जीवन पर्यन्त गगातट पर निवास करने से प्राप्त होती है। इसी प्रकार कृच्छ्र एव चान्द्रायण व्रतो के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होता है वह गगा तट पर निवास से प्राप्त होता है। केवल दोपहर तक गगा-तट पर निवास करने से जो फल प्राप्त होता है, हे ब्रह्मा की पुत्री, वह फल सौ यज्ञो से भी नही मिल सकता। सभी प्रकार के यज्ञ, तपस्या, दान एव स्वाध्याय से जो फल प्राप्त होता है वह भक्ति पूर्वक गगातट पर निवास से प्राप्त होता है। जो पुण्य निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वालो को सत्य वचन बोलने से प्राप्त होता है, अथवा अग्निहोत्र के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होता है वह गगातट पर निवास से ही प्राप्त होता है। माता, पिता, स्त्री यहाँ तक कि अनन्त कोटि कुलो को भी भवसागर से गगाजी की भक्ति तारने वाली है—इसे निश्चय मानो। सुखी पुरुषो को सन्तोष ही परम ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाला है, एव वही तत्त्वज्ञान है, उमा के भक्तो को विनय, सदाचरण तथा समृद्धि की प्राप्ति होती है, किन्तु उस सन्तोष, विनय, सदाचरण तथा समृद्धि की प्राप्ति केवल गगा के प्राप्त करने से हो जाती है, अर्थात् गगा की प्राप्ति से प्राणी कृतकृत्य हो जाता है, उसे किसी अन्य फल की कामना नही रह

यमराज इस घटना से बहुत दुखी हुए। ब्रह्मा के पास जा मोहिनी का सारा वृत्तान्त उन्होने बतलाया। ब्रह्मा मोहिनी के पास गये और समझाने लगे। पुत्रि! यदि उद्योग करने पर भी सिद्धि नही मिली तो तुम्हारा कोई दोष नही है। तुम पर मै बहुत प्रसन्न हूँ। यथोचित वरदान माँग लो। इसी बीच राजा रुक्मागद के पुरोहित वसु, जो बारह वर्ष की समाधि से उठे थे, को राजा का सारा वृत्तान्त मालूम हुआ, सुनते ही वे आग बबूला हो गय और वहाँ आये जहाँ मोहिनी थी। आते ही उन्होने मोहिनी को शाप से भस्म कर दिया।

स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर मोहिनी स्वर्ग पहुँची। वहाँ भी देवदूतो ने उसे धक्का देकर निकाल दिया, और वह नरक मे पडकर विविध दुखो का अनुभव करने लगी। नरक भी उसके ससर्ग से कपायमान हुए। यहाँ तक कि पाताल वासियो ने भी उसे स्थान नही दिया। तब निराश हो कर ब्रह्मा आदि को साथ ले पुन वसु के पास आयी। ब्रह्मा के अति अनुरोध से वसु ने मोहिनी का अपराध क्षमा किया, और कहा कि आज से इसका स्थान एकादशी और दशमी के मध्यभाग मे निश्चित करता हूँ। जो मनुष्य दशमी विद्धा एकादशी व्रत रखते है, उनका सारा पुण्य तुम्हे प्राप्त होगा। अर्थात् उनका व्रत निरर्थक है। इससे देवताओ का मनोरथ भी सिद्ध होगा। किन्तु मोहिनी को उचित है कि वह विविध तीर्थो की यात्रा करे।

मोहिनी ने ब्रह्मा के कमण्डलु जल के अमिट प्रभाव से पुन पूर्ववत् शरीर प्राप्त किया, और पिता तथा पुरोहित वसु को प्रणाम किया और पुरोहित को साथ ले गगा तट पर पहुँची।

इसी के बाद प्रस्तुत कथा प्रारम्भ होती है।

गडूषमात्रतो भक्त्या सकृद्गगाभसा नर'। कामधेनुस्तनोद्भूतान् भुक्ते दिव्यरसान्दिवि ॥२९॥
शालग्रामशिलाया तु यस्तु गगाजल क्षिपेत्। अपहत्य तमस्तीव्र भाति सूर्यो यथोदये ॥३०॥
मनोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्बहुविधैरपि। वीक्ष्य गगा भवेत्पूत' पुरुषो नात्र सशयः ॥३१॥
गगातोयाभिषिक्ता तु भिक्षामश्नाति य सदा। सर्पवत्कचुक मुक्त्वा पापहीनो भवेत्स वै ॥३२॥
हिमवद्विध्यसदृशा राशय पापकर्मणाम्। गगाम्भसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापद' ॥३३॥
प्रवेशमात्रे गगाया स्नानार्थ भक्तितो नृणाम्। ब्रह्महत्यादि पापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयान्त्यलम् ॥३४॥
गगातीरे वसेन्नित्य गगातोय पिबेत्सदा। य. पुमान् स विमुच्येत पातकै पूर्वसचितै' ॥३५॥
यो वै गगा समाश्रित्य नित्य तिष्ठति निर्भय। स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभि ॥३६॥
किमष्टाँगेन योगेन कि तपोभि' किमध्वरै। वास एवहि गगाया सर्वतोपि विशिष्यते ॥३७॥
कि यज्ञैर्बहुभिर्जाप्यै कि तपोभिर्द्धनार्पणै। स्वर्गमोक्षप्रदा गगा सुखसेव्या यतस्तथा ॥३८॥
यज्ञैर्यमैश्चनियमैर्दानै. सन्यासतोपि वा। न तत्फलमवाप्नोति गगा सेव्य यदाप्नुयात् ॥३९॥
प्रभासे गोसहस्रेण राहुग्रस्ते दिवाकरे। यत्फल लभते मर्त्यो गगाया तद्दिनेन वै ॥४०॥
अन्योपायाश्च यस्त्यक्त्वा मो क्षकाम सुनिश्चित। गगातीरे सुख तिष्ठेत्स वै मोक्षस्य भाजनम् ॥४१॥
वाराणस्या विशेषेण गगा सद्यस्तु मोक्षदा। प्रतिमास चतुर्दश्यामष्टम्या चैव सर्वदा ॥४२॥
गगातीरे निवासश्च यावज्जीव च सिद्धिद.। सकृच्छ्राणि सदाकृत्वा यत्फल चाश्नुते सदा ॥४३॥
कृच्छ्राणि तु सदा कृत्वा यत्फल चाश्नुते सदा।
चान्द्रायण चैव तथा तल्लभेज्जाह्नवीतटे। गगासेवापरस्येह दिवसार्द्धेन यत्फलम् ॥४४॥
नतच्छक्य ब्रह्मसुते प्राप्तु क्रतुशतैरपि। सर्वयज्ञतपोदानयागस्वाध्यायकर्मभि ॥४५॥
यत्फल तल्लभेद्भक्त्या गगातीरनिवासत.। यत्पुण्य सत्यवचनैर्नैष्ठिक-ब्रह्मचारिणाम् ॥४६॥
यदग्नि-होतृणा पुण्य तत्तु गगानिवासत.। समातृपितृदाराणा कुलकोटिमनन्तकम् ॥४७॥

जाती। मरने पर भी वह गगा का भक्त तथा गगा मे गति प्राप्त करने वाला हो जाता है, इसमे तनिक भी सन्देह नही। जो पुरुष भक्तिपूर्वक गगाजल का स्पर्श करता है तथा गगाजल का पान करता है, वह बिना किसी परिश्रम के मोक्ष का प्रमुख उपाय प्राप्त करता है तथा सभी यज्ञो मे दीक्षित होकर प्रति दिन सोम रस पान करता है। जिन मनुष्यो के सब काम गगाजल द्वारा सम्पन्न होता है, वे अपने इस नश्वर शरीर को छोडने के बाद शिव के समीप विराजमान होते है। वे जिस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र मण्डल मे विद्यमान अमृत रस को इन्द्रादि प्रमुख देवगण पान करते है उसी प्रकार भक्त मनुष्य गगाजल को पान करते है। विधिपूर्वक अनेक कन्या दानो के करने से तथा भक्तिपूर्वक भूमि के दानो के करने से अनेक बार अन्नदान, गोदान, स्वर्ण आदि के दानो के करने से तथा रथ, अश्व आदि के दानो से जो पुण्य कहा गया है उससे शत गुणित अधिक पुण्य केवल चुल्लू भर गगाजल के पान करने से प्राप्त होता है। सहस्रो चान्द्रायण व्रत के अनुष्ठान का जो फल बताया गया है उससे अधिक फल गगाजल के पान करने से प्राप्त होता है। केवल एक कुल्ली भर गगाजल के पान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जो स्वच्छन्द गगा-जल पान करता है उसके हाथो मे मुक्ति का निवास है। तीन महीनो मे सरस्वती नदी का जल, सात महीने मे यमुना का जल, दस महीने मे नर्मदा का जल तथा एक वर्ष मे गगा का जल जीर्ण होता है। शास्त्रीय रीति से जिन देहधारियो के मरण के समय भी गगा जल नही दिया गया है—और कही अन्य स्थल पर जिनकी मृत्यु हो चुकी है—ऐसे भी प्राणियो को उत्तम फल की प्राप्ति केवल गगा मे हड्डी के सयोग

गंगाभक्तिस्तारयते ससारार्णवतो ध्रुवम् । सतोष. परमैश्वर्य तत्त्वज्ञान सुखात्मनाम् ।।४८।।
विनयाचारसंपत्तिरुमाभक्तस्य जायते । कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो गगां प्राप्यैव केवलम् ।।४९।।
तद्भक्तस्तत्परश्च स्यान्मृतो वापि न सशय' । भक्त्या तज्जलसस्पर्शो तज्जल पिबते च य. ।।५०।।
अनायासेन हि नरो 'मोक्षोपाय स विन्दति । दीक्षित सर्वयज्ञेषु सोमपान दिने दिने ।।५१।।
सर्वाणि येषा गगायास्तोयैः कृत्यानि सर्वदा । देह त्यक्त्वा नरास्ते तु मोदन्ते शिवसन्निधौ ।।५२।।
देवा' सोमार्कसस्थानि यथा शक्रादयो मुखे ।।अमृतान्युपभुञ्जन्ति तथा गगाजल नरा ।।५३।।
कन्यादानैश्च विधिवद्भूमिदानैश्च भक्तित । अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा ।।५४।।
रथाश्वगजदानैश्च यत्पुण्य प्रकीर्तितम् । ततः शतगुण पुण्य गगाम्भश्चुलुकाशनात् ।।५५।।
चान्द्रायणसहस्राणा यत्फल परिकीर्त्तितम् । ततोधिकफल गगातोयपानादवाप्यते ।।५६।।
गडूषमात्रपाने तु अश्वमेध-फल लभेत् । स्वच्छन्द य: पिबेदम्भस्तस्य मुक्ति. करेस्थिता ।।५७।।
त्रिभि. सारस्वत तोय सप्तभिस्त्वथ यामुनम् । नार्मद दशभिर्मासैर्गंगा वर्षेण जीर्यति ।।५८।।
शस्त्रेणाकृत तोयाना मृताना क्वापि देहिनाम् । तदुत्तरफलावाप्तिर्गंगायामस्थियोगत' ।।५९।।
चान्द्रायणसहस्र तु यश्चरेत्कायशोधनम् । य' पिबेत्तु यथेष्ट तु गगाम्भ स विशिष्यते ।।६०।।
गगा पश्यति य: स्तौति स्नाति भक्त्या पिबेज्जलम् । स स्वर्गज्ञानममल योग मोक्ष च विन्दति ।।६१।।
यस्तु सूर्यसुनिष्टप्त-गागेय पिबते जलम् । गोमूत्रपावकाहाराद्गागपान विशिष्यते ।।६२।।

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गगा माहात्म्ये चतुर्थोऽध्याय. ।।४।।

हो जाने से होती है। सहस्रो चान्द्रायण व्रत करके जिसने अपनी काया शुद्ध की है, और जिसने यथेष्ट गगाजल का पान किया है इन दोनो में गगाजल पान करने वाला विशेष शुद्ध है। जो मनुष्य गगा जी को देखते हैं, स्तुति करते हैं, भक्तिपूर्वक स्नान करते हैं तथा गगाजल को पान करते हैं, वे स्वर्ग, निर्मल ज्ञान, योग एव मोक्ष––इन सबो को प्राप्त करते हैं। जो लोग सूर्य की किरणो से सुतप्त गगाजल का पान करते हैं, वे भी पूर्वोक्त फलो को प्राप्त करते हैं, अधिक क्या कहा जाय गगा जी के पवित्र जल का पान गो-मूत्र तथा पावकाहार (चित्रकवृक्ष का रस ?) इन दोनो से विशेष महत्त्वपूर्ण है। ।।१––६२।।

इति श्री बृहत्नारदीय पुराण से गगा माहात्म्य नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ।४।।

अथ पञ्चम अध्याय

भवन्ति निर्विषा· सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् । गङ्गासन्दर्शनात् तद्वत् सर्वपापै प्रमुच्यते ॥१॥
सप्तावरान् सप्त परान् पितॄन्स्तेभ्यश्च ये परे । पुमास्तारयते गङ्गा वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च ॥२॥
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गगेति कीर्तनात् । पुमान्पुनाति पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रश· ॥३॥
ज्ञानमैश्वर्यमतुल प्रतिष्ठायुर्यशस्तथा । शुभानामाश्रमाणा च गगादर्शनज फलम् ॥४॥
सर्वेन्द्रियाणां चाञ्चल्य व्यसनानि च पातकम् । निघृणत्वञ्च नश्यन्ति गङ्गादर्शनमात्रत. ॥५॥
परहिंसा च कौटिल्य परदोषाद्यवेक्षणम् । दाम्भिकत्व नृणा गङ्गादर्शनादेव नश्यति ॥६॥
मुहुर्मुहुस्तथा पश्येत्स्पृशेद्वापि मुहुर्मुहु. । भक्त्या यदिच्छति नर शाश्वत पदमव्ययम् ॥७॥
वापीकूपतडागादि प्रपासत्रादिभिस्तथा । अन्यत्र यद्भवेत्पुण्य तद्गगा-दर्शनाद्भवेत् ॥८॥
यत्फल जायते पु सा दर्शने परमात्मन· । तद्भवेदेव गङ्गाया दर्शनाद्भक्तिभावत ॥९॥
नैमिषे च कुरुक्षेत्रे नर्मदायां च पुष्करे । स्नानात्सस्पर्शनात्सेव्य सुफल लभते नर· ॥१०॥
तद्गगादर्शनादेव कलौ प्राहु र्महर्षय· । अशुभै· कर्मभिर्युक्तान् मज्जमानान्भवार्णवे ॥११॥
पततो नरके गगा स्मृता दूरात्समुद्धरेत् । योजनाना सहस्रेषु गगां स्मरति यो नरः ॥१२॥
अपि दुष्कृत-कर्मा हि लभते परमा गतिम् । स्मरणादेव गगायाः पापसघातपजरम् ॥१३॥
भेदं सहस्रधा याति गिरिर्वज्रहतो यथा । गच्छस्तिष्ठन्स्वपन्ध्यायञ्जाग्रद्भुञ्जन्हसन् रुदन् ॥१४॥

जिस प्रकार गरुड के दर्शन से सर्प विष रहित हो जाते है उसी प्रकार गगा के दर्शन करने से मनुष्य सभी पापो से छूट जाता है। सात अपर पुरुषो के अतिरिक्त जो सात अन्य पूर्व पुरुष है, उन्हे भी मनुष्य गगा का दर्शन करके, स्पर्श करके तथा स्नान करके तारता है। गगा के दर्शन, स्पर्श तथा 'गगा गगा' नाम कीर्तन से पुरुष अपने सैकडो सहस्रो पूर्व पुरुषो को तारता है। अतुल ज्ञान, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, दीर्घायु एव शुभ कारक आश्रय धर्मो के पालन का सत्फल गगा के दर्शन से प्राप्त होता है। सभी इन्द्रियो की चचलता, दुर्व्यसन तथा पातक, निर्दयता, ये सभी गगा के दर्शन मात्र से दूर हो जाते है। परकीय हिंसा, कुटिलता, परकीय दोष एव बुराइयो का देखना दम्भ करना—ये सभी मानवीय दुर्गुण गगा के दर्शन मात्र से नष्ट होने है, जो मनुष्य शाश्वत अव्यय पद को प्राप्त करने की इच्छा रखता है वह बारम्बार गगा का दर्शन करे, तथा बारम्बार स्पर्श करे। बावली, कूप, तडागादि एव अन्य जलाशयो मे स्नान से जो पुण्य मिलता है वह गगा के दर्शन मात्र से प्राप्त होता है। मनुष्यो को परमात्मा के दर्शन से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य भक्ति भावना से गगा के दर्शन मात्र करने से प्राप्त होता है। नैमिष, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, पुष्कर क्षेत्र मे स्नान कर भली भाँति उनका सेवन करने से जो सत्फल मनुष्य प्राप्त करता है, वह फल केवल गगा के दर्शन से प्राप्त करता है—ऐसा महर्षियो ने कहा है। अमागलिक कर्मो से युक्त भवसागर मे डूबते हुए प्राणियो को नरक मे गिरते समय स्मरणमात्र करने से गगा दूर से ही उबार लेती है। सहस्रो योजनो के अन्तर पर रह कर भी जो मनुष्य गगा का स्मरण करता है वह भले ही दुष्कर्मी हो परन्तु परमगति प्राप्त करता है। गगा के स्मरण मात्र करने मे पाप समूहो का पजर सहस्र टुकडो मे इस प्रकार टूट कर परिणत हो जाता है जैसे वज्र से आहत होकर पर्वत। जाते, बैठे, सोते, ध्यान करते, जागते, भोजन करते, हँसते, रोते समय जो निरन्तर गगा का स्मरण करते है

य स्मरेत् सतत गगा स च मुच्येत बधनात् । सहस्रयोजनस्थाश्च गगा भक्त्या स्मरति ये ॥१५॥
गगा गगेति चाक्रुश्य मुच्यन्ते तेऽपि पातकात् । ये च स्मरन्ति वै गगा गगाभक्तिपराश्च ये ॥१६॥
तेऽप्यशेषैर्महापापैर्मुच्यन्ते नात्र सशय । भवनानि विचित्राणि विचित्राभरणास्त्रिय. ॥१७॥
आरोग्य वित्तसम्पत्तिर्गगास्मरणजफलम् । मनसा सस्मरेद्यस्तु गगा दूरस्थितो नर ॥१८॥
चान्द्रायणसहस्रस्य स फल लभते ध्रुवम् । गगा गगा जपन्नामयोजनाना शतेस्थित· ॥१९॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति । कीर्तनान्मुच्यते पापाद्दर्शनान्मङ्गल लभेत् ॥२०॥
अवगाह्य तथा पीत्वा पुनात्यासप्तम कुलम् । सप्तावरान्परान्सप्त सप्ताथ परत· परान् ॥२१॥
गगा तारयते पुसा प्रसगेनापि कीर्तिता । अश्रद्धया तु गगाया यस्तु नामानुकीर्तनम् ॥२२॥
करोति पुण्यवाहिन्या सोऽपि स्वर्गस्य भाजनम् । सर्वावस्थागतोवापि सर्वधर्मविवर्जित· ॥२३॥
गंगाया कीर्तनेनैव शुभा गतिमवाप्नुयात् । ब्रह्महा गुरुहा गोघ्न स्पृष्टो वा सर्वपातकै ॥२४॥
कदा द्रक्ष्यामि ता गगा कदा स्नान लभे ह्यहम् । इति पुसाऽभिलपिता कुलाना तारयेच्छतम् ॥२५॥
अथ स्नानफलं देवि गगाया प्रवदामि ते । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशयः ॥२६॥
स्नातस्य गगासलिले सद्य पाप प्रणश्यति । अपूर्वपुण्यप्राप्तिश्च सद्यो मोहिनि जायते ॥२७॥
स्नाताना शुचिभिस्तोयै गागेयै प्रयतात्मनाम् । व्युष्टि र्भवति या पुसा न सा क्रतुशतैरपि ॥२८॥

वे बन्धन से मुक्त हो जाते है। सहस्र योजन पर स्थित भी जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गगा का स्मरण करते हैं, वे भी गगा गगा चिल्ला कर पापो से छुटकारा पाते है। गगा की भक्ति मे निरत जो मनुष्य गगा का स्मरण करते है, वे भी सम्पूर्ण महा-पापो से मुक्त हो जाते हैं, इसमे सन्देह नही। विचित्र भवन, विचित्र आभूषण धारण करने वाली स्त्रियाँ, आरोग्य, वित्त, सम्पत्ति—ये सभी गगा के स्मरण के फल है। दूर पर स्थित भी जो मनुष्य गगा का स्मरण करता है वह निश्चय ही एक सहस्र चान्द्रायण व्रत का सत्फल प्राप्त करता है। सैकडो योजनो पर अवस्थित भी मनुष्य गगा गगा—इस प्रकार के नाम के स्मरण करने से सभी पापो से मुक्त होकर विष्णु लोक को जाता है। गगा गगा इस प्रकार कीर्तन करने से सभी पापो से छूटता है, दर्शन करने से मगल प्राप्त करता है, अवगाहन तथा पान करके सात पुरुषो को पवित्र करता है। सात अपर पुरुषो को, सात पर पुरुषो को, सात पर से भी अपर पुरुषो को गगा प्रसग मात्र मे कीर्तन करने से तारती है। अश्रद्धा से भी जो गगा नाम कीर्तन करता है, उस पुण्यवाहिनी के अद्भुत माहात्म्य से वह प्राणी भी स्वर्ग का भाजन होता है। सभी धर्म कर्मो से विवर्जित सभी निकृष्ट अवस्था मे प्राप्त मनुष्य भी गगा नाम कीर्तन से शुभ गति प्राप्त करता है। ब्रह्म हत्या, गुरु हत्या, गो हत्या आदि कठोर पापो का करने वाला अर्थात सभी घोर पापो का करने वाला मनुष्य भी गगा जल के स्पर्श से सभी पापो से मुक्त होता है। कब उस पुण्यवाहिनी गगा का दर्शन करूँगा ? कब उसकी धारा मे स्नान करूँगा ? मनुष्यो की ऐसी अभिलाषा भी सौ पुरुषो को तारने वाली है। हे देवि ! अब मैं गगा के स्नान का फल तुम्हे बतला रहा हूँ, जिसे सुनकर निस्सदेह प्राणी सभी पातको से मुक्त हो जाता है। गगाजल मे स्नान करने वाले प्राणी का सभी पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, और हे मोहिनि ! उसे अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होती है। गगा के परम पुनीत जल से स्नान करनेवाले जितात्मा प्राणी को जो शुद्धि प्राप्त होती है, वह सैकडो यज्ञो के करने से भी नही होती। जिस प्रकार उदयाचल पर आसीन सूर्य कठोर अन्धकार का विनाश कर शोभित होता है, उसी प्रकार गगाजल से स्नान करने वाला मनुष्य अपने कठोर पापो को विनष्ट कर शोभित होता है। हे राज सुन्दरि ! विधिपूर्वक गगा मे किये गए केवल एक स्नान के करने से मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है, इसमे सन्देह नही। स्नान करने से मनुष्य के अनेक जन्मार्जित पाप नष्ट

अपहत्य तमस्तीव्र यथा. भात्युदये रवि । तथापहत्य पाप्मान भाति गगाजलोक्षित' ॥२९॥
एकेनैवापि विधिना स्नानेन नृपसुन्दरि । अश्वमेधफल मर्त्यो गगाया लभते ध्रुवम् ॥३०॥
अनेकजन्मसम्भूत पु स' पाप प्रणश्यति । स्नानमात्रेण गगाया सद्य स्यात्पुण्यभाजनम् ॥३१॥
अन्यस्थानकृत पाप गगातीरे विनश्यति । गगातीरे कृत पाप गगास्नानेन नश्यति ॥३२॥
रात्रौ दिवा च सन्ध्याया गगायान्तु प्रयत्नत । स्नात्वाश्वमेधज पुण्य गृहेऽप्युद्धृततज्जलै ॥३३॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्य सर्वेष्टायतनेषु च । तत्फल लभते मर्त्यो गगास्नानान्न सशय. ॥३४॥
महापातकसयुक्तो युक्तो वा सर्वपातकै । गगास्नानेन विधिवन्मुच्यते सर्वपातकै ॥३५॥
गगा स्नानात् पर स्नान न भूत न भविष्यति । विशेषत कलियुगे पाप हरति जाह्नवी ॥३६॥
निहत्य कामजान्दोषान् कायवाक्चित्तसम्भवान् । गगास्नाने भक्त्या तु मोदते दिवि देववत् ॥३७॥
वर्ष-स्नाति च गगाया यो नरो भक्तिसयुत । तस्य स्याद्वैष्णवे लोके स्थिति कल्प न सशय ॥३८॥
आमृत्यु स्नाति गगाया यो नरो नित्यमेव च । समस्तपापनिर्मुक्त समस्तकुलसयुत ॥३९॥
समस्तभोगसयुक्तो विष्णुलोके महीयते । परार्द्ध द्वितय यावन्नात्र कार्या विचारणा ॥४०॥
गगाया स्नाति यो मर्त्यो नैरन्तर्येण नित्यदा । जीवन्मुक्त स चात्रैव मृतो विष्णुपद व्रजेत् ॥४१॥
प्रात स्नानाद्दशगुण पुण्य मध्य दिन स्मृतम् । सायकाले शतगुण अनन्त शिवसन्निधौ ॥४२॥
कपिलाकोटिदानाद्धि गगास्नान विशिष्यते । कुरुक्षेत्रसमा गगा यत्र कुत्रावगाहिता ॥
हरिद्वारे प्रयागे च सिन्धुसङ्गे फलाधिका ॥४३॥
ये मदीयांशुसन्तप्ते जले ते स्नान्ति जाह्नवि । ते भित्वा मण्डल यान्ति मोक्ष,चेति रवेर्वच' ॥४४॥

हो जाते है और स्नान करते ही वह शीघ्र ही पुण्यभाजन हो जाता है। दूसरे स्थानो का किया गया पाप गगा के तट पर जाते ही नष्ट हो जाता है और गगा तट पर किया हुआ पाप गगा जल मे स्नान करने से नष्ट होता है। रात्रि मे,दिन मे,सध्या के समय प्रयत्नपूर्वक गगा मे स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है और यह पुण्य अपने गृह पर भी लाये गये गगाजल के स्नान से प्राप्त होता है। सभी तीर्थो मे स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, सभी यज्ञो एव सभी देव मन्दिरो मे दर्शन करने से जो पुण्यप्राप्ति होती है वह फल मनुष्य गगा स्नानमात्र से प्राप्त करता है--इसमे सन्देह नही। महापातक अथवा सभी पातको का करने वाला प्राणी विधिपूर्वक गगा स्नान करके सभी से मक्त हो जाता है। अधिक क्या इस गगा स्नान से अधिक महत्वपूर्ण स्नान न तो कही हुआ था और न होगा। विशेषतया कलियुग मे यह जान्हवी पापो की नष्टकारिणी है, यह काम स उत्पन्न हुए दोषो को, वाचिक शारीरिक एव मानसिक दोषो को भी दूर करनेवाली है। भक्तिपूर्वक गगा मे स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्ग मे देवताओ की भाँति आनन्द का अनुभव करता है। जो मनुष्य श्रद्धा एव भक्तिपूर्वक एक वर्ष तक नियमत गगा मे स्नान करता है, उसकी एक कल्प पर्यन्त वैष्णव लोक मे अवस्थिति होती है इसमे तनिक भी सन्देह नही। जो मनुष्य आजीवन नित्य गगा मे स्नान करता है वह सभी परिवार समेन समस्त पापो से मुक्त होकर सभी भोगो से सयुक्त होकर विष्णु लोक मे दो परार्ध तक पूजित होता है इसमे सशय नही। जो मनुष्य नित्य निरन्तर गगा मे स्नान करता है वह इस जीवन मे भी मुक्त है और मरकर विष्णु धाम को जाता है। प्रात स्नान करने से दिन के स्नान से दस गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है। सायकाल मे शत गुणित अधिक तथा शिव के समीप स्नान करने से अनन्त गुणित अधिक पुण्य प्राप्त होता है। कोटि कपिला गौ के दान से भी विशेष फल गगा स्नान का माना गया

ये गृहे स्वे स्थितोऽपि त्वा स्नाने सकीर्तयिष्यति । सोऽपि यास्यति नाक वै-इत्याह वरुणश्च ताम् ।।४५।।
इति श्री बृहन्नारदीय पुराणतो गगा माहात्म्ये पञ्चमोऽध्याय:।।५।।

है। यत्र तत्र सभी स्थानो पर स्नान करने पर गगा, कुरुक्षेत्र के समान फल देने वाली है, किन्तु हरिद्वार, प्रयाग एव गगासागर मे वह विशेष फल देने वाली है। हे जान्हवी ! जो मनुष्य मेरी किरणो से सतप्त तुम्हारे जल मे स्नान करते है वे मण्डल का भेदन कर मोक्ष प्राप्त करते हैं—ऐसी बात सूर्य ने गगा से कही थी। जो मनुष्य अपने घर पर स्थित होकर भी स्नान करते समय तुहम्हारा कीर्तन करेगा, वह भी स्वर्ग को जायगा—ऐसी बात वरुण ने गगा से कही थी। ।।१-४५।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगा माहात्म्य नामक पाचवा अध्याय समाप्त ।।५।।

षष्ठोऽध्याय:

वसुरुवाच

अथ कालविशेषे तु गगास्नानस्य ते फलम् । कीर्तयिष्यामि वामोरु सावधाना निशामय ।।१।।
नैरतर्येण गगाया माघे स्नाति च यो नर: । स शक्रलोके सुचिर काल तिष्ठेत् सगोत्रज ।।२।।
ततो ब्रह्मपुर याति कल्पकोटिशतायुतै । नैरतर्येण विधिवद्गगाया स्नाति यो नर ।।३।।
षण्मासमेककालाशी सकृदेवोत्तरायणे । सोपि विष्णुपद याति कुलाना शतमुद्धरन् ।।४।।
सक्रान्तिषु तु सर्वासु स्नात्वा गगाजले नर: । विमानेनार्कवर्णेन स व्रजेद्विष्णुमन्दिरम् ।।५।।
विषुवेयनसक्रान्तौ विशेषात्फलमीरितम् । तप· सम कार्तिकेऽपिगगास्नाने फल विदु ।।६।।
मेषप्रवेशार्ककाले कार्त्तिक्यांवापि मोहिनि । माघस्नानाधिक प्राहु कमलासनपूर्वका· ।।७।।
सवत्सरस्नानजन्य फलमक्षयके तिथौ । कार्त्तिके वापि वैशाखे इति प्राह पिता तव ।।८।।
मन्वादौ च युगादौ यत्प्रोक्त गगाजले फलम् । स्नानेन याज्यवनिते त्रिमास्यापि च तत्फलम् ।।९।।
द्वादश्या श्रवणर्क्षे च अष्टम्या पुष्ययोगत: । आर्द्रोया च चतुर्दश्या गगास्नान सुदुर्लभम् ।।१०।।
पूर्णिमा माधवे पुण्या तथा कार्तिकमाघयो: । अमावास्यास्तथैतेषा गगास्नाने सुदुर्लभा ।।११।।
कृष्णाष्टम्यां सहस्रं तु शत स्यात्सर्वपर्वसु । अमाया च तथाष्टम्या माघासितदले सति ।।१२।।

वसु ने कहा—हे सुन्दरि ! अब इसके उपरान्त विशेष अवसरो पर गगा-स्नान के फल का माहात्म्य मै तुम्हे बतला रहा हूँ,सावधान हो कर सुनो ? जो मनुष्य निरन्तर बिना किसी दिन चूक किये माघ महीने मे गगा स्नान करता हे वह अपने सगोत्रीय परिवार समेत चिरकाल तक इन्द्रलोक मे स्थित होता है। तदुपरान्त सहस्रो कोटि कल्पो तक ब्रह्मपुर मे निवास करता है। जो मनुष्य ६ मास तक सूर्य के उत्तरायण होने पर एक समय भोजन कर केवल एक बार भी गगा-स्नान कर लेता है, वह भी अपने सैकडो कुलो का उद्धार करता हुआ विष्णु के पद को प्राप्त करता है। सभी सक्रान्तियो के अवसर पर गगा जल मे स्नान कर मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर समारूढ हो कर विष्णु मन्दिर को जाता है।

तुला तथा मेष की सक्रान्ति मे विशेष रूप से स्नान का फल कहा गया है। माघ के समान कार्तिक मे भी गगास्नान का फल माना गया है। मोहिनि ! ब्रह्मा आदि ने कहा है कि मेष राशि मे सूर्य के प्रवेश करने के समय या कार्तिक की सक्रान्ति मे भी माघस्नान से अधिक फल होता है । कार्तिक तथा वैशाख महीने की अक्षय तिथियो मे स्नान करने से एक वर्ष के स्नानकरने का फल प्राप्त होता है—ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। हे याज्यवनिते ! मन्वन्तर के आदि तथा युगादि दिवसो पर स्नान से जो फल प्राप्त होता है वह तीन महीने के स्नान करने के फल के समान है। द्वादशी तिथि को श्रवण नक्षत्र, अष्टमीको पुण्य नक्षत्र के योग, आर्द्रा नक्षत्र युक्त चनुर्दशी तिथि—इनअवसरो पर गगा स्नान अति दुर्लभ है। वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि अक्षय पुण्य प्रदान करने वाली है उसी प्रकार कार्तिक तथा माघकी अमावस्या तिथियाँ भी गगा स्नान के लिए अति दुर्लभ हैं। कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि का स्नान सहस्र गुने अधिक फलदायक है। सभी पर्व दिवसो का स्नान शतश अधिक फलदायी है। माघ मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तथा

अर्धोदय तदापर्व किञ्चिन्न्यून महोदय । महोदये शतगुण लक्षमर्द्धोदये स्मृतम् ॥१३॥
स्नान गगाजले देवि ग्रहणाच्चन्द्रसूर्ययो । मासत्रयस्नानफल फाल्गुनाषाढमासयो ॥१४॥
जन्मर्क्षे तु कृते स्नाने गगाया भक्तिभावत । जन्मप्रभृति पाप वै सचित हि विनश्यति ॥१५॥
चतुर्दश्या माघकृष्णे व्यतीपातश्च दुर्लभ । कृष्णाष्टम्या विशेषेण वैधृतिर्जाह्नवीजले ॥१६॥
माघ सकलमेवापि नरो यो विधिपूर्वकम् । अरुणोदयके स्नायी स तु जातिस्मरो भवेत् ॥१७॥
सर्वशास्त्रार्थविज्ञानी नीरोगश्च भवेद्ध्रुवम् । सक्रान्त्या पक्षयोरन्ते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ॥१८॥
गगास्नातो नर कामाद्ब्रह्मण सदन लभेत् । इन्दोर्लक्षगुण प्रोक्त रवेर्दशगुण तत ॥१९॥
गगातीरे तु सप्राप्ता इन्दो कोटी रवेर्दश । वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी
गगाया यदि लभ्येत सूर्यग्रहशते समा ॥२०॥
ज्येष्ठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्लपक्षे दशम्या, हस्ते शैलादवतरदसौ जाह्नवी मर्त्यलोकम् ।
पापान्यस्या हरति हि तिथौ सा दशैषाद्यगगा, पुण्य दद्यादपिशतगुण वाजिमेधक्रतोश्च ॥२१॥
महापातकसघानि यानि पापानि सन्ति मे । गोविन्दद्वादशी प्राप्य तानि मे हन जाह्नवि ॥२२॥
मघासज्ञेन ऋक्षेण चन्द्र सम्पूर्णमडल. । गुरुणा याति सयोग तन्महत्त्व तिथे स्मृतम् ॥२३॥
गगाया यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतै समा । अथ देशविशेषेण स्नानस्य फलमुच्यते ॥२४॥

अमावस्या तिथिया भी विशेष फल देने वाली है। अर्धोदय अवसर पर विशेष पर्व है, महोदय का अवसर उसस कुछ न्यून हे महोदय का स्नान शतगुणित अधिक तथा अर्धोदयका स्नान लक्ष गुणित अधिक फलदायी माना गया है। हे देवि ! चन्द्र एव सूर्य के ग्रहण के अवसर पर गगा जल द्वारा स्नान करने पर विशेषतया फाल्गुन तथा आषाढ मास म तीन मास निरन्तर स्नान करने के समान फल प्राप्त होता है। अपने जन्म-नक्षत्र के दिन भक्तिभाव से गगास्नान करने पर जन्म से लेकर किया गया सचित पाप नष्ट हो जाता है। माघ मास की कृष्णचतुर्दशी एव व्यतीपात योग गगास्नान के लिए दुर्लभ योग है। विशेषतया गगाजल मे स्नान के लिए कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को वैधृति योग भी अति दुर्लभ योग है। जो मनुष्य विधिपूर्वक सम्पूर्ण माघ महीने मे अरुणोदय के समय गगास्नान करता है वह अपनी पूर्व जन्म की जाति का स्मरण करने वाला हो सकता है, निश्चय ही सभी शास्त्रो को विशेष जानने वाला तथा नीरोग होता है। सक्रान्ति के अवसर पर दोनो पक्षो के समाप्त होते समय, सूर्य तथा चन्द्रमा के ग्रहण के अवसर पर मनोरथ पूर्वक गगा स्नान करने वाला मनुष्य ब्रह्मा का सदन प्राप्त करता है। चन्द्रमा के ग्रहण का स्नान लक्ष गुणित तथा सूर्य के ग्रहण का स्नान उससे भी दश गुणित अधिक फलदायी होता है, गगा के तट पर चन्द्रमा कोटि गुने अधिक फल देने वाला गथा सूर्य उससे भी दश गुने अधिक फलदायी हो जाता है। वारुण योग से सयुक्त चैत्र मास की कृष्ण चतुर्दशी तिथि यदि गगा मे प्राप्त हो तो सैकडो सूर्य ग्रहण के समान फलदायिनी हो जाती है। ज्येष्ठ महीने की शुक्ल पक्षीय दशमी तिथि को मगल दिन हस्त नक्षत्र पर जान्हवी पर्वत से मर्त्य लोक मे अवतरित हुई अत उक्त तिथि की यह गगा दश घोर पापो को दूर करती—है और अश्वमेधयज्ञ से भी दश गुना अधिक पुण्य देती है। हे जान्हवि ! मेरे महापातको के जो पुञ्ज है उन्हे गोविन्द द्वादशी को प्राप्त हो कर तू दूर कर दे। मघा नामक नक्षत्र के दिन यदि चन्द्रमा का मण्डल पूर्ण हो जाता है अर्थात् पूर्णिमा तिथि पडती है तथा गुरुवार का दिन पडता है तो वह तिथि गगास्नान क लिए महत्वपूर्ण कही जाती है और सैकडो सूर्य ग्रहण के समान फलदायी बतलायी गयी है। अब देशविशेष के अनुसार स्नान का फल बतला रहा हूँ। गगा मे जहाँ तहा स्नान करने से कुरुक्षेत्र से दश गुना अधिक फल होता है, किन्तु जहाँ पर यह विन्ध्यगिरि से सयुक्त है वहाँ कुरुक्षेत्र से शतगुणित अधिक फल देने वाली है। विन्ध्य गिरि से शतगुणित अधिक काशी मे जान्हवी फल

कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र तत्रावगाहिता । कुरुक्षेत्राच्छतगुणा यत्र विंध्येन संयुता ॥२५॥
विन्ध्याच्छतगुणा प्रोक्ता काशीपुर्यां तु जाह्नवी । सर्वत्र दुर्लभा गंगा त्रिषु स्थानेषु चाधिका ॥२६॥
गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे । एषु स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥२७॥
गंगाद्वारे कुशावर्ते स्नाने पुण्यफलं शृणु । सप्तानां राजसूयानां फलं स्यादश्वमेधयोः ॥२८॥
उषित्वा तत्र मासार्धं षण्णां विश्वजितां फलम् । दशायुतानां तु गवां दानपुण्यं विदुर्बुधाः ॥२९॥
सरोत्तमेऽथ गोविन्दं रुद्रं कनखले स्थितम् । स्नात्वा वार्येषु गंगाया पुण्यमक्षयमाप्नुयात् ॥३०॥
तीर्थं च सौकरं नाम महापुण्यं शुभे शृणु । यस्मिन्नाविरभूत्पूर्वं वाराहाकृतिरच्युतः ॥३१॥
शतस्याग्निचितां पुण्यं ज्योतिष्टोमद्वयस्य च । अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥३२॥
तत्रैव ब्रह्मणस्तीर्थे ज्योतिष्टोमायुतस्य च । अश्वमेधत्रयस्यापि स्नातः पुण्यं लभेन्नरः ॥३३॥
कुब्जाख्यं तीर्थमनघं यत्र च व्याधयोऽखिला । नश्यन्ति सर्वजन्मोत्थं पातकं चापि मोहिनि ॥३४॥
अत्रान्यत्कापिलं तीर्थं यत्रस्नातो नरः शुभे । कपिलाष्टायुतस्यापि दानतुल्यं फलं लभेत् ॥३५॥
वेणीराज्यं ततस्तीर्थं सरयूर्यत्र गङ्गया । सुपुण्यया महापुण्यं स्वसा स्वस्रेव संगता ॥३६॥
हरिदक्षिणपादाब्जक्षालनादमरापगा । वामपादोद्भवा वापि सरयूर्मानसप्रसूः ॥३७॥
तीर्थे तत्रार्चयन् रुद्रं विष्णुं विष्णुत्वमाप्नुयात् । पंचाश्वमेधफलदं स्नानं तत्र प्रकीर्तितम् ॥३८॥

देने वाली है। यों तो सभी स्थानों पर गंगा दुर्लभ है, किन्तु तीन स्थानों पर विशेषतया उसका प्रभाव है—गंगाद्वार, प्रयाग तथा गंगासागर के संगम स्थान पर। इन स्थानों में स्नान करने वाले प्राणी स्वर्ग को प्राप्त करते हैं तथा जो यहाँ मृत्यु लाभ करते हैं वे तो पुनर्जन्म ही नहीं धारण करते। गंगाद्वार तथा कुशावर्त में स्नान करने पर जो पुण्य एवं फल प्राप्त होता है, उसे सुनो! यहाँ स्नान करने से सात राजसूय यज्ञ एवं दो अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। उक्त गंगाद्वार में केवल तीन मास तक निवास करने पर विश्वजित् याग का फल प्राप्त होता है तथा दश सहस्र गौओं के दान देने का फल प्राप्त होता है ऐसा विद्वानों ने कहा है। कनखल में स्थित गोविन्द तथा रुद्र सरोवर में गंगा तट पर स्नान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। हे कल्याणि! सूकर नामक महापुण्यप्रद क्षेत्र में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो! उस पवित्रतम तीर्थ में प्राचीन काल में अच्युत भगवान् ने वाराह आकार धारण किया था, वहाँ स्नान करने से मनुष्य को एक सौ अग्निचित्, दो ज्योतिष्टोम तथा एक एक सहस्र अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है एवं तीन अश्वमेध का पुण्य वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य प्राप्त करता है। हे मोहिनि! कुब्ज नामक निष्पाप तीर्थ है, जिसमें स्नान करने से सभी प्रकार की व्याधियाँ तथा जन्म से लेकर किये गए पाप समूह भी नष्ट हो जाते हैं। अन्यत्र कपिल नामक तीर्थ है, हे कल्याणि! जहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य अस्सी सहस्र कपिला गौ के दान का फल प्राप्त करता है। उसके बाद वेणी राज्य नामक पवित्र तीर्थ है, जहाँ पर महापुण्यदायिनी सुरसरि गंगा से एक बहन से दूसरी बहन की भाँति पुण्य सलिला सरयू नदी मिली है। भगवान् विष्णु के दाहिने पैर के प्रक्षालन से सुरसरि गंगा (उत्पन्न) अवतरित हुई है और मानस की पुत्री सरयू उनके बायें पैर से उत्पन्न हुई है। उस वेणी तीर्थ में शिव एवं विष्णु की पूजा करने से विष्णुत्व की प्राप्ति होती है और वहाँ स्नान करने से पाँच अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है—ऐसा कहा गया है। तदनन्तर गाण्डव नामक तीर्थ है, जहाँ पर गण्डकी नदी गंगा से मिली है, वहाँ का स्नान तथा एक सहस्र गौ का दान ये दोनों समान माने गए हैं। तदनन्तर रामतीर्थ है, जहाँ के समीप वैकुण्ठ में भगवान विष्णु सन्निहित हैं। उसके बाद सोमतीर्थ की महत्ता है, जहाँ असौर्थ कुल नामक मुनि ने शिव का ध्यान कर गणत्व की प्राप्ति की है। फिर चम्पक नामक पवित्र तीर्थ है, जहाँ पर उत्तर वाहिनी गंगा है। वहाँ का स्नान मणिकर्णिका स्नान की भाँति घोर

ततस्तु गाडवं तीर्थं गंडकी यत्र सगता।गोसहस्रस्य दानं च तत्र स्नान समं द्वयम् ॥३९॥
रामतीर्थं तत पुण्य वैकुण्ठ यत्र सन्निधौ। सोमतीर्थं तत पुण्य यत्रासौर्थकुलो मुनि ॥४०॥
समभ्यर्च्य शिव ध्यायन्गणता तु समाययौ। चम्पकाख्य पुण्यतीर्थं यद्ग गोत्तरवाहिनी ॥४१॥
मणिकर्णिकया तुल्य महापातकनाशनम्। कलशाख्य ततस्तीर्थं कलशादुत्थितो मुनिः ॥४२॥
अगस्त्य' पूजयन्यत्र रुद्र मुनिवरोऽभवत्। सोमद्वीप महापुण्य तीर्थ वाराणसीसमम् ॥४३॥
सोमो यत्रार्चयन्नीश रुद्रेण शिरसा धृत.। विश्वामित्रस्य भगिनी गगया यत्र सगता ॥४४॥
तत्राप्लुतो नरो भूयाद्वासवस्य प्रियातिथिः। जन्हुह्रदे महातीर्थे स्नातो मर्त्यो हि मोहिनि ॥४५॥
एक विंशतिकुल्याना तारको भवति ध्रुवम्। तस्माददितितीर्थं च यत्रैषा ह्यदितिर्हरिम् ॥४६॥
कश्यपात्तत्र सुभगे स्नानमाहुर्महोदयम्। शिलोच्चय महातीर्थ यत्र तप्त्वा तप. प्रजा. ॥४७॥
तृणादिभिस्सह स्वर्ग यान्ति तीर्थगणाश्रयात्। इन्द्राणी नाम तीर्थ स्याद्यत्रेन्द्राणी तु वासवम् ॥४८॥
तपस्तप्त्वा पति लेभे सेव्यमेतत्प्रयोगवत्। पुण्यद स्नातक तीर्थं विश्वामित्रस्तपश्चरन् ॥४९॥
यत्र ब्रह्मर्षिता लेभे क्षत्रियास्तीर्थसेवया। प्रद्युम्नतीर्थं तपसा ख्यात यत्र स्मरो हरे' ॥५०॥
प्रद्युम्ननामा पुत्रोऽभूत्पर तत्र महोदयम्। ततो दक्षप्रयाग तु गगातो यमुना गता ॥५१॥
स्नातस्यैवाक्षय: पुण्य प्रयाग इव लभ्यते ॥५२॥

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गगामाहात्म्ये षष्ठोऽध्याय ॥६॥

पातको का नाश करने वाला है। तदनन्तर कलश नामक तीर्थ है, जहाँ पर कलश से उत्पन्न हुए अगस्त मुनि ने शिव की आराधना कर मुनिवरत्व प्राप्त किया था। सोमद्वीप नामक तीर्थ वाराणसी के समान महत्त्वशाली है, जहाँ पर सोम ने ईश (शिव) की आराधना की थी, जिससे शिव जी ने शिर पर उसे धारण कर लिया। विश्वामित्र की भगिनी (कौशिकी) जहाँ गगा से मिली है, उस पवित्र तीर्थस्थान मे स्नान करने वाला मनुष्य वासव (इन्द्र) का प्रिय अतिथि होता है। हे मोहिनि! जन्हुह्लद नामक महातीर्थ मे स्नान करने वाला मनुष्य निश्चय ही इक्कीस पीढियो का तारने वाला होता है। उसके बाद अदिति नामक तीर्थ है जहाँ पर अदिति ने भगवान् विष्णु की आराधना की थी। हे सुन्दरि! वही पर अदिति ने महोदय स्नान की चर्चा की थी। ऐसा लोग कहते है। फिर शिलोच्चय नामक तीर्थ है, जहाँ पर तपस्या कर के लोग तृणादिको समेत स्वर्ग जाते है। पुन इन्द्राणी नामक तीर्थ की महत्ता बतायी गयी है, जहाँ पर इन्द्राणी ने तपस्या कर के इन्द्र को पति रूप मे प्राप्त किया था, उस तीर्थ की किसी प्रयोग की भाँति सेवा करनी चाहिए। फिर पुण्यदायी स्नातक नामक तीर्थ है, जहाँ पर क्षत्रिय विश्वामित्र ने तपस्या कर के ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया था। फिर प्रद्युम्न नामक तीर्थ है, जहाँ पर कामदेव तप कर के भगवान् कृष्ण का प्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ था। तदनन्तर दक्ष प्रयाग नामक तीर्थ है, जहाँ पर गगा से यमुना मिलती है। वहाँ स्नान करने वाले को प्रयाग-स्नान जैसा अक्षय पुण्य प्राप्त होता है ॥१–५२॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगा माहात्म्य नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

प्रथमोऽध्यायः

उत्पत्तिखण्ड

नारद उवाच ।

विष्णुपादाग्रसंभूता या गंगेत्यभिधीयते । तदुत्पत्तिं वद भ्रातरनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥१॥

सनक उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि गङ्गोत्पत्तिं तवानघ । वदतां श्रृण्वतांश्चैव पुण्यदां पापनाशिनीम् ॥२॥
आसीदिन्द्रादिदेवानां जनकः कश्यपो मुनिः । दक्षात्मजे तस्य भार्ये दितिश्चादितिरेव च ॥३॥
अदितिर्देवमातास्ति दैत्यानां जननी दितिः । ते तयोरात्मजा विप्र परस्परजयैषिणः ॥४॥
सदा सपूर्वदेवास्तु यतो दैत्याः प्रकीर्तिताः । आदिदैत्यो दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥५॥
प्रह्लादस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुमहान्दैत्यसत्तमः । विरोचनस्तस्य सुतो बभूव द्विजभक्तिमान् ॥६॥
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी बलिरासीत्प्रतापवान् । स एव वाहिनीपालो दैत्यानामभवन्मुने ॥७॥
बलेन महता युक्तो बुभुजे मेदिनीमिमाम् । विजित्य वसुधां सर्वां स्वर्गं नेतुं मनोदधे ॥८॥
गजाश्च यस्यायुतकोटिलक्षास्तावत एवाश्वरथा मुनीन्द्र । गजे गजे पंचशती पदातेः किं वर्ण्यते तस्य चमूर्वरिष्ठा ॥९॥
अमात्यकोट्यग्रसरावमात्यौकुभांडनामाप्यथ कूपकर्णः । पित्रा समं शौर्यपराक्रमाभ्यां बाणो बलेः पुत्रशताग्रजोऽभूत् ॥१०॥

नारद ने कहा—भ्रात ! यदि मैं आपसे अनुगृहीत होऊँ तो मुझे विष्णु भगवान के चरण के अग्रभाग से उत्पन्न गंगाजी की उत्पत्ति कथा सुनाइए ॥१॥

सनक ने कहा—निष्पाप नारद जी ! कहने एवं सुननेवाले दोनों को पुण्य प्रदान करनेवाली पापनाशिनी गंगा की उत्पत्तिकथा मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो ॥२॥

इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करनेवाले कश्यप नामक एक मुनि थे। दक्ष की दिति–अदिति नामक दोनों कन्यायें उनकी धर्मपत्नी थीं। इनमें देवताओं की जननी अदिति तथा दैत्यों की जननी दिति थी। विप्र ! इन दोनों की संतान आपस में एक दूसरे को पराजित करने की इच्छुक रहा करती थी। देवता लोग दैत्यों के छोटे भाई थे। दिति के समस्त पुत्रों में सर्वप्रथम हिरण्यकशिपु नामक महाबली दैत्य हुआ। उसके दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद तथा प्रह्लाद के ब्राह्मणों का महान् भक्त विरोचन नामक एक पुत्र हुआ। फिर उसके भी अति तेजस्वी महान् प्रतापी बलि नामक पुत्र हुआ। मुने ! बली बलि दैत्य की सेनाओं का नायक भी बना और उसने बहुत बड़ी सेना द्वारा इस समस्त पृथ्वीमंडल को जीतकर आनन्द का अनुभव किया। तत्पश्चात उसने स्वर्ग जीतने की भी इच्छा की ॥३–८॥

मुनिवर ! उस समय उसकी सेना में दस पद्म हाथी तथा इतने ही घोड़े और रथ थे, प्रत्येक हाथी के पीछे ५०० पैदल सेना थी। इसलिये उस विशाल सेना का वर्णन किस भाँति किया जा सकता है। उसके करोड़ों मन्त्रियों में कुभांड और कूपकर्ण नामक दो प्रधान मन्त्री थे, बलि के भी सौ पुत्र थे, जिनमें सबसे ज्येष्ठ अपने पिता के समान शौर्य-पराक्रमी-

बलि सुराञ्जेतुमना प्रवृत्तः सैन्येन युक्तो महता प्रतस्थे। ध्वजातपत्रैर्गगनाम्बुराशेस्तरङ्गविद्युत्स्मरणं प्रकुर्वन् ॥११॥
अवाप्य वृत्रारिपुरं सुरारी रुरोध दैत्यैर्मृगराजगाढैः। सुराश्च युद्धाय पुरात्तथैव विनिर्ययुर्वज्रकरादयश्च ॥१२॥

तत प्रववृते युद्धं घोरं गीर्वाण-दैत्ययो। कल्पान्त मेघनिर्घोष डिंडिमध्वान-सम्भ्रमम् ॥१३॥
मुमुचु शरजालानि दैत्या सुमनसा बले। देवाश्च दैत्यसेनासु सङ्ग्रामेऽत्यन्तदारुणे ॥१४॥
जहि दारय भिन्धीति छिन्धि मारय ताडय। इत्येव सुमहान्घोषोवदता सैन्ययोरभूत् ॥१५॥
शरद्दुर्भिनिध्वानै सिंहनादैः सुरद्विपाम्। भाकारै स्पन्दनानाञ्च बाणक्रेंकारनिस्वनै ॥१६॥
अश्वाना हेषितश्चैव गजाना बृंहितैस्तथा। टंकारै धनुषाञ्चैव लोकः शब्दमयोऽभवत् ॥१७॥
सुरासुरविनिर्मुक्तबाणनिष्पेषजानले। अकालप्रलय मेने निरीक्ष्य सकल जगत् ॥१८॥
बभौ देवद्विषा सेना स्फुरच्छस्त्रौघधारिणी। चलद्विद्युन्निभा रात्रिश्छादिता जलदैरिव ॥१९॥
तस्मिन्युद्धे महाघोरैर्गिरीन् क्षिप्तान्सुरारिभि। नाराचैश्चूर्णयामासुर्देवास्ते लघुविक्रमा ॥२०॥
केचित्सताडयामासुर्नागैर्नागान् रथान् रथै। अश्वैरश्वाश्च केचित्तु गदादण्डैरथार्दयन् ॥२१॥
परिघैस्ताडिता केचित्पेतुः शोणितकर्दमे। समुत्क्रान्तासव केचिद्विमानानि समाश्रिताः ॥२२॥
ये दैत्या निहता देवै प्रसह्य रणे तदा। ते देवभावमापन्ना दैतेयान्समुपाद्रवन् ॥२३॥
अथ दैत्यगणा क्रुद्धास्ताड्यमाना सुरैर्भृशम्। शस्त्रैर्बहुविधैर्देवान्निजघ्नु रतिदारुणा ॥२४॥
दृषद्भि भिंदिपालैश्च खड्गैः परशुतोमरैः। परिघैश्छुरिकाभिश्च कुन्तैश्चक्रैश्च शङ्कुभि ॥२५॥
मुशलैरङ्कुशैश्चैव लाङ्गलै पट्टिशैस्तथा। शक्त्युपलै शतघ्नीभि पाशैश्च तलमुष्टिभि ॥२६॥
शूलैर्नालीकनाराचै क्षेपणीयैस्समुद्गरैः। रथाश्वनागपदगैः सङ्कुलो ववृधे रण ॥२७॥

शाली बाण नामक पुत्र था। देवताओ को जीतने के लिए बलि ने अपनी विशाल वाहिनी को साथ लेकर युद्धार्थ प्रस्थान किया। समुद्र की भाति विस्तीर्ण आकाश मडल मे चमकते हुए ध्वजा एव छत्रो को बिजली की तरगो के समान देखते हुए उसने प्रस्थान किया। वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र की नगरी मे पहुँचकर उसने सिह के समान भीषण दैत्यो द्वारा उसे चारो ओर से घेर लिया। देवता लोग भी उसी समय हाथ मे वज्र आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध के लिए नगरी के बाहर निकले ॥९—१२॥

तदनन्तर देवो ओर दैत्यो मे महान युद्ध छिड गया। जिसमे डिडिम (डमरू) वाद्यो की आवाज, महा प्रलय मे मेघ-गर्जन के समान भीषण मालूम होती थी। दैत्यगण देवताओ की सेना मे तथा देवता लोग दैत्य की सेना मे लगातार बाणो की वर्षा करते थे। दोनो सेनाओ मे मार डालो, चीर डालो, फाड डालो, मारो, पीटो इस प्रकार महान् कोलाहल हो रहा था। नगाडो की ध्वनियो से, असुरो के सिहनादो से, बाणो के पख फडकने से, घोडो की हिनहिनाहट से, हाथियो की चिघाडो से एव धनुषो की टकार से समस्त जगत् गूँज रहा था। सुरो तथा असुरो के छुटे हुए बाणो की पारस्परिक रगड से उत्पन्न हुई अग्नि को निखिल ससार मे व्याप्त देखकर अकाल-प्रलय का अनुभव हो रहा था। दैत्यो की सेना चम-चम चमकते हुए शस्त्रो को लिये हुए, चचल चपला समेत बादलो से घिरी हुई रात्रि के समान शोभित हो रही थी। उस युद्ध मे विकराल भीषण दैत्यो द्वारा फेके गये पर्वतो को देवता लोग तुरन्त अपने बाणो से चूर्ण-चूर्ण कर देते थे। कोई हाथियो द्वारा हाथियो को टक्कर देकर, कोई रथ द्वारा रथो को टक्कर देकर, कोई घोडो द्वारा घोडो को टक्कर देकर तथा कोई एक

देवाश्च विविधास्त्राणि दैतेभ्यस्समाक्षिपन् । एवमब्दसहस्राणि युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥२८॥
अथ दैत्यबले वृद्धे पराभूता. दिवौकस. । सुरलोकं परित्यज्य सर्वे भीता प्रदुद्रुवुः ॥२९॥
नररूपपरिच्छन्ना विचेरुरवनीतले । वैरोचनस्त्रिभुवन नारायणपरायण. ॥३०॥
बुभुजेऽव्याहतैश्वर्यप्रवृद्धश्रीर्महाबल. । इयाज चाश्वमेधै स विष्णुप्रीणनतत्पर : ॥३१॥
इन्द्रत्व चाकरोत्स्वर्गे दिक्पालत्व तथैव च । देवाना प्रीणनार्थाय ये क्रियन्ते मखा द्विजै॰ ॥३२॥
तेषु यज्ञेषु सर्वेषु हविर्भुङ्क्ते सदैत्यराट् । अदिति॰ स्वात्मजान्वीक्ष्य देवमातातिदु खिता ॥३३॥
वृथात्र निवसामीति मत्वागाद्धिमवद्गिरम् । शक्रस्यैश्वर्यमिच्छन्ती दैत्य.ना च पराजयम् ॥३४॥
हरिध्यानपराभूत्वा तपस्तेपेऽतिदुष्करम् । किंचित्काल समासीना तिष्ठती च तत परम् ॥३५॥
पादेनैकेन सुचिर तत पादाग्रमात्रत. । कंचित्काल फलाहारा तत. शीर्णदलाशना ॥३६॥
ततोजलाशना वायुभोजनाहारवर्जिता । सच्चिदानदसदोह ध्यायत्यात्मानमात्मना ॥३७॥
दिव्याब्दाना सहस्र सा तपोऽतप्यत नारद । दुरत तत्तप श्रुत्वा दैतेया मायिनोऽदितिम् ॥३८॥
देवतारूपमास्थाय सप्रोचुर्बलिनोदिता । किमर्थ तप्यसे मात शरीरपरिशोषणम् ॥३९॥
यदि जानति दैतेया महद्दु ख ततो भवेत् । त्यजेद दुःखबहुल कायशोषणकारणम् ॥४०॥

दूसरे को गदाओ द्वारा पीडित कर रहा था । कुछ वीरगण परिघो से घायल होकर उस रक्त के कीचड मे गिर गये और कुछ प्राण-परित्याग कर ऊपर विमान क आश्रय मे गये । सग्राम मे देवताओ के पराक्रम द्वारा जो दैत्य प्राण-परित्याग करते थे वे मृत्यु के बाद देवरूप प्राप्त कर दैत्यो के ऊपर झपट पडते थे । इस प्रकार देवताओ द्वारा पीडित होने पर भयकर दैत्य लोग भी अनेक प्रकार के शस्त्रो द्वारा देवताओ को मारने लगे । उस समय पत्थर, भिन्दिपाल, तलवार, फरसा, तोमर, परिघ, छुरी, भाला, चक्र, शकु, मूसल, अकुश, लागल, पटा, गोफन, तोप (शतघ्नी) फास, मुक्के, शूल, बन्दूक धनुष बाण, मुग्दर, रथ, घोडे, हाथी और पैदलो से भरा हुआ युद्ध बढने लगा। इस प्रकार आठ हजार वर्षो तक युद्ध बराबर होता रहा, और युद्ध मे देवताओ द्वारा अनेक प्रकार के अस्त्र छोडने पर भी दैत्यो का बल बढता ही गया । तदनन्तर दैत्यो के बल बढने पर पराजित होकर देवता लोग भयभीत हो स्वर्ग छोडकर भाग निकले और मनुष्य रूप धारण कर पृथ्वी पर विचरने लगे । उधर विरोचन का पुत्र बलि एकमात्र भगवान विष्णु की शरण लेकर त्रिभुवन का शासन करने लगा । उस महाबली की लक्ष्मी, अविच्छिन्न ऐश्वर्य द्वारा निरन्तर वृद्धि प्राप्त करती थी । विष्णु भगवान को प्रसन्न करने के लिए उसने अश्वमेध-यज्ञ भी किया । स्वर्ग मे इन्द्र तथा दिक्पालो का कार्यभार स्वय ग्रहण कर उस दैत्यराज ने देवताओ के प्रसन्नतार्थ ब्राह्मणो द्वारा किये गये समस्त यज्ञो मे हविष्पात्र को भी भक्षण करना आरभ किया । देव-माता अदिति अपने पुत्रो की ऐसी दुर्दशा देखकर बहुत दु खित हुई ॥१३–३३॥

मैं यहाँ व्यर्थ निवास कर रही हूँ, ऐसा समझकर उन्होने हिमालय को प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर इन्द्र के ऐश्वर्य एव दैत्यो के पराजय के निमित्त हरि के ध्यान मे निमग्न हो अत्यत दु साध्य तप करना आरभ किया । कुछ काल बैठकर, खडा होकर, एक पैर से, पैर के केवल अग्रभाग से, कुछ समय फल खाकर, सूखकर गिरे हुए फटे-पुराने पत्तो को खाकर ,जल पीकर, वायु का पान कर, फिर उसे भी त्यागकर हृदय से एक मात्र सच्चिदानन्द का ध्यान करने लगी। नारद ! इस प्रकार अदिति ने एक सहस्र दिव्य वर्षो तक दुस्कर तप किया। मायावी दैत्यगण इस प्रकार घोर तप करती हुई अदिति के बारे मे सुनकर बलि की प्रेरणा से देव-रूप धारण कर वहाँ गये और बोले—मात. ! शरीर को सुखानवाले इस कठोर तप को तुम क्यो कर रही हो ? यदि दैत्यो को

प्रयाससाध्यं सुकृत न प्रशसति पडिता । शरीर यत्नतोरक्ष्य धर्मसाधनतत्परै: ॥४१॥
ये शरीरमुपेक्षते ते स्युरात्मविघातिन: । सुख त्व तिष्ठ सुभगे पुत्रानस्मान्न खेदय ॥४२॥
मात्राहीना जना मातमृतप्राया न सशय. । गावो वा पशवो वापि यत्र गावो महीरुहा: ॥४३॥
न लभते सुख किंचिन्मात्राहीना मृतोपमा· । दरिद्रोवापि रोगी वा देशातरगतोऽपिवा ॥४४॥
मातुर्दर्शनमात्रेण लभते परमा मुदम् । अन्ने वा सलिले वापि धनादौ वा प्रियासु च ॥४५॥
कदाचिद्विमुखो याति जनो मातरि कोऽपि न । यस्य माता गृहे नास्ति यत्र धर्मपरायणा
साध्वीच स्त्री पतिप्राणा गतव्य तेन वै वनम् ॥४६॥
धर्मश्च नारायणभक्तिहीनो धन च सद्भोगविवर्जित हि । गृह च भार्यातनयैर्विहीन यथा तथा
मातृविहीनमर्त्य· ॥४७॥
तस्माद्दे वि परित्राहि दुखार्तानात्मजास्तव । इत्युक्ताप्यदितिर्दैत्यैर्न चचाल समाधित· ॥४८॥
एवमुक्त्वा सुरा सर्वे हरिध्यानपरायणाम् । निरीक्ष्य क्रोधसयुक्ता हतु चक्रुर्मनोरथम् ॥४९॥
कल्पातमेघनिर्घोषा क्रोधसरक्तलोचना: । दष्ट्राग्रैरसृजन्वह्नि सोऽदहत्कानन क्षणात् ॥५०॥
शतयोजनविस्तीर्ण नानाजीवसमाकुलम् । तेनैव दग्धा दैतेया ये प्रधर्षयितु गता. ॥५१॥
सैवावशिष्टा जननी सुराणामब्दच्छतादच्युतशक्तचित्ता । सरक्षिता विष्णुसुदर्शनेन
दैत्यातकेन स्वजनानुकपिना ॥५२॥

इति श्री वृहन्नारदीय पुराणतो गङ्गोत्पत्तौ प्रथमोऽध्याय ॥१॥

यह विदित हो जायगा तो उनके द्वारा हमे महान् कष्ट भोगना पडेगा । इसलिए दुख सागर तथा शरीर सुखा देनेवाले इस तप को छोड दो । कष्ट से प्राप्त होनेवाले पुण्य की प्रशसा पडित लोग नही करते है । धर्म मे तत्पर रहनेवालो को अपनी शरीर-रक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए । शरीररक्षा की उपेक्षा करनेवाले आत्मघाती कहलाते है । अत सौभाग्यवति ! तुम सुखपूर्वक रहो, हम पुत्रो को व्यर्थ चिंतित न करो ॥३४–४२॥

मातृहीन पुत्र मृतक के समान है । गौ, पशु, वृक्ष आदि के रहते हुए भी यदि माता नही है तो कुछ भी सुख नही मिल सकता है । दरिद्र या रोगी या प्रवासी कोई भी क्यो न हो, माता के दर्शन से उसे परम आनन्द प्राप्त होता है । अन्न, जल, धन तथा स्त्री सब मनुष्य से कभी विमुख हो सकते है, किन्तु माता कभी भी विमुख नही हो सकती । जिसके घर मे माता तथा पति-प्राणा एव धर्म-परायणा स्त्री न हो उसे जगलो मे निवास करना चाहिए ॥४३–४६॥

जिस प्रकार नारायण-भक्तिहीन धर्म, सद्भोग से रहित धर्म, स्त्री तथा पुत्र रहित घर व्यर्थ है उसी तरह मातृहीन मनुष्य भी व्यर्थ है । इसलिए देवि ! अपने दुखी पुत्रो की रक्षा करो, इस प्रकार दैत्यो के कहने पर भी अदिति समाधि से विचलित नही हुई । भगवान् के ध्यान मे निमग्न देखकर दैत्यो ने क्रुद्ध होकर उन्हे मारने की इच्छा की । प्रलय-कालीन मेघ के समान गर्जते तथा क्रोध के कारण लाल-लाल आँखे कर अपने मुख से उन लोगो ने अग्नि उत्पन्न की । उस भीषण अग्नि ने जगल को क्षणमात्र मे जलाकर जलाने के लिए गए उन दैत्यो को भी भस्म कर दिया । एकमात्र देवताओ की माता अदिति ही अब शेष रही । कारण यह था कि एक सहस्र वर्ष अच्युत भगवान के ध्यान मे निमग्न रहने से प्रसन्न होकर दैत्य-सहारी भगवान विष्णु अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उनकी रक्षा कर रहे थे । वे भगवान् अपने जनो के ऊपर महान् अनुग्रह करते है ॥४७–५२॥

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच

अहोह्यत्यद्भुत प्रोक्त त्वया भ्रातरिद मम । स वह्निरदिति मुक्त्वा कथ तानदहत्क्षणात् ।।१।।
वदादितेर्महासत्व विशेषाश्चर्यकारणम् । परोपदेशनिरता सज्जना हि मुनीश्वरा ।।२।।

सनक उवाच

शृणु नारद माहात्म्य हरिभक्तिरतात्मनाम् । हरिध्यानपरान्साधून्क समर्थ प्रबाधितुम् ।।३।।
हरिभक्तिपरो यत्र तत्र ब्रह्मा हरि. शिव. । देवा सिद्धा मुनीशाश्च नित्य तिष्ठन्ति सत्तमा· ।।४।।
हरिरास्ते महाभाग हृदये शातचेतसाम् । हरिनामपराणाञ्च किमुध्यानरतात्मनाम् ।।५।।
शिवपूजारतोवापि विष्णुपूजापरोऽपि वा । यत्र तिष्ठति तत्रैव लक्ष्मी. सर्वाश्च देवता· ।।६।।
यत्र पूजापरो विष्णोर्वन्हिस्तत्र न बाधते । राजा वा तस्करो वापि व्याधयश्च न सति हि ।।७।।
प्रेता पिशाचा कूष्माण्डग्रहा बालग्रहास्तथा । डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधतेऽच्युतार्चकम् ।।८।।
परपीडारता ये तु भूतवेतालकादय· । नश्यति यत्र सद्भक्तो हरिलक्ष्म्यर्चने रत. ।।९।।
जितेन्द्रिय· सर्वहितो धर्मकर्म परायणः । यत्र तिष्ठति तत्रैव सर्वतीर्थानि देवता ।।१०।।
निमिष निर्मिषार्द्ध वा यत्रतिष्ठन्ति योगिन । तत्रैव सर्वश्रेयासि तत्तीर्थ तत्तपोवनम् ।।११।।
यन्नामोच्चारणादेव सर्वे नश्यत्युपद्रवा । स्तोत्रैर्वाप्यर्हणाभिर्वा किमुध्यानेन कथ्यते ।।१२।।
एव तेनाग्निना विप्र दग्ध सासुरकाननम् । सादितिर्नैव दग्धाभूद्विष्णुचक्राभिरक्षिता ।।१३।।

नारद ने कहा—हे भ्रात ! आपने यह एक आश्चर्यजनक बात कही, अग्नि ने क्षण भर मे एकमात्र अदिति को छोडकर उन सब को कैसे जला दिया ? महर्षि लोग सज्जन होने के कारण परोपदेश ही मे सर्वदा लगे रहते है । अत आप अदिति के विशेष आश्चर्यजनक महापराक्रम को सुनाइए ।।१—२।।

सनक ने कहा—नारद ! भगवान् के ध्यान मे लीन रहनेवाले महात्माओ को कौन दु खी कर सकता है ? इसलिए भगवान् के चरण-सेवको का माहात्म्य मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो । भगवान् का भक्त जहाँ स्थित रहता है वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवतागण, सिद्धगण और मुनीश्वर आदि भी सर्वदा स्थित रहते है । महाभाग ! शात-चित्तवालो, हरि नाम का जप करनेवालो तथा ध्यान मे निमग्न रहने वालो के हृदय मे भगवान् निवास करते है । जिस स्थान पर शिव-पूजा-परायण या विष्णु-पूजा मे रत कोई प्राणी निवास करता है, वहाँ लक्ष्मी और समस्त देवगण स्थित रहते है ।

जिस स्थान पर विष्णु-पूजा-परायण प्राणी रहता है उसे राजा, चोर अथवा कोई व्याधि पीडित नही कर सकते । अच्युत भगवान् के सेवक को प्रेत, पिशाच, अशुभ-ग्रह, बाल-ग्रह, डाकिनी, राक्षस आदि कभी बाधा नही पहुँचा सकते । विष्णु और लक्ष्मी के पूजन मे निमग्न सद्भक्त जहा रहता है वहाँ दूसरो को पीडा देनेवाले भूत-वेताल आदि नष्ट हो जाते है । जितेन्द्रिय, समस्त जीवो का हितैषी तथा धर्म-कर्म-परायण प्राणी जहाँ रहता है, वही समस्त तीर्थ और समस्त देवतागण भी निवास करते है । जहाँ निमेषमात्र अथवा निमेषार्द्ध-समय तक योगी जन रहते है, वही पर सब प्रकार के कल्याण भी होते है और वही स्थान तीर्थ तथा तपोवन है । जिस भगवान् के नामो-

तत प्रसन्नवदन पद्मपत्रायतेक्षण । प्रादुरासीत्समीपेऽस्या शखचक्रगदाधर ॥१४॥
ईषद्धास्यस्फुरद्दतप्रभाभाषितदिङ्मुख । स्पृशन्करेण पुण्येन प्राह कश्यपवल्लभाम् ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

देवमात प्रसन्नोऽस्मि तपसाराधितस्त्वया । चिर श्रातासि भद्र ते भविष्यति न सशय ॥१६॥
वर वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते । मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥१७॥
इत्युक्ता देवमाता सा देवदेवेन चक्रिणा । तुष्टाव प्रणिपत्यैन सर्वलोकसुखावहम् ॥१८॥

अदितिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिञ्जनार्दन । सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारण ॥१९॥
नमस्तेबहुरूपायारूपायच महात्मने । सर्वैकरूपरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥२०॥
नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे । सद्भक्तिजनवात्सल्य शालिने मगलात्मने ॥२१॥
यस्यावताररूपाणि ह्यर्चयन्ति मुनीश्वरा । तमादिपुरुष देव नमामि ह्यर्थसिद्धये ॥२२॥
श्रुतयो य न जानति न जानन्ति च सूरय । त नमामि जगद्धेतु समाय चाप्यमायिनम् ॥२३॥
यस्यावलोकन चित्र मायोपद्रवकारणम् । जगद्रूप जगद्धेतु त वन्दे सर्ववन्दितम् ॥२४॥
यत्पादाम्बुजकिजल्क सेवारञ्जितमस्तका । अवापु परमा सिद्धि त वन्दे कमलाधवम् ॥२५॥
यस्य ब्रह्मादयो देवा महिमान न वै विदु । अत्यासन्न च भक्ताना त वन्दे भक्तसगिनम् ॥२६॥
यो देवस्त्यक्तसगानां शान्ताना करुणार्णव । करोतिह्यात्मनससग त देव सगवर्जितम् ॥२७॥

च्चारणमात्र से निखिल उपद्रव शान्त हो जाते है, उनकी स्तुति पूजन और ध्यान से क्या नही सिद्ध हो सकता है ? विप्र ! इस कारण इस अग्नि द्वारा असुर समेत सारा जगल जल गया, परन्तु भगवान् विष्णु के सुदर्शन से सुरक्षित हो वह नही जली । तदनन्तर उसके समीप प्रसन्न-मुख, कमल नेत्र भगवान् शख, चक्र ओर गदा धारण किये हुए प्रकट हुए । मन्द हास्य के कारण दातो की उज्वल किरणो द्वारा दिशाओ को प्रकाशित करते हुए भगवान् अपने पवित्र हाथ से महर्षि कश्यप की प्राण-वल्लभा का स्पर्श कर बोले ॥३–१५॥

श्री भगवान् ने कहा—देवि ! मै तुम्हारी तप-आराधना से, प्रसन्न हूँ, बहुत दिनो से कष्ट सहन कर रही हो, नि सदेह तुम्हारा कल्याण होगा । अपने मनोरथ के अनुरूप वरदान मागो, मै देने को तैयार हूँ, सौभाग्यवति ! किसी प्रकार का भय न करना, तुम्हारा कल्याण होना निश्चित है ।

देव-देवाधीश, सुदर्शन चक्रधारी भगवान् के इस प्रकार कहने पर देवताओ की जननी (अदिति) ने समस्त लोक को सुख देने वाले विष्णु की प्रणामपूर्वक स्तुति की ॥१६-१८॥

अदिति ने कहा—देव-देवाधीश ! सर्व-व्यापक ! जनार्दन ! सत्त्व, रजस् तमस् गुणो के भेद से लोको की उत्पत्ति स्थिति और लय के कारण ! तुम्हे नमस्कार है । अनेक रूप धारण करने वाले ! निर्गुण ! विराट्-रूपधारीसगुण ब्रह्म-रूप भगवान् तुम्हे नमस्कार है । लोकाधिपति, परम ज्ञान-स्वरूप, अपने सद्भक्त-जनो को वत्सलता से अनुगृहीत करने वाले मगलमय भगवान् के लिए यह नमस्कार है । महर्षि लोग जिसके अवतार-रूप की अर्चना-वन्दना करते है, अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए मै उन आदि-देव को नमस्कार करती हूँ । जिनको भली भाँति श्रुति तथा विद्वज्जन भी नही जान सकते है उन जगत् के कारण माया विशिष्ट तथा माया शून्य भगवान् को मै नमस्कार करती हूँ । जिनका दर्शन विचित्र फल देने वाला एव मायारूपी उपद्रव का हेतु है, उन जगद्रूप (विराट् रूप), जगत् क कारण, सर्व वन्दित भगवान् की वन्दना करती

यज्ञेश्वर यज्ञकर्म यज्ञकर्मसुनिष्ठितम् । नमामि यज्ञफलद यज्ञकर्मप्रबोधकम् ॥२८॥
अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु । प्राप्तवान्परम धाम त वन्दे लोकसाक्षिणम् ॥२९॥
हरिरूपी महादेव· शिवरूपी जनार्दन । इति लोकस्य नेता यस्त नमामि जगद्गुरुम् ॥३०॥
ब्रह्माद्या अपि देवेशा यन्मायापाशयन्त्रिता । न जानन्ति पर भाव त वन्दे सर्वनायकम् ॥३१॥
हृत्पद्मस्थोऽप्ययोग्याना दूरस्थ इव भासते । प्रमाणातीतसद्भावस्त वन्दे ज्ञानसाक्षिणम् ॥३२॥
यन्मुखाद्ब्राह्मणो जातो बाहुभ्यात्क्षत्रियोऽजनि । ऊर्वोर्वैश्य समुत्पन्न पद्भ्या शूद्रोऽभ्यजायत ॥३३॥
मनसश्चद्रमा जातो जात सूर्यश्च चक्षुप । मुखादग्निस्तथेन्द्रश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥३४॥
ऋग्यजु सामरूपाय सप्तस्वर गतात्मने । षडगरूपिणे तुभ्य भूयो भूयो नमोनम ॥३५॥
त्वमिन्द्र पवनः सोमस्त्वमीशानस्त्वमतकः । त्वमग्निर्निर्ऋतिश्चैव वरुणस्त्व दिवाकर ॥३६॥
देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसा । गिरय· सिद्धगधर्वा नद्यो भूमिश्च सागरा ॥३७॥
त्वमेव जगतामीशो यत्रासि त्व परात्पर । त्वद्रूपमखिल देव तस्मान्नित्य नमोऽस्तु ते ॥३८॥
अनाथनाथ सर्वज्ञ भूतदेवेन्द्रविग्रह । दैतेयैर्बाधितान्पुत्रान्मम पाहि जनार्दन ॥३९॥
इति स्तुत्वा देवमाता देव नत्वा पुन पुन । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षास्रुक्षालितस्तनी ॥४०॥
अनुग्राह्यास्मि देवेश त्वया सर्वादिकारण । अकण्टकाश्रिय देहि मत्सुताना दिवौकसाम् ॥४१॥
अन्तर्यामिजगद्रूप सर्वज्ञ परमेश्वर । अज्ञात कि तव श्रीश कि मामीहयसि प्रभो ॥४२॥
तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि रोचते । वृथा पुत्रास्मि देवेश दैतेयै परिपीडता. ॥४३॥

हूँ। जिनके चरण-कमल-रज द्वारा अपने मस्तक की रक्षा कर प्राणी परम सिद्धि को प्राप्त करते है, उन कमलापति की मैं वन्दना करती हूँ। जिसकी महिमा को ब्रह्मादिक देवतागण नही जानते, उन भक्त-सगी, भक्त के समीप मे सर्वदा रहने वाले भगवान की मैं वन्दना करती हूँ। जो ससार-त्यागी, शान्त चित्त वालो के लिए करुणासागर रूप धारण कर उन्हे आत्म-सायुज्य (मोक्ष) देते है उन सगशन्य देव को मैं नमस्कार करती हूँ। जो यज्ञाधीश, यज्ञ-कर्म रूप, यज्ञ कर्म मे सर्वदा सन्निहित, यज्ञ-फल-दाता, यज्ञ कर्म का प्रबोधन करने वाले हैं, उन्हें मै नमस्कार करती हूँ ॥१९-२८॥

जिनके नामोच्चारण मात्र से महान् पापी अजामिल ने भी परम-धाम प्राप्त किया उन लोक-साक्षी रूप भगवान की मैं वन्दना करती हू। महादेव विष्णु-रूप है और जनार्दन शिवरूप है, इस प्रकार लोक के उपदेष्टा जगद्गुरु भगवान् को मै नमस्कार करती हूँ। जिनके माया-फॉस मे बद्ध होकर ब्रह्मादिक देवेश लोग भी परम तत्त्व को नही जानते है उन समस्त ब्रह्माण्ड-नायक की मैं वन्दना करती हूँ। हृदय-कमल मे स्थित रहते हुए भी विमूढ प्राणियो को दूर ही मालूम पडने वाले अनुमान आदि प्रमाणो से अगोचर, ज्ञान-साक्षी रूप भगवान् की मैं वन्दना करती हूँ। जिनके मुख द्वारा ब्राह्मण, बाहू द्वारा क्षत्रिय, ऊरू से वैश्य एव चरण से शूद्र, मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से अग्नि और इन्द्र, तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए है उन ऋक्, यजु, सामवेद स्वरूप, सातो स्वरो मे व्याप्त तथा षडग (व्याकरण आदि) रूपी आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ। तुम्ही इन्द्र, वायु, सोम, ईशान, काल, अग्नि, निर्ऋत, वरुण, दिवाकर, देवता, स्थावर, पिशाच, राक्षस, गिरि, सिद्ध, गन्धर्व, नदी, भूमि, सागर रूप हो। तुम्ही जगत् के ईश हो, तथा जहाँ कही रहते हो, सर्वोत्तम ही रहते हो। देव ! यह समस्त जगत् तुम्हारा ही रूप है। इसलिए मैं सर्वदा तुम्हे नमस्कार करती हूँ। अनाथ-नाथ ! सर्वज्ञ ! भूत, देवता, इन्द्र रूपधारी ! जनार्दन ! दैत्यो द्वारा पीडित मेरे पुत्रो की रक्षा करो। इस प्रकार देवताओ की माता ने भगवान् को बार-बार नमस्कार पूर्वक हाथ जोड कर हर्ष के आँसुओ से स्तनो को भिगोती हुई निवेदन किया—देवेश ! सर्वादिकारण ! यदि मुझे आपने अनुगृहीत किया तो मेरे पुत्रो को विघ्न-बाधा रहित लक्ष्मी प्रदान कीजिए। अन्तर्यामिन् ! जगद्रूप ! सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! लक्ष्मीपते ! आपसे जगत् मे क्या छिपा है ? प्रभो ! मुझे कहने की

तान्नहिंसितुमिच्छामि यतस्तेऽपि सुता मम । तानहत्वा श्रिय देहि मत्सुतेभ्यः सुरेश्वर ।।४४।।
इत्युक्तो देवदेवेश पुन प्रीतिमुपागतः । उवाच हर्षयन्विप्र देवमातरमादरात् ।।४५।।

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि देवि भद्र ते भविष्यामि सुतोह्यहम् । यत सपत्निपुत्रेषुवात्सल्य देवि दुर्लभम् ।।४६।।
त्वया तु यत्कृत स्तोत्र तत्पठन्ति नरास्तु ये । तेषा सपद्वरा पुत्रा न हीयते कदाचन ।।४७।।
स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा य समत्वेन वर्तते । न तस्य पुत्र शोक स्यादेष धर्म सनातन ।।४८।।

अदितिरुवाच

नाह वोढु क्षमा देव त्वामाद्य पुरुष परम् । असख्याताण्डरोमाण सर्वेश सर्वकारणम् ।।४९।।
यत्प्रभाव न जानति श्रुतय सर्वदेवता । तमह देवदेवेश प्रधास्यामि कथ प्रभो ।।५०।।
अणोरणीयासमज परात्परतर प्रभुम् । धारयामि कथ देव त्वामह पुरुषोत्तमम् ।।५१।।
महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रत । मुच्यते स कथ देवो ग्राम्येषु जनिमर्हति ।।५२।।
तथा सूकरमत्स्याद्या अवतारास्तव प्रभो । तथायमपि को वेद तव विश्वेश चेष्टितम् ।।५३।।
त्वत्पादपद्मप्रणता त्वन्नामस्मृतितत्परा । त्वामेव चितये देव यथेच्छसि तथा कुरु ।।५४।।

सनक उवाच

तयोक्त वचन श्रुत्वा देवदेवो जनार्दन । दत्त्वाभय देवमातुरिद वचनमब्रवीत् ।।५५।।

आवश्यकता हो ह ? तथापि मेरी जो इच्छा है, वह मै आपसे निवेदन करूगी । देवाधीश ! मै व्यर्थ ही पुत्रवती कहलाती हूँ। मेरे पुत्र दैत्यो द्वारा बहुत दुखी हो रहे है। दैत्य भी मेरे पुत्र हे, अत मै उन्हे मरवाना नही चाहती हूँ। सुरेश्वर ! उनका सहार किये बिना आप मेरे पुत्रो को राज्यलक्ष्मी दीजिए। विप्र ! इस प्रकार कहने पर अत्यन्त प्रसन्न हो देवाधिदेव भगवान् ने देव-माता को प्रसन्न करते हुए सादर कहा ।।२९-४५।।

श्री भगवान् ने कहा—देवि ! मै प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। देवि ! सौत के पुत्रो पर तुम्हारी तरह वत्सलता प्रकट करना अति कठिन है। अत मै तुम्हारा पुत्र बनूगा। जो लोग तुम्हारे किए हुए स्तोत्र का पाठ करेगे उनके उत्तम धन और पुत्र का नाश कभी नही होगा। जो अपने पुत्रो के समान अन्य के पुत्रो मे सम व्यवहार करता है उसे पुत्र-शोक नही होता यह सनातनधर्म है।।४६-४८।।

अदिति ने कहा—देव ! मै गर्भ रूप मे आपके भार को वहन करने मे असमर्थ हूँ, क्योकि आप परम आदिपुरुष, असख्य ब्रह्माड को रोम-रोम मे लिए हुए, समस्त चराचर के स्वामी और आदि कारण है। जिनके अतुलित प्रभाव को श्रुति तथा समस्त देव गण भी नही जानते हे। प्रभो ! उन देवाधिदेव को मै कैसे धारण कर सकती हूँ ? देव ! आप तो अणु से भी सूक्ष्म, उत्पत्ति रहित, परात्पर प्रभु पुरुषोत्तम हे। मै आपको कैसे धारण कर सकती हूँ ? जिसके नाम-स्मरण मात्र से महापातकी का भी उद्धार हो जाता हे वह क्या ग्रामीण-जनो मे उत्पन्न हो सकता है ? जिस प्रकार वराह, मत्स्य आदि अवतार आपके हुए है यह भी शायद उसी प्रकार का एक अवतार हो। विश्वेश ! आपकी इस चेष्टा को कौन जान सकता हे ? मै एकमात्र आपके चरण कमल की वन्दना, आपका नाम-स्मरण और आपका ध्यान करती रहती हूँ। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करे।।४९-५४।।

सनक ने कहा—देवाधिदेव भगवान् जनार्दन ने ऐसी बाते सुन कर देवताओ की माता को अभय-प्रदान कर कहना आरम्भ किया।।५५।।

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्त महाभागे त्वया नास्त्यत्र सशय । तथापि शृणु वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतर शुभे ।।५६।।
रागद्वेषविहीना ये मद्भक्ता मत्परायणा । वहति सतत ते मा गतासूया अदाम्भिका ।।५७।।
परोपतापविमुखा शिवभक्तिपरायणा । मत्कथाश्रवणासक्ता वहति सतत हि माम् ।।५८।।
पतिव्रता पतिप्राणा पतिभक्तिपरायणा । वहति सतत देवि स्त्रियोऽपित्यक्तमत्सराः ।।५९।।
मातापित्रोश्च शुश्रूषु गुरुभक्तोऽतिथिप्रिय । हितकृद्ब्राह्मणाना य स मा वहति सर्वदा ।।६०।।
पुण्यतीर्थरता नित्य सत्सगनिरतास्तथा । लोकानुग्रहशीलाश्च सतत ते वहति माम् ।।६१।।
परोपकारनिरता परद्रव्यपराङ्मुखा । नपुसका परस्त्रीषु ते वहति च मा सदा ।।६२।।
तुलस्युपासनरता सदा नामपरायणा । गोरक्षणपरा येच सततं मा वहति ते ।।६३।।
प्रतिग्रहनिवृत्ता ये परान्नविमुखास्तथा । अन्नोदकप्रदातारो वहति सतत हि माम् ।।६४।।
त्वा तु देवि पतिप्राणा साध्वी भूतहितेरता । सप्राप्य पुत्रभाव ते साधयिष्यामि मनोरथम् ।।६५।।
इत्युक्त्वा देवदेवेशो ह्यदितिं देवमातरम् । दत्वा कण्ठगता मालामभय च तिरोदधे ।।६६।।
सा तु सहृष्टमनसा देवसूर्दक्षनन्दिनी । प्रणम्य कमलाकात पुन स्वस्थानमाव्रजत् ।।६७।।

इति श्री वृहन्नारदीय पुराणतो गङ्गोत्पत्तौ द्वितीयोऽध्याय ।।२।।

श्री भगवान् ने कहा—सौभाग्यवति ! तुमने सत्य कहा, इसमे कोई सशय नही है। तथापि हे कल्याणि ! मै तुमसे अत्यन्त गुप्त रहस्य बता रहा हूँ, सुनो। राग-द्वेष हीन हो कर जो मेरा भक्त मुझमे लीन रहता है, असूया और दम्भ से रहित होता है वह मुझे भली-भाँति धारण करने मे समर्थ है। जो किसी प्रकार से औरो को सन्तप्त नही करता तथा भगवान् शकर की भक्ति मे परायण रहता है, मेरी कथाओ के सुनने मे निमग्न रहता है, वह सर्वदा मुझे धारण कर सकता है। देवि ! पतिव्रता, पति-प्राणा, पति -भक्ति-परायणा स्त्री भी मत्सर रहित हो सर्वकाल मुझे धारण कर सकती है। जो माता-पिता की शुश्रूषा करने वाला, गुरु-भक्त, अतिथि-सेवी, ब्राह्मणो का हितैषी है, वह सर्वदा मुझे धारण करता है। जो प्राणी पवित्र-तीर्थ-निवास, सत्सग तथा जीवो पर अनुग्रह करते है, वे निरतर मुझे धारण करते है। जो परोपकार मे अनुरक्त, पर द्रव्य से विमुख और पर-स्त्री के साथ नपुसक के समान व्यवहार करते है, वे सदा मुझे धारण करते है। जो प्राणी तुलसी की उपासना मे निरत, सदा मेरे नाम-परायण और गो-रक्षा मे तत्पर रहते है, वे सर्वदा मुझे धारण करते है। जो दान-ग्रहण नही करते, दूसरे का अन्न नही खाते है किन्तु अन्न-जल का दान करते है वे सब काल मुझे धारण करते है। देवि ! तुम पति-प्राणा, पतिव्रता और जीवो को कल्याण देने वाली हो। अत पुत्र हो कर मै तुम्हारे मनोरथ को सफल करूँगा। देवाधीश भगवान् इस प्रकार कह कर देव-माता अदिति को अभयदान और अपने कठ की माला दे कर अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर देव-माता दक्ष नन्दिनी ने प्रसन्नता से लक्ष्मीपति भगवान् को बार-बार नमस्कार कर अपने स्थान को प्रस्थान किया। ।।५६-६७।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे द्वितीय अध्याय समाप्त ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः

सनक उवाच

ततोऽदितिर्महाभागा सुप्रीता लोकवंदिता।। असूत समये पुत्रं सर्वलोकनमस्कृतम् ।।१।।
शंखचक्रधरं शांतं चन्द्रमण्डलमध्यगम् । सुधाकलशदध्यन्नकरं वामनसंज्ञितम् ।।२।।
सहस्रादित्यसंकाशं व्याकोशकमलेक्षणम् । सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं हरिम् ।।३।।
स्तुत्यं मुनिगणैर्युक्तं सर्वलोकैकनायकम् । आविर्भूतं हरिं ज्ञात्वा कश्यपो हर्षविह्वलः ।।४।।
प्रणम्य प्रांजलिर्भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे ।।४।।

कश्यप उवाच

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।
नमोनमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविनाशनाय ।।५।।
नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः सज्जनरंजिताय ।
नमो नमो दुर्जननाशनाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ।।६।।
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।
सशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ।।७।।
नमः पयोराशिनिवासनाय नमोऽस्तु सद्धृत्कमलस्थिताय ।।८।।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यकथागताय ।
नमो नमोऽर्केंदुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।।९।।
नमोऽस्तु यज्ञांगविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ।
नमो जगत्कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।।१०।।

सनक ने कहा—तदनन्तर सौभाग्यवती, लोक-पूज्या अदिति ने प्रेम-मग्न हो पूर्ण समय पर शंखचक्रधारी, शांत, चन्द्रमंडल के मध्य में विराजमान, हाथ में सुधा-कलश लिये, वामन नामक पुत्र को उत्पन्न किया। हजारों सूर्य के समान प्रकाशित, खिले हुए कमल के समान नेत्र वाले, सर्वाभूषण-विभूषित, पीताम्बर धारण किए, मुनि-गण-वन्दित, समस्त लोकाधिपति भगवान् को प्रगट समझ कर कश्यप ने हर्ष-विह्वल हो हाथ जोडकर नमस्कार पूर्वक स्तुति करना आरम्भ किया ।।१-४।।

कश्यप ने कहा—समस्त ब्रह्माण्ड के कारण ! निखिल ब्रह्माण्ड-पालक ! आपको नमस्कार है, देवाधीश, दैत्य-संहारकारी आपके लिए नमस्कार है। भक्तजनों के एकमात्र प्रिय, सज्जनों को अनुरंजित करने वाले आपको नमस्कार है। दुष्टों का विनाश करने वाले, समस्त जगत् के अधिष्ठातृ देव आपको नमस्कार है। कारणवश वामन रूप धारण करने वाले, अतुलित पराक्रमशाली, नारायण भगवान् को नमस्कार है, धनुष, चक्र, खड्ग, गदाधारी पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार है। क्षीर-सागर वासी, सज्जनों के हृदय-कमल में स्थित ईश्वर को नमस्कार है। सूर्य आदि प्रकाशक ज्योतिष्पुञ्जों के समान अमित प्रभा वाले, पुण्य-चरित्र शाली आपको नमस्कार है। सूर्य-चन्द्र रूपी नेत्र वाले, यज्ञ-फलदाता आपको नमस्कार है। यज्ञरूपी अंगों से सुशोभित, सज्जन-वल्लभ आपको नमस्कार है। समस्त जगत् रूप कार्य के कारण, शब्द आदि गुण से

नमोऽस्तु ते दिव्यसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोगताय।
नमोऽस्तु ते ध्वांतविनाशकाय नमोऽस्तु ते मदरधारकाय ॥११॥
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय।
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलांतकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नदसुताग्रजाय ॥१२॥
नमस्ते कमलाकात नमस्ते सुखदायिने। स्मृतार्ति नाशिने तुभ्य भूयो भूयो नमो नम ॥१३॥
यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन ॥१४॥
यज्ञरूपयजद्रूप यज्ञाग त्वा यजाम्यहम्। इति स्तुत स देवेशो वामनो लोकपावन ॥१५॥
उवाच प्रहसन्हर्ष वर्धयन्कश्यपस्य स.।

श्री भगवानुवाच

तात तुष्टोऽस्मि भद्र ते भविष्यति सुरार्चित ॥१६॥
अचिरात्साधयिष्यामि निखिल त्वन्मनोरथम्। अह जन्मद्वये त्वेव युवयो पुत्रता गत. ॥१७॥
अस्मिन्जन्म्यपि तथा साधयाम्युत्तम सुखम्। अत्रातरे बलिर्दैत्यो दीर्घसत्र महामखम् ॥१८॥
आरभे गुरुणा युक्त काव्येन च मुनीश्वरै.। तस्मिन्मखे समाहूतो विष्णुर्लक्ष्मीसमन्वित· ॥२०॥
हवि स्वीकरणार्थाय ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभि। प्रवृद्धैश्वर्यदैत्यस्य वर्तमाने समाक्रतौ ॥२१॥
आमन्त्र्य मातापितरौ स वटुर्वामनो ययौ। स्मितेन मोहयँल्लोक वामनोभक्तवत्सल· ॥२२॥
हविर्भोक्तुमिवायातो वले प्रत्यक्षतो हरि। दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा जडो वाय हितोऽपि वा ॥२३॥

रहित आपको नमस्कार है। मोक्ष-सुखप्रदाता, भक्तो के चित्त मे सर्वदा वर्तमान आपको नमस्कार है। अज्ञान-विनाशक मदराचलधारी भगवान् को नमस्कार है। यज्ञ-वराह, हिरण्याक्ष-विदारक आपको नमस्कार है। वामन-रूपधारी, परशुराम रूप धारण कर क्षत्रिय-कुल-विध्वसक आपको नमस्कार है। रावण-मर्दनकारी, नन्दसुत (बलभद्र) के अनुज आपको नमस्कार है। कमलापते! सुखदाता आपको नमस्कार है। स्मरणमात्र से दु ख नाश करने वाले आपको बार-बार नमस्कार है। यज्ञाधीश! यज्ञ-साधन-रूप! यज्ञ-विघ्न-विनाशकारी, यज्ञ रूप! यज्ञ-क्रियारूप! यज्ञाग रूप! आपकी मै पूजा करता हूँ। इस प्रकार स्तुति करने पर देवाधीश लोक-पावनकारी भगवान् वामन मन्द मन्द मुस्कराते एव कश्यप का हर्ष बढाते हुए बोले ॥५-१५॥

श्री भगवान् ने कहा—तात! मै प्रसन्न हूँ, सुरवन्दित! तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारे सपूर्ण मनोरथो को मै शीघ्र सफल करूँगा। इसी भाँति पिछले और दो जन्मो मे भी मैं तुम दोनो का पुत्र हुआ था। उसी प्रकार इस जन्म मे भी मै उत्तम सुख प्रदान करूँगा। उधर ठीक उसी समय बलि नामक दैत्य ने अपने गुरु शुक्राचार्य और मुनियो के साथ सत्र नामक महान् यज्ञ का आरभ किया। उस यज्ञ मे ब्रह्मवादी ऋषियो ने हवि स्वीकार करने के लिए लक्ष्मी समेत विष्णु भगवान् का आवाहन किया। सर्वसाधनसमृद्ध एव ऐश्वर्यशाली बलि के उस यज्ञ मे भक्त-वत्सल भगवान् वामन रूप धारण कर अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर मद मुसुकान द्वारा जनो को मुग्ध करते हुए गए। बलि के दिये हुए हवि को प्रत्यक्ष खाने के लिए आये हुए विष्णु भगवान् के समान वामन का आगमन हुआ। दुराचारी, सदाचारी, जड, परोपकारी कोई भी प्राणी भक्त हो तो भगवान् सर्वदा उसके अन्त करण मे सन्निहित रहते है। ज्ञानरूपी नेत्र वाले ऋषियो ने आये हुए वामन भगवान् को देखते ही उन्हे

योभक्तियुक्त: तस्यात सदा सन्निहितो हरि. । आयात वामन दृष्ट्वा ऋषयो ज्ञानचक्षुष ॥२४॥
ज्ञात्वा नारायण देवमुद्यु सभ्यसयुता । एतज्ज्ञात्वा दैत्यगुरुरेकाते बलिमब्रवीत् ॥२५॥
स्वसारमविचार्यैव खला. कार्याणि कुर्वते ।

शुक्र उवाच

भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम् ॥२६॥
विष्णुर्वामनरुपेण ह्यदिते पुत्रता गत । तवाध्वर स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर ॥२७॥
नकिंचिदपि दातव्य मन्मत शृणु पडित । आत्मबुद्धि सुखकरी गुरुबुद्धिर्विशेषत ॥२८॥
परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धि प्रलयकरी । शत्रूणा हितकृद्यस्तु स हन्तव्यो विशेषत. ॥२९॥

बलिरुवाच

एव गुरो न वक्तव्य धर्ममार्गविरोधत. । यदादत्ते स्वय विष्णु. किमस्मादधिक वरम् ॥३०॥
कुर्वंति विदुषो यज्ञान्विष्णुप्रीणनकारणात् । सचेत्साक्षाद्धविर्भोगी मत्त कोऽभ्यधिकोभुवि ॥३१॥
दरिद्रेणापि यत्किंचिद्दीयते विष्णवे गुरो । तदेव परम दान दत्त भवति चाक्षयम् ॥३२॥
स्मृतोऽपि परया भक्त्या पुनाति पुरुषोत्तम । येन केनाप्यर्चितश्चेद्ददाति परमा गतिम् ॥३३॥
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपिस्मृत । अनिच्छयापि सस्पृष्टो दहत्येव हि पावक ॥३४॥
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् । स विष्णुलोक माप्नोति पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥३५॥
गोविंदेति सदा ध्यायेद्यस्तु रागादिवर्जित । स याति विष्णुभवन मिति प्राहुर्मनीषिण. ॥३६॥
अग्नौ वा ब्राह्मणे वापि हूयते यद्धविर्गुरो । हरिभक्त्या महाभाग तेन विष्णु: प्रसीदति ॥३७॥

नारायण-देव समझ कर सभासदो के साथ सादर खडे हो कर सत्कार किया। दुष्ट लोग अपनी शक्ति का विचार न कर के कार्य आरभ करने को उद्यत हो जाते हे। अत दैत्यो के गुरुशुक्राचार्य ने एकात मे बलि से कहा—॥१६-२५॥

शुक्राचार्य ने कहा —सरल स्वभाव वाले दैत्य-र ज ! तुम्हारी राज्य-लक्ष्मी का अपहरण करने के लिए विष्णु वामन रूप धारण कर दिति के पुत्र हुए है और असुरराज ! वही तुम्हारे यज्ञ मे आ रहे ह। विद्वन् ! अत मेरी बाते सुनो, उन्हे कुछ न देना । कारण कि अपनी बुद्धि से गुरु-बुद्धि विशेष सुखदायिनी होती है । शत्रु की अथवा दूसरे किसी तटस्थ व्यक्ति की बुद्धि विनाशकारी होती है । स्त्री-बुद्धि प्रलय करनेवाली होती है । शत्रु के हितैषी को तो अवश्य मारना चाहिए ॥२६–२९॥

बलि ने कहा—गुरो ! इस प्रकार धर्म मार्ग विरोधी बाते न कहिए, क्योकि यदि विष्णु भगवान् स्वय मुझसे दान लेने के लिए आर हे हे तो इससे सुन्दर और क्या हो सकता है । भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए विद्वान् लोग यज्ञ करने है, साक्षात् हवि भोक्ता भगवान् आ रहे है तो इस पृथ्वी पर मुझसे बढकर और कौन भाग्यवान् हो सकता है? जो व्यक्ति गुरु रूप भगवान् विष्णु के निमित्त दरिद्रावस्था मे भी जो कुछ अर्पण करता है, वही परम दान तथा अक्षय रहता है । उत्तम भक्त को स्मरण मात्र से पुरुषोत्तम भगवान् पवित्र करते है, । यदि कोई अर्चना-वन्दना करता है तो परमगति प्रदान करते है । बुरी भावना द्वारा स्मृत होने पर भी भगवान पापोको नष्ट कर देते है । जिस प्रकार अनिच्छावश स्पर्श की हुई अग्नि भी जला देती है उसी प्रकार हरि नाम भी पाप पुण्यो का विनाशक है । जिसके जिह्वा के अग्रभाग पर सर्वदा 'हरि' यह दो अक्षर वर्तमान रहता है, वह जन्म-मरण शून्य विष्णु-लोक को प्राप्त करता है । राग-द्वेषहीन होकर जो प्राणी सर्वकाल गोविद का ध्यान करता हे वह अन्त मे विष्णु-भवन को जाता है ऐसा विद्वान् लोग कहते है । गुरो ! अग्नि मे या ब्राह्मण को जो हवि भक्ति पूर्वक

अह तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम् । स्वयमायाति चेद्विष्णु कृतार्थोऽस्मि न सशय ।।३८।।
एव वदति दैत्येन्द्रे विष्णुर्वामनरूपधृक् । प्रविवेशाध्वरस्थान हुतवन्हि मनोरमम् ।।३९।।
त दृष्ट्वा कोटिसूर्याभ योग्यावयवसुदरम् । वामन सहसोत्थाय प्रत्यगृह्णात्कृताजलि ।।४०।।
दत्त्वासन च प्रक्षाल्य पादौ वामनरूपिणम् । सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना परमा मुदमाप्तवान् ।।४१।।
विष्णवेऽस्मै जगद्धाम्ने दत्त्वार्घ्यं विधिवद्बलि । रोमाचिततनुर्भूत्वा हर्षास्त्रुनयनोऽब्रवीत् ।।४२।।

बलिरुवाच

अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफलो मख. । जीवित सफल मेऽद्य कृतार्थोऽस्मि न सशय ।।४३।।
अमोघामृतवृष्टिर्मे समायातातिदुर्लभा । त्वदागमनमात्रेण ह्यनायासो महोत्सव ।।४४।।
एते च ऋषय सर्वे कृतार्था नात्र सशय । यै· पूर्वं हि तपस्तप्त तदद्य सफल प्रभो ।।४५।।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न सशय. । तस्मात्तुभ्य नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमोनमः ।।४६।।
त्वदाज्ञया त्वन्नियोग साधयामीनिमन्मन । अत्युत्साह समायुक्त समाज्ञापय मा प्रभो ।।४७।।
एवमुक्तो दीक्षितेन प्रहसन्वामनोऽब्रवीत् । देहि मे तपसि स्थातु भूमि त्रिपदसमिताम् ।।४८।।
एतच्छ्रुत्वा बलि· प्राह राज्य याचितवान्नहि । ग्राम वा नगर चापि धन वा कि कृत त्वया ।।४९।।
तन्निशम्य बलि प्राह विष्णु सर्वशरीरभृत् । आसन्नभ्रष्टराज्यस्य वैराग्य जनयन्निव ।।५०।।

श्रीभगवानुवाच

श्रुणु दैत्येन्द्र वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतम परम् । सर्वसगविहीनाना किमर्थैः साध्यते वद ।।५१।।
अह तु सर्वभूतानामतर्यामीति भावय । मयि सर्वमिद दैत्य किमन्यै. साध्यते वद ।।५२।।

दी जाती है, महाभाग ! उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हे । भगवान् विष्णु के प्रसन्नार्थ मने इस महान् यज्ञ का आयोजन किया है । यदि स्वय विष्णु आ रहे है तो निस्सदेह मै कृतार्थ हो गया । इस प्रकार दैत्य-राज बलि कह ही रहा था कि उसी समय वामन रूप धारी विष्णु ने हवन द्वारा प्रचलित अग्नि से सुशोभित उस यज्ञ मण्डप मे प्रवेश किया । करोडो सूर्य के समान प्रकाशवाले, उन योग्य अवयवो द्वारा अधिक सुन्दर वामन को देखकर सहसा खडे होकर बलि ने हाथ जोड स्वागत किया । आसन देकर वामन रूपी भगवान का चरण धोकर सपरिवार सिर पर उसे रखकर परम आनन्द प्राप्त किया । इस प्रकार राजा बलि ने जगद्धाम, भगवान् विष्णु की विविध पूजा कर अर्घ्य देकर रोमाचित शरीर हो नेत्र मे हर्ष के आँसू भरकर उनसे कहा।।३०–४२।।

बलि ने कहा—आज मेरा जन्म, यज्ञ और जीवन सफल हुआ, मै कृतार्थ हुआ, इसमे सन्देह नही है। मेरे लिए अत्यन्त दुर्लभ अमृत की अमोघ वर्षा हुई हे । एक मात्र आपके आने ही से महान् आनन्द हुआ । समस्त ऋषि लोग भी आज कृतार्थ हो गये । प्रभो ! जो मैने पहले तप किया था वह आज सफल हो गया। मै अवश्य कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया । इसलिए आपको बार बार नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे मन मे यही भावना है कि आपके आज्ञानुसार ही मै आपका कार्य करूँ। प्रभो ! अत्यत उत्साहित देखकर मुझे निसकोच आज्ञा दीजिए । यज्ञ मे दीक्षित बलि के इस प्रकार कहने पर हसते हुए वामन भगवान ने कहा कि तप करने के लिए मुझे तीन पैर भूमि दान कीजिए । यह सुनकर बलि ने कहा— राज्य, ग्राम, नगर और धन आदि न मागकर आपने यह क्या किया ? ऐसा सुनकर समस्तप्राणियो के शरीरमे विद्यमान् रहनेवाले भगवान् विष्णु शीघ्र ही राज्यपद से च्युत होने वाले बलि को वैराग्य उत्पन्न करते हुए बोले ।।४३–५०।।

श्री भगवान् ने कहा—दैत्यराज ! अत्यत गोपनीय बात मै तुमसे कहता हूँ, सुनो । जो समस्त (राग-द्वेष जनक) सग से रहित है, तुम्ही कहो भला उसे धन आदि की क्या आवश्यकता है ? मुझे सर्वभूतो के अन्तर्यामी

रागद्वेषविहीनाना शाताना त्यक्तमायिनाम् । नित्यानन्दस्वरूपाणा किमन्यै साध्यते धनै ॥५३॥
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यता शातचेतसाम् । अभिन्नमात्मन. सर्व को दाता दीयते च किम् ॥५४॥
पृथ्वीयं क्षत्रियवशा इति शास्त्रेषु निश्चितम् । तदाज्ञाया स्थिता: सर्वे लभते परम सुखम् ॥५५॥
दातव्यो मुनिभिश्चापि षष्ठाशो भूभुजे बले । महीयं ब्राह्मणाना तु दातव्या सर्वपालत ॥५६॥
भूमिदानस्य माहात्म्य न भूत न भविष्यति । पर निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र सशय. ॥५७॥
स्वल्यामपि मही दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये । ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥५८॥
भूमिद सर्वद प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् । अतिदान तु तज्ज्ञेय सर्वपापप्रणाशनम् ॥५९॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकै. । दशहस्ता मही दत्त्वा सर्वपापै प्रमुच्यते ॥६०॥
सत्पात्रे भूमिदाता य सर्व दानफल लभेत् । भूमिदानसम नान्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥६१॥
द्विजाय वृत्तिहीनाय य प्रदद्यान्मही बले । तस्य पुण्यफल वक्तु न क्षमोऽब्दशतैरहम् ॥६२॥
सक्ताय देवपूजासु वृत्तिहीनाय दैत्यप । स्वल्पामपि महीदद्याद्यस्यविष्णुर्न सशय ॥६३॥
इक्षुगोधूमतुवरीपूगवृक्षादिसयुता । पृथिवी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र सशय ॥६४॥
वृत्तिहीनाय विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने । स्वल्पामपि मही दत्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥६५॥
सक्ताय देवपूजासु विप्रायाढकिका महीम् । दत्त्वालभेत गगाया त्रिरात्रस्नानज फलम् ॥६६॥
विप्राय वृत्तिहीनाय सदाचाररताय च । द्रोणिका पृथिवी दत्त्वा यत्फल लभते शृणु ॥६७॥
गगातीर्थाश्वमेधाना शतानि विधिवन्नर । कृत्वा यत्फल माप्नोति तदाप्नोति स पुष्कलम् ॥६८॥
ददाति खारिका भूमि दरिद्राय द्विजाय य । तस्य पुण्य प्रवक्ष्यामि वदतो मे निशामय ॥६९॥

जानो । दैत्य ! यह सब कुछ मुझमे है । अत अन्य चीजो की क्या आवश्यकता है ? जो राग-द्वेषहीन शात, निष्कपट और नित्यानन्द स्वरूप है, उन्हे इन धनो का क्या प्रयोजन है ? समस्त जीवो को आत्मवत् देखनवाले, शातचित्त, सबको अपने से अभिन्न समझनेवाले को दाता कौन है ? और भी, यह पृथ्वी तो क्षत्रिय के अधीन रहती है, ऐसा शास्त्रो का सिद्धात है । इसलिए उसकी आज्ञा मे स्थित रहकर सभी लोग परम सुख प्राप्त करते है । बलि ! महर्षियो को भी राजा के लिए छठवाँ भाग देना उचित है । अत तुम्हे प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणके निमित्त पृथ्वी का दान करना चाहिए । भूमिदान का महत्त्व भूत और भविष्यत् काल मे अपनी समता नही रखता । भूमि-दानी निसदेह परम सुख प्राप्त करते है । श्रोत्रिय अग्निहोत्री ब्राह्मण के लिए स्वल्पमात्र भूमि दान करने से जन्म-मरण रहित ब्रह्मलोक मिलता है । भूमि दानी सर्वदानी कहा गया है और वह मोक्ष भागी होता है । समस्त पापो के विनाश करने वाला महादान उसे जानना चाहिए । महापातकी अथवा समस्त पापो से युक्त हो वह दश हाथ पृथ्वी का दान करने से मुक्त हो जाता है । भूमिदानी सत्पात्र मे भूमिदान कर समस्त दानो का फलभागी होता है । भूमिदान के तुल्य तीनो लोको मे कोई दान नही है । बलि ! वृत्तिहीन ब्राह्मण के निमित्त जो पृथ्वी दान करता है उसके पुण्य-फल का वर्णन मै सैकडो वर्षो मे नही कर सकता हूँ । दैत्यपाल ! देवपूजा मे निमग्न वृत्तिहीन ब्राह्मण को जो अल्पमात्र पृथ्वी दान करता है । उसके लिए वह लेनेवाला विष्णु के समान ही है ॥५१–६३॥

ईख, गेहूँ, अरहर, सुपारी आदि वृक्षो से पूर्ण पृथ्वी का दान जो करता है, वह निसदेह विष्णु रूप है । वृत्तिहीन, दरिद्र और कुटुम्बी ब्राह्मण को अल्पमात्र भी पृथ्वीदान करनेवाला विष्णु-सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है । देवपूजा मे आसक्त ब्राह्मण के निमित्त आढक (१ अढैया) अन्न उत्पन्न करने वाली मात्र पृथ्वी दान करने से गगा मे तीन दिन स्नान का फल प्राप्त होता है । वृत्तिहीन और सदाचारी ब्राह्मण को द्रोणमात्र (२० सेर अन्न उपजाने वाली) भूमि का दान देने से जो फल मिलता है, उसे सुनो । गगातीर्थ मे सौ अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। विधाय जान्हवीतीरे यत्फल तल्लभेद्ध्रुवम् ॥७०॥
भूमिदान महादानमतिदान प्रकीर्तितम्। सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥७१॥

इति श्री वृहन्नारदीयपुराणतो गगोत्पत्तौ तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

प्राप्त होता है वह उसे मिलता है। दरिद्र ब्राह्मण को एक खारीमात्र (५१२ सेर अन्न उत्पन्न करनेवाली) भूमि दान करने से जो फल होता है उसे मै कहता हूँ, सुनो। गगाजी के किनारे हजार अश्वमेध सौ वाजपेय यज्ञ करने से जो फल मिलता है, वह उसे निश्चय प्राप्त होता है। भूमिदान महादान और अतिदान कहा गया है। कारण कि वह समस्त पापो का विनाशक और मोक्ष फल देनेवाला है ॥६४–७१॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

श्री भगवानुवाच

अत्रेतिहास वक्ष्यामि शृणु दैत्यकुलेश्वर। यच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तो भूमिदानफल लभेत् ॥१॥
आसीत्पुरा द्विजवरो ब्राम्हकल्पे महामति। दरिद्रोवृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्बले ॥२॥
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन वेदविदानिशम्। श्रुतानि च पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वश. ॥३॥
अभवस्तस्य षट् पत्न्य' श्रुति सिधुर्यशोवती। कामिनी मालिनी चैव शोभा चेति प्रकीर्तिता' ॥४॥
आसु पत्नीसु तस्यासञ्चत्वारिशच्छतद्वयम्। पुत्राणामसुरश्रेष्ठ सर्वे नित्य बुभुक्षिता' ॥५॥
अकिचनो भद्रमति' क्षुधार्तानात्मजान्प्रिया. । पश्यन्स्वय क्षुधार्तश्च विललापाकुलेंद्रिय ॥६॥
धिग्जन्म भाग्यरहित धिग्जन्म धनवर्जितम्। धिग्जन्म धर्मरहित धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥७॥
नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम्। अहो गुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥८॥
दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते। प्रिय पुत्राश्च पौत्राश्च बाधवा भ्रातरस्तथा ॥९॥
शिष्याश्च सर्वमनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम्। चाडालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥१०॥
दरिद्र पुरुषो लोके शववल्लोकनिंदित। अहो सपत्समायुक्तो निष्ठुरोवाप्यनिष्ठुर. ॥११॥
गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वाप्यथ पडित। ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न सशय. ॥१२॥
अहो दरिद्रतादु ख तत्राप्याशातिदु खदा। आशाभिभूता पुरुषा दु खमश्नुवतेऽक्षयम् ॥१३॥
आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य। आशा दासी येषा तेषा दासायते लोक ॥१४॥
मानो हि महता लोके धनमक्षयमुच्यते। तस्मिन्नाशाख्यरिपुणा माने नष्टे दरिद्रता ॥१५॥

दैत्य-कुलाधीश ! इसी विषय का एक इतिहास मै कहता हूँ जिसे श्रद्धापूर्वक कहने से भूमि-दान का फल होता है। बलि ! पूर्वकालमे ब्रह्मकल्प मे दरिद्र, वृत्तिहीन और महान् बुद्धिमान् भद्रमति नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उस वेदवेत्ता ने समस्त शास्त्र पुराण तथा धर्मशास्त्र का अध्ययन कर उसी के श्रवण-मननमे दिन-रात व्यतीत किया। उसके श्रुति, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी, और शोभा नाम की छ स्त्रियाँ थी। असुरश्रेष्ठ ! उन स्त्रियो से उसे दो सौ चालीस पुत्र हुए वे सर्वदा भूखे रहते थे। अकिचन भद्रमति अपने पुत्रो और स्त्रियो को क्षुधा-पीडित देखकर स्वय भी बुभुक्षित रह व्याकुल हो एक दिन विलाप करने लगा कि भाग्य-हीन का जन्म व्यर्थ है। धर्मरहित के जन्म को धिक्कार है। प्रशसाहीन का जन्म व्यर्थ है। अधिक सन्तानवाले मनुष्य के ऐश्वर्यहीन जन्म को धिक्कार है। अहो ! आश्चर्य है कि दरिद्रता रूपी सागर मे निमग्न प्राणी का गुण सरलता, विद्वत्ता, उत्तम कुल मे जन्म आदि सब कुछ सुशोभित नही होता। उसे ऐश्वर्यहीन समझकर उसकी स्त्रियाँ, लडके, पौत्र, बन्धुगण, भाई लोग, शिष्य लोग और समस्त मनुष्य छोड देते है। चाडाल या द्विज कोई भी हो भाग्यवान ही पूज्य होता है। दरिद्र पुरुष मृतक की भाँति ससार मे त्याज्य होता है। आश्चर्य की बात है कि ऐश्वर्यशाली पुरुष निष्ठुर होते हुए भी सौम्य ही कहे जाते हे। ऐश्वर्ययुक्त होने पर गुणहीन गुणवान एव मूर्ख पंडित होकर पूज्य होता है, इसमे सन्देह नही। अहो ! दरिद्रता महान् दु ख है। पर यहाँ आशा और भी अधिक दु खदायी कही गई है। क्योकि आशाबद्ध पुरुष अमित दु ख भोगते हैं। आशा का दास ससार का दास कहा गया है, किन्तु जिसकी आशा ही दासी होती है, उसका सारा ससार सेवक होता है। ससार मे एकमात्र मान ही बडे लोगो का अक्षय धन कहा गया है। आशा रूपी शत्रु द्वारा मान नष्ट होने पर प्राणी दरिद्रता के अधीन हो जाता है ॥१–१५॥

सवशास्त्रवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत्। नैष्किचन्यमहाग्राहग्रस्ताना को विमोचक ॥१६॥
अहो दु खमहो दु खमहो दु खदरिद्रता। तत्रापि पुत्रभार्याणा बाहुल्यमतिदु खदम् ॥१७॥
एवमुक्त्वा भद्रमति सर्वशास्त्रार्थपारग। अन्यैश्वर्यप्रद धर्म मनसाचिन्तयत्तदा ॥१८॥
भूमिदान विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम्। दानेन योऽनुमताति सएव कृतवान्पुरा ॥१९॥
प्रापक परम धर्म सर्वकामफलप्रदम्। दानानामुत्तम दान भूदान परिकीर्तितम् ॥२०॥
यद्दत्त्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतम नर। इति निश्चित्य मतिमान्धीरोभद्रमतिर्बले ॥२१॥
कौशाम्बीनामनगरी कलत्रापत्ययुग्ययौ। सुघोषनामविप्रेन्द्र सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥२२॥
गत्वा याचितवान्भूमि पचहस्तायता बले। सुघोषो धर्मनिरतस्त निरीक्ष्य कुटुम्बिनम् ॥२३॥
मनसा प्रीयमाणेन समभ्यर्च्येदमब्रवीत्। कृतार्थोऽह भद्रमते सफल मम जन्म च ॥२४॥
मत्कुल पावन जात त्वदनुग्रहतो द्विज। इत्युक्त्वा त समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्पर ॥२५॥
पचहस्तमिता भूमि ददौ तस्मै महामति.। पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता ॥२६॥
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयता मे जनार्दन। मन्त्रेणानेन दैत्येन्द्र सुघोषस्त द्विजोत्तमम् ॥२७॥
विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावती पृथिवी ददौ। सोऽपि भद्रमतिर्विप्रो धीमता याचिता भुवम् ॥२८॥
दत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुबिने। सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वित. ॥२९॥
प्रपेदे विष्णुभवन यत्र गत्वा न शोचति। बले भद्रमतिश्चापि यत प्रार्थितवाञ्छ्रियम् ॥३०॥
स्थितवान्विष्णुभवने सकुटुम्बोयुगायुतम्। तत्रैव ब्रह्मसदने स्थित्वा कोटियुगायुतम् ॥३१॥
ऐद्र पद समासाद्य स्थितवान्पचकल्पकम्। ततो भुव समासाद्य सर्वैश्वर्यसमन्वित ॥३२॥
जातिस्मरो महाभागो बुभुजे भोगमुत्तमम्। ततो भद्रमति दैत्य निष्कामो विष्णुतत्पर ॥३३॥
पृथिवी वृत्तिहीनेभ्यो ब्राह्मणेभ्य प्रदत्तवान्। तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा तत्त्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥३४॥

सपूर्ण शास्त्र-वेत्ता होकर भी प्राणी दरिद्र होने पर मूर्ख के तुल्य हो जाता है। दरिद्र रूपी महाग्राह-ग्रस्त प्राणी को मुक्त करने वाला कौन है? अहो दरिद्रता का दुख महान दुख है, महान् दुख है। किन्तु यदि उस अवस्था मे पुत्र और स्त्री की अधिकता हुई तो वह महान् दुख और भी अकथनीय हो जाता है। इस प्रकार कहकर सर्व-शास्त्र-कुशल भद्रमति अपने मनमे ऐश्वर्यदायक किसी अन्यधर्म का चितन करने लगा। भूमिदान को सर्वदान से उत्तम निश्चय कर अनुमोदन किया और उसीने सर्वप्रथम भूमिदान किया भी है। यह दान अन्यधर्मजनित फलो को देने वाला तथा समस्त मनोरथो को सफल करता है। इसी लिये भूमिदान सपूर्णदानो मे श्रेष्ठ कहा गया है। मनुष्य इसी दान के बल से अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है। बल! धीर बुद्धिमान भद्रमति ने ऐसा निश्चय कर अपने पुत्र, स्त्रियो समेत कौशाम्बी नामक नगरी को प्रस्थित हुआ और वहा जाकर परम ऐश्वर्यशाली सुघोष नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण से पाच हाथ भूमि की याचना की। बलि! धर्मशील सुघोष ने उसे कुटुम्बी देख कर प्रसन्नचित्त हो यथोचित पूजन किया और कहा—भद्रमति! मै कृतार्थ हो गया, मेरा जन्म आज सफल हुआ। द्विज! तुम्हारे अनुग्रह से मेरा कुल पवित्र हो गया। इस प्रकार कहकर धार्मिक विद्वान सुघोष ने यथोचित सत्कार के अनन्तर उसे पाच हाथ भूमि का दान दिया। "यह पृथिवी विष्णु भगवान की है, पवित्र है और उनसे पालित है। अत इस भूमि दान से जनार्दन भगवान मेरे लिये प्रसन्न हो।" इस मत्र को पढते हुये सुघोष ने विष्णु-बुद्धि से उस श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजाकर उतनी पृथिवी का दान किया। भद्रमति ने भी किसी हरि भक्त, कुटुम्बी, वैदिक ब्राह्मण के याचन करने पर उस भूमि को उसे दे दिया। उस भूमि-दान द्वारा सुघोष ने अपने

कोटिवशसमेतस्य ददौ मोक्षमनुत्तमम् । तस्माद्दैत्यपते मह्य . सर्वधर्मपरायण ॥३५॥
तपश्चरिष्ये मोक्षाय देहि मे त्रिपदा महीम् । वैरोचनिस्ततो हृष्ट कलश जलपूरितम् ॥३६॥
आददे पृथिवी दातु वर्णिने वामनाय स । विष्णु सर्वगतो ज्ञाता जलधाराविरोधिनम् ॥३७॥
काव्य हस्तस्थदर्भाग्र तच्छरे सन्यवेशयत् । दर्भाग्रेऽभून्महाशस्त्र कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥३८॥
अमोघ ब्राह्ममत्युग्र काव्याक्षिग्रासलोलुपम् । आयाय भार्गवसुरानसुरानेकचक्षुषा ॥३९॥
पश्येति वार्ददेशे च दर्भाग्र शस्त्रसन्निभम् । बलिर्ददौ महाविष्णोर्मही प्रपदसमिताम् ॥४०॥
ववृधे सोऽपि विश्वात्मा आब्रह्मभुवन तदा । अमिमीत मही द्वाभ्या पद्भ्या विश्वतनुर्हरि: ॥४१॥
स आब्रह्मकटाहातपदान्येतानि सप्रभ । पादागुष्ठाग्रनिर्भिन्नब्रह्माडबिभिदे द्विधा ॥४२॥
तद्वारा बाह्यसलिल बहुधार समागतम् । धौतविष्णुपद तोय निर्मल लोकपावनम् ॥४३॥
अजाडवाह्यनिलय धारारूपमवर्तत । तज्जल पावन श्रेष्ठ ब्रह्मादीन्पावयत्सुरान् ॥४४॥
सप्तर्षिसेवित चैव न्यपतन्मेरुमूर्द्धनि । एतद्दृष्ट्वाद्भुत कर्म ब्रह्माद्या देवतागणा· ॥४५॥
ऋषयो मनवश्चैव ह्यस्तुवन्हर्षविह्वला ।

देवा ऊचु·

नम परेशाय परात्मरूपिणे परात्परायापररूपधारिणे ॥४६॥

करोडो वशो समेत जहाँ जाने पर कोई शोक नही होता उस विष्णु-भवन को प्राप्त किया । बलि ! भद्रमति उस लक्ष्मी-याचना द्वारा अपने समस्त परिवार समेत दश हजार युग विष्णुलोक और करोडो युग तक ब्रह्म-लोक मे रहकर अनन्तर पाच कल्प इन्द्र-पद पर स्थित रहकर पुन समस्त ऐश्वर्य सहित पृथिवी मे आकर जातिस्मर[1] एव कल्याण युक्त होकर उत्तम भोग का अनुभव किया । तदनन्तर दैत्य ! उस भद्रमति ने निष्काम विष्णु की आराधना करते हुये किसी वृत्ति-हीन ब्राह्मण के निमित्त उस पृथिवी का दान किया , जिससे विष्णु भगवान ने प्रसन्न होकर करोडो वशो समेत उसे अलभ्य मोक्षसुख को प्रदान किया । अत दैत्यराज ! सर्वधर्मपरायण ! तप करने के लिये मुझे तीन पैर भूमि दो। अनन्तर विरोचनपुत्र बलिने प्रसन्न हो ब्रह्मचारी वामन भगवान के निमित्त पृथिवी दान के लिये जल-पूर्ण कलश को हाथो मे ग्रहण किया। सर्वव्यापक भगवान ने कलश की जलधारा का अवरोध करने वाले शुक्राचार्य को देख कर हाथ मे लिये हुये कुश के अग्रभाग को उस कलश मे प्रविष्ट कर दिया ॥१६-३८॥

करोडो सूर्य के समान कान्ति वाले, अमोघ, प्रचण्ड, शुक्राचार्य के एक नेत्र के विनाशक उस महान शस्त्र के निमित्त शुक्रचार्य एक नेत्र (काना) हो जाने पर देव-राक्षसो से कहने लगे कि शस्त्र के समान प्रभाव शाली कुशाग्र को तो देखो, कितना तीक्ष्ण है। ऐसा कहही रहे थे कि इसी बीच उधर बलिने विष्णु भगवानको पृथिवी दान कर दिया। विश्वात्मा भगवान यहाँ से ब्रह्म लोक के समान बढ गये और विराट् रूप धारण कर उस दी हुई समस्त पृथिवी को अपने दो पैरो से नाप लिया । उनके उठाये हुये चरणअगुष्ठ द्वारा स्पर्श होते ही ब्रह्माण्ड विदीर्ण होकर दो भागो मे विभक्त हो गया और विष्णु भगवान के चरण को प्रक्षालित करता हुआ लोकपावनकारी वह जल अनेक धाराओ मे बाहर बह निकला और ब्रह्मलोक मे आकर ब्रह्मादिक देवताओ को पवित्र करते हुये सप्तर्षि के निवास भूत मेरु के शिखर पर गिरा । इस अद्भुत कर्म को देखकर देवता लोग, ऋषि, मनु आदि सभी हर्ष-निर्भर-चित्त हो स्तुति करने लगे ॥३९-४५॥

देवताओ ने कहा उस परमाधीश, परात्मरूपी, परात्पर, अपररूपधारी को नमस्कार है। ब्रह्म ब्रह्म विचार शील, अव्याहत-कर्मशील को नमस्कार है, पराधीश ! परमानद। परात्पर ! परमात्मन् ! सर्वात्मा, जगन्मूर्त्ति, अनुमानादि समस्त प्रमाणो से परे आप को नमस्कार है। विश्व-द्रष्टा विश्व-बाहु भगवान् को नमस्कार है। विश्व-शिर, विश्व

१ पूर्व जन्म का स्मरण करने वाला।

ब्रह्मात्मने ब्रह्मरतात्मबुद्धये नमोऽस्तुतेऽव्याहतकर्मशालिने ।
परेश परमानद परमात्मन्परात्पर ।।४७।।
सर्वात्मने जगन्मूर्त्ते प्रमाणातीत ते नम । विश्वतश्चक्षुषे तुभ्य विश्वतोबाहवे नम ।।४८।।
विश्वत शिरसे चैव विश्वतो गतये नम । एव स्तुतो महाविष्णु ब्रह्माद्यै स्वर्दिवौकसाम् ।।४९।।
दत्वाभय च मुमुदे देवदेव सनातन । विरोचनात्मज दैत्य पदैकार्थ बबध ह ।।५०।।
तत. प्रपन्न तु बलि ज्ञात्वा चास्मै रसातलम् । ददौ तद्द्वारपालश्च भक्तवश्यो बभूव ह ।।५१।।

नारद उवाच

रसातले महाविष्णु र्विरोचनसुतस्य वै । किं भोज्य कल्पयामास घोरे सर्पभयाकुले ।।५२।।

सनक उवाच

अमत्रित हविर्यत्तु हूयते जातवेदसि । अपात्रे दीयते यच्च तद्घोर भोगसाधनम् ।।५३।।
हुत हविरशुचिना दत्त सत्कर्म यत्कृतम् । तत्सर्व तत्र भोगार्हमध पातफलप्रदम् ।।५४।।
एव रसातल विष्णुर्बलये सासुराय तु । दत्त्वाभय च सर्वेषा सुराणा त्रिदिव ददौ ।।५५।।
पूज्यमानोऽमरगणै. स्तूयमानो महर्षिभि. । गधर्वैर्गीयमानश्च पुनर्वामनता गत· ।।५६।।
एतद्दृष्ट्वा महत्कर्म मुनयो ब्रह्मवादिन· । परस्पर स्मितमुखा प्रणेमु पुरुषोत्तमम् ।।५७।।
सर्वभूतात्मको विष्णुर्वामनत्वमुपागत । मोहयन्निखिल लोक प्रपेदे तपसे वनम् ।।५८।।
एव प्रभावा सा देवी गगा विष्णुपदोद्भवा । यस्या· स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकै ।।५९।।
इद तु गगामाहात्म्य य पठेच्छृणुयादपि । देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफल लभेत् ।।६०।।
इति श्री वृहन्नारदीयपुराणतो गगोत्पत्तौ चतुर्थोऽध्याय ।।४।।

व्यापक आप को नमस्कार है। इस प्रकार ब्रह्मादिक देवताओ द्वारा स्तुति करने पर महाविष्णु भगवान् ने देवताओ को स्वर्ग प्रदान किया। इस प्रकार देव-देवाधीश, सनातन भगवान् ने देवताओ को अभय दान कर विरोचन-पुत्र बलि को एक पेर भूमि के कारण बाध लिया। अनन्तर भक्तो के अधीन रहने वाले भगवान् ने प्रणत देख कर बलि को रसातल का राज्य प्रदान कर स्वय उसके द्वारपाल हुए।।४६-५१।।

नारद ने कहा—घोर, सर्प-भय-भीषण उस रसातल मे महाविष्णु ने विरोचन-सुत बलि के लिये भोजन-विधान की क्या कल्पनाकी ?

सनक ने कहा—जो हवि बिना मत्र पढे ही अग्नि मे छोडी जाती है और जो दान अपात्र को दिया जाता है, यही उसे भोजन रूप मे मिलता है । अपवित्र होकर जो प्राणी हवन करता है, उसके किये हुए समस्त सत्कर्म उसके भोग के लिये पाताल पहुचते है । इस प्रकार विष्णुभगवान् ने निखिल राक्षसो समेत बलि को रसातल तथा देवताओ को अभय-प्रदान कर स्वर्ग को प्रस्थान किया । तदनन्तर देवताओ के पूजा करने पर, महर्षियो के स्तुति करने पर, गधर्वो के गान करने पर भगवान् ने पुन वामन रूप धारण किया । ब्रह्मवादी मुनिगण इस महान् कर्म को देखकर परस्पर मन्द-हास करते हुये पुरुषोत्तम को नमस्कार करने लगे । सर्वभूतात्मा विष्णु ने वामन रूप धारण कर समस्त लोको को मुग्ध करते हुये तप के लिये वन मे प्रस्थान किया । विष्णु के चरण से उत्पन्न प्रभावशालिनी गगा की उत्पत्ति इस प्रकार हुई जिसके स्मरणमात्र से प्राणी सर्व-पातक मुक्त हो जाते है । इस गगा-माहात्य को देवालय या नदी के किनारे जो पढते या सुनते है, उन्हे अश्वमेध फल प्राप्त होता है ।।।५२–६०।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे चतुर्थ अध्याय समाप्त ।।४।।

पञ्चमोऽध्यायः

सनक उवाच

गगाजलकणेनापि य सिक्तो मनुजोत्तम । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परम पदम् ॥१॥
यद्विन्दुसेवनादेव सगरान्वयसंभवः । विसृज्य राक्षस भाव सप्राप्त परम पदम् ॥२॥

नारद उवाच

कोऽसौ राक्षसभावाद्धि मोचित सगरान्वये । सगर को मुनिश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥३॥

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल गगामाहात्म्यमुत्तमम् । यज्जलस्पर्शमात्रेण पावित सागर कुलम् ॥४॥
गत विष्णुपद विप्र सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । आसीद्रविकुले जातो बाहुर्नामवृकात्मज ॥५॥
बुभुजे पृथिवी सर्वा धर्मतो धर्मतपर । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या' शूद्राश्चान्ये च जतव ॥६॥
स्थापिता. स्वस्वधर्मेषु तेन बाहुर्विशापति । अश्वमेधैरियाजासौ सप्तद्वीपेषु सप्तभि ॥७॥
अतर्पयद्भूमिदेवान्न गोभूस्वर्णांशुकादिभि । अशासन्नीतिशास्त्रेण यथेष्ट परिपन्थिन ॥८॥
मेने कृतार्थमात्मानमन्यातपनिवारणम् । चन्दनानि मनोज्ञानि वलि यत्सर्वदा जना ॥९॥
भूषिता भूपणैर्दिव्यैस्तद्राष्ट्रे सुखिनोमुने । अकृष्टपच्या पृथिवी फलपुष्पसमन्विता ॥१०॥
ववर्ष भूमौ देवेन्द्र काले काले मुनीश्वर । अधर्मनिरता पापे प्रजा धर्मेण रक्षिता ॥११॥
एकदा तस्य भूपस्य सर्वसपद्विनाशकृत् । अहकारो महाञ्जज्ञे सासूयो लोपहेतुक ॥१२॥
अह राजा समस्ताना लोकानां पालको बली । कर्त्ता महाक्रतूना च मत्त पूज्योऽस्ति कोऽपर ॥१३॥
अह विचक्षण. श्रीमाञ्जिता सर्वे मयारय' । वेदवेदागतत्त्वज्ञो नीतिशास्त्रविशारद ॥१४॥

सनक ने कहा—गगाजल के एक बिन्दु मात्र से जो मनुष्य अभिषिक्त होता है वह समस्त पापो से मुक्त होकर परम पद प्राप्त करता है। जिसके विन्दु मात्र से सेवन करने पर सगरवश के लोगो ने राक्षस शरीर का त्याग कर परमपद प्राप्त किया ॥१–२॥

नारद ने कहा—सगर के कुल मे राक्षस शरीर से कौन मुक्त हुआ था ? मुनिश्रेष्ठ ! वे सगर कौन थे, यह सब मुझे सुनाइये ।

सनक ने कहा—मुनि श्रेष्ठ ! जिसके जल-स्पर्श मात्र से सगर का कुल पवित्र हो गया था उस गगा के माहात्य को मै कह रहा हूँ, सुनो । विप्र ! राजा वृक के समस्तलोकोत्तम, विष्णुपद को प्राप्त होने पर बाहु नामक राजा सूर्य-कुल मे उत्पन्न हुये । धर्म मे तत्पर रह कर उन्होने समस्त पृथ्वी का भोग करते हुए ब्राह्मणो, क्षत्रियो, वैश्यो, शूद्रो तथा अन्य प्राणियो को भी अपने-अपने धर्म मे स्थित रखा और उन्ही राजा बाहु ने सातो द्वीपो मे सात अश्वमेध यज्ञो का अनुष्ठान भी किया। गौ, भूमि, सुवर्ण और उत्तम वस्त्रो द्वारा ब्राह्मणो को प्रसन्न करते हुये नीतिशास्त्रानुसार शत्रुओ के ऊपर शासन किया। शत्रु-मान को नष्ट करनेवाले अपने आत्मा को उन्होने कृतार्थ समझा । वे मनोज्ञ चन्दन ही कर रूप मे लेते थे। मुनीश ! उनकी प्रजाये दिव्य-भूषणो से भूषित होकर सर्वदा सुखी रहती थी । बिना जोते बोये पृथिवी सर्वकाल फल-पुष्पो से पूर्ण रहती थी। मुनीश्वर ! समय-समय पर देवराज भूमि पर वर्षा करते थे, अधम-शून्य प्रजाये धर्म से रक्षित थी । एक बार सर्वसम्पत्ति-विनाशकारी, लोपहेतु निन्दासमेत महान् अभिमान उस राजा के उत्पन्न हुआ। समस्त लोको का

अजेयोऽव्याहृतैश्वर्योमत्त कोऽन्योऽधिकोभुवि। अहकारपरस्यैव जातासूया परेष्वपि ॥१५॥
असूयातोऽभवत्कामस्तस्य राज्ञो मुनीश्वर । एषु स्थितेषु तु नरोविनाश यात्यसशयम् ॥१६॥
यौवन धनसपत्ति प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥१७॥
तस्यासूया तु महती जाता लोकविरोधिनी। स्वदेहनाशिनी विप्र सर्वसपद्विनाशिनी ॥१८॥
असूयाविष्टमनसि यदि सपत्प्रवर्तते। तुषाग्निं वायुसयोगमिव जानीहि सुव्रत ॥१९॥
असूयोपेतमनसा दभाचारवता तथा। परुषोक्तिरताना च सुख नेह परत्र च ॥२०॥
असूयाविष्टचित्ताना सदानिष्ठुरभाषिणाम्। प्रिया वा तनया वापि बाधवा अप्यरातय ॥२१॥
मनोऽभिलाष कुरुते य समीक्ष्य परस्त्रियम्। स स्वसपद्विनाशाय कुठारो नात्र सशय ॥२२॥
य स्वश्रेयोविनाशाय कुर्याद्यत्ननरो मुने। सर्वेषा श्रेयस दृष्ट्वा स कुर्यान्मत्सर कुधी ॥२३॥
मित्रापत्यगृहक्षेत्रधनधान्यपशुष्वपि । हानिमिच्छन्नर कुर्यादसूया सतत द्विज ॥२४॥
अथ तस्याविनीतस्य ह्यसूयाविष्टचेतस । हैहयास्तालजघाश्च बलिनोऽरातयोऽभवन् ॥२५॥
यस्यानुकुलोलक्ष्मीश सौभाग्य तस्य वर्द्धते। स एव विमुखो यस्य सौभाग्य तस्य हीयते ॥२६॥
तावत्पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्यगृहादय॰। यावदीक्षेत लक्ष्मीश कृपापागेन नारद ॥२७॥
अपि मूर्खोऽधवधिरजडा शूरा विवेकिन । श्लाघ्या भवति विप्रेद्र प्रेक्षिता माधवेन ये ॥२८।
सौभाग्य तस्य हीयेत यस्यासूयादिलाछनम्। जायते नात्र सदेहो जतुद्वेषे विशेषत ॥२९॥

राजा, पालक तथा महान् यज्ञो का कर्ता मै ही हूँ। मेरे समान बली और पूज्य दूसरा कौन ह ? विद्वान, श्रीमान् मै ही हूँ, समस्त शत्रुओ को मैने ही जीता है, वेद-वेदाग का तत्त्व जानने वाला, नीतिशास्त्र कुशल मै ही हूँ। मै अजय हूँ, इस पृथिवी पर मेरे समान सुरक्षित समृद्धिशाली दूसरा कौन है ? इस प्रकार उस अभिमानी का अभिमान दूसरो के निमित्त उत्पन्न हुआ। मुनीश्वर ! उस राजा के हृदय मे निन्दा-जनित काम उत्पन्न हुआ। ऐसी स्थिति मे मनुष्य का नि सन्देह विनाश हो जाता है। युवावस्था, धन एश्वर्य और अज्ञान इन मे से एक एक ही महान् अनर्थकारी है और जहाँ ये सभी वर्तमान है वहाँ की दुरवस्था का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? विप्र ! इस प्रकार प्रजाओ के प्रतिकूल, स्वदेहनाशकारिणी और समस्त सपत्तिविनाशिनी ईर्ष्या उस राजा के मन मे उत्पन्न हुई। कल्याण मूर्ति ! ब्रह्मचारिन् । यदि परनिन्दक को धन मिल जाता है तो उसे भूसी के अग्नि वायु के साथ केसमान जानो । पर निन्दक, दम्भी ओर कठोर भाषण करने वाले लोगो को इस लोक मे तथा पर लोक मे सुख कही नही मिलता है। ईर्ष्यालु, निष्ठुरभाषी प्राणियो के स्त्री, पुत्र, बाधव सभी शत्रु हो जाते है। जो परस्त्री को देखकर अपने मन मे अभिलाषा प्रगट करते है वे अपनी सपत्ति के नाश होन मे नि सन्देह कुठार के समान है ॥३-२२॥

जो प्राणी दूसरो के कल्याण को देख कर द्वेष करते है मुने ! वे अपने कल्याण के नाश करने के लिए महान प्रयत्न करते है और मूर्ख है—ऐसा समझना चाहिए। ब्राह्मण ! जो परनिन्दक है, वह अपने मित्र, पुत्र, गृह, खेत, धन, धान्य और पशुओ की नि सन्देह हानि चाहता है। तदनन्तर उस परनिन्दक, तथा उद्दण्ड राजा के हैहय और तालजघ नामक दो महान शत्रु उत्पन्न हुए। लक्ष्मीपति भगवान् जिसके अनुकूल होते है उसका सौभाग्य बटता है, और जिसके प्रतिकूल होते है उसका सौभाग्य क्षीण होता है। नारद ! लक्ष्मीपति भगवान् अपनी कृपाकोर से जबतक देखते है पुत्र, पौत्र, धन, धान्य और गृहादिक की स्थिति तथा उनके द्वारा सुख तभी तक प्राप्त होता है । ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मूर्ख, अधा, वधिर, जड, शूर, विवकी कोई भी हो लक्ष्मीपति के दखने से ही प्रशसापात्र होता है। परनिन्दक पुरुष का सौभाग्य प्रतिदिन क्षीण होता है, जीवो से द्वेष करने वाले का तो नि सन्देह विशेष हानि होती है। मुनिश्रेष्ठ ! जो पुरुष निरन्तर किसी से द्वेष करता है उसका समस्त

सतत यस्य कस्यापि यो द्वेष कुरुते नर । तस्य सर्वाणि नश्यति श्रेयासि मुनिसत्तम ।।३०।।
असूया वर्तते यस्य तस्य विष्णु पराङ्मुख । धनधान्यमहीसपद्विनश्यति ततो ध्रुवम् ।।३१।।
विवेक हत्यहकारस्त्वविवेकात्तु जीविनाम् । आपद सभवत्येवेत्यहकार यजेत्तत ।।३२।।
अहकारो भवेद्यस्य तस्य नाशोऽतिवेगत । असूयाविष्टमनसस्तस्य राज्ञ परै सह ।।३३।।
आयोधनमभूद्घोर मासमेक निरतरम् । हैहयैस्तालजघैश्च रिपुभि स पराजित ।।३४।।
स तु बाहुस्ततो दु खी अतर्वत्न्या स्वभार्यया । अवाप परमा तुष्टि तत्र दृष्ट्वा महत्सर ।।३५।।
असूयोपेतमनसस्तस्य भाव निरीक्ष्य च । सरोगता विहगास्ते लीनाश्चित्रमिद महत् ।।३६।।
अहो कष्टमहोरूप घोरमत्र समागतम् । विशन्तस्त्वरया वासमित्यूचुस्ते विहगमा ।।३७।।
सोऽवगाह्य सरो भूय पत्नीभ्या सहितोमुदा । पीत्वा जल च सुखद वृक्षमूलमुपाश्रित ।।३८।।
तस्मिन्बाहौ वन याते तेनैव परिरक्षिता । दुर्गुणान्विगणय्यास्य धिग्धिगित्यब्रुवन्प्रजा ।।३९।।
यो वा को वा गुणो मर्त्ये सर्वश्लाघ्यतरो द्विज । सर्वसपत्समायुक्तोप्यगुणी निदितो जनै ।।४०।।
अपकीर्तिसमो मृत्युर्लोकेष्वन्यो न विद्यते । यदा बाहुर्वन यातस्तदा तद्राजगा जना ।।४१।।
सतुष्टि परमा याता दवथौ विगते यथा । निदितो बहुशो बाहुर्मृतवत्कानने स्थित ।।४२।।
निहत्य कर्म च यशो लोके द्विजवरोत्तम । नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपु ।।४३।।
नास्ति निदासम पाप नास्ति मोहसमासव । नास्त्यसूयासमा कीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनल ।।४४।।
नास्तिरागसम पाशो नास्ति सगसम विषम् । एव विलप्य बहुधा बाहुरत्यतदु खित ।।४५।।

कल्याण नष्ट हो जाता है । परनिन्दा करने वाले के विमुख विष्णु हो जाते हैं । इसलिए निश्चय धन, धान्य, भूमि आदि सभी नष्ट हो जाते है। जीवो के अभिमान उत्पन्न होने से विवेक नष्ट हो जाता है । अज्ञान द्वारा आपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं । इसलिए अभिमानत्याग अवश्य करना चाहिए। अहकारी पुरुष का नाश अल्पकाल मे होता है, हैहय और तालजघ नामक शत्रुओ के साथ एक मास तक निरतर युद्ध करने के उपरान्त उस परनिन्दक राजा की पराजय हो गयी। अनन्तर वह बाहु नामक राजा दु खी हो कर अपनी गर्भिणी स्त्री के साथ इधर-उधर घूमता हुआ एक महान् तालाब को देख कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। यह महान् आश्चर्य है कि उस परनिन्दक राजा के भाव को जान कर तालाब के पक्षीगण भी छिप गये। 'महान् कष्ट है, भीषण रुपधारी यह यहाँ आया' ऐसा अपने निवास-स्थान (घोसले) मे प्रवेश करते हुए पक्षियो ने कहा। अपनी दोनो स्त्रियो के समेत प्रसन्न हो कर राजा ने उस तालाब मे स्नान कर जलपान किया और वही किसी सुखदायी वृक्ष के नीचे ठहरा। राजा बाहु के वन चले जाने पर उसकी प्रजाये स्मरण कर के उसके दुर्गुणो को धिक्कारने लगी। ब्राह्मण ! कोई भी गुणी मनुष्य प्रशसनीय होता ही है, किन्तु निर्गुणी सपत्तिशाली होने पर भी मनुष्यो का निन्दा-पात्र बना रहता है। ससार मे अयश से बढ कर मृत्यु नही है। बाहु के वन चले जाने पर उनकी राज्यवासी प्रजाये ग्रीष्म ऋतु के बीत जाने के समान परम सुखी हुई । द्विज श्रेष्ठ ! बार-बार निन्दित हो कर और अपने कर्म तथा कीर्ति का नाश कर राजा बाहु वन मे मृतक के समान स्थित रहा ।।२३-४२।।

ससार मे अयश के समान मृत्यु नही है, क्रोध के समान कोई शत्रु नही है, निदा के समान कोई पाप नही है, मोह के समान कोई नशा नही है, परनिदा के समान कोई अयश नही है, काम के समान कोई जलाने वाला नही है, राग के समान कोई फास नही है, कुसगति के समान कोई विष नही है । इस प्रकार राजा बाहु बार-बार विलाप कर अत्यन्त दु खी हुआ। उपरान्त बुढापा और मानसिक ताप के कारण उसके अग शिथिल हो गये। बहुत समय बीत जाने पर और्व ऋषि के आश्रम के समीप वह बाहु व्याधि-ग्रस्त हो कर मर गया। मुनि सत्तम ! उस समय उसकी स्त्रियाँ बहुत

जीर्णांगो मनसस्तापाद्वृद्धभावादभूदसौ । गते बहुतिथे काले औवार्श्रमसमीपत ॥४६॥
स बाहुर्व्याधिना ग्रस्तो ममार मुनिसत्तम । तस्य भार्यातिदु खार्ता कनिष्ठा गर्भिणी तदा ॥४७॥
चिर विलप्य बहुधा सह गतु मनोदधे । समानीय च सैधासि चिता कृत्वातिदु खिता ॥४८॥
समारोप्य तमारूढ स्वय समुपचक्रमे । एतस्मिन्नतरे धीमानोर्वस्तेजोनिधिर्मुनि ॥४९॥
एतद्विज्ञातवान्सर्व परमेण समाधिना । भूत भव्य वर्तमान त्रिकालज्ञा मुनीश्वरा ॥५०॥
गतासूया महात्मान पश्यति ज्ञानचक्षुरा । तपोभिस्तेजसाराशिरौर्वपुण्यसमो मुनि ॥५१॥
सप्राप्तस्तत्र साध्वी च यत्र बाहुप्रिया स्थिता । चितामारोढुमुद्युक्ता ता दृष्ट्वा मुनिसत्तम ॥५२॥
प्रोवाच धर्ममूलानि वाक्यानि मुनिसत्तम ।

और्वउवाच

राजवर्य प्रिये साध्वि मा कुरुष्वातिसाहसम् ॥५३॥
तवोदरे चक्रवर्ती शत्रुहता हि तिष्ठति । बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा ॥५४॥
रजस्वला राजसुते नारोहति चिता शुभे । ब्रह्महत्यादिपापाना प्रोक्ता नि कृतिरुत्तमै ॥५५॥
दभिनो निदकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृति । नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षाकरस्य च ॥५६॥
विश्वासपातकस्यापि नि कृतिर्नास्ति सुव्रते । तस्मादेतन्महत्पाप कर्तु नार्हसि शोभने ॥५७॥
यदेतदु खमुत्पन्न तत्सर्व शातिमेष्यति । इत्युक्ता मुनिना साध्वी विश्वस्य तदनुग्रहम् ॥५८॥
विललापातिदु खार्ता समहाधवयुक्तदा । और्वोऽपि ता पुन प्राह सर्वशास्त्रार्थकोविद ॥५९॥
मारोदी राजतनये श्रियमग्रे गमिष्यसि । मामुचास्त्र महाभागे प्रेतोदाह्योऽद्य सज्जनै ॥६०॥
तस्माच्छोक परित्यज्य कुरु कालोचिता क्रियाम् । पडिते वापि मूर्खे वा दरिद्रे वा श्रियान्विते॥६१॥
दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा मृत्यो सर्वत्र तुल्यता । नगरे वा तथारण्ये दैवमत्रातिरिच्यते ॥६२॥

दुखी हुई । सयोगत छोटी रानी गर्भवती थी। अत्यन्त दुखी हो कर उसकी रानियो ने बारम्बार विलाप कर साथ ही सती-हवन का निश्चय कर काष्ठ एकत्र कर चिता बनाई। चिता पर राजा को रख कर वे स्वय भी बैठना चाहती थी कि उसी समय बुद्धिमान् महान् तेजस्वी ओर्व नामक एक मुनि ने अपनी परम योग-समाधि द्वारा रानियो के समस्त वर्तमान एव भूत, भविष्य वृतान्त को जान लिया, क्योकि मुनिवर त्रिकाल के ज्ञाता होते है । दुर्गुणरहित महात्मा लोग अपने ज्ञान-नेत्र से देखते है। तदनन्तर पुण्यमूर्ति, तेजस्वी, तपस्वी ओर्व ऋषि ने जहाँ बाहु की दोनो पतिव्रताये थी वहाँ प्रस्थान किया। मुनिश्रेष्ठ ओर्व ने उन्हे चिता पर बैठने को तैयार देख कर धर्म-वाक्य कहना आरम्भ किया ॥४२-५२॥

ओर्व ने कहा—श्रेष्ठ राजपत्नी ! पतिव्रते ! ऐसा साहस न करो । तुम्हारे गर्भ मे शत्रु-विनाशकारी चक्रवर्ती पुत्र है। छोटे बच्चे वाली स्त्री, गर्भिणी, जो कभी रजस्वला न हुई हो तथा रजस्वला को सती नही होना चाहिए। राजपुत्रि ! कल्याणिनि ! ब्रह्म हत्या आदि पापो से मुक्त होने का उपाय बताया गया है, किन्तु सुव्रते ! दभी, निदक, गर्भघाती, नास्तिक, कृतघ्न, धर्म की उपेक्षा करने वाला और विश्वासघाती के उद्धार का कोई उपाय नही है, इसलिए सुदरि ! ऐसा महान् पाप न करो। यह तुम्हारा सभी दुख शात हो जायगा। इस प्रकार मुनि के कहने पर तथा उनकी कृपा पर विश्वास कर वे दोनो पतिव्रताये अपने पति को ले कर अत्यन्त दुखी हो विलाप करने लगी। समस्त शास्त्रो मे कुशल तथा विद्वान् ओर्व ने पुन उनसे कहा—राजपुत्रि ! रुदन न करो, कालान्तर मे तुम्हे लक्ष्मी मिलेगी। कल्याणिनि ! आसू मत गिराओ। सज्जनो का जैसा कथन है, आज ही शव की दाह क्रिया होनी चाहिए। इसलिए शोक-त्यागकर समयोचित कर्तव्य करो। पडित, मूर्ख, दरिद्र, धनी, दुराचारी, सदाचारी सभी की मृत्यु समान है, नगर और जगल सभी स्थान मे दैव ही प्रधान रहता है। पिछले जन्म के कर्मो का फल इस जन्म मे भोगना पडता है। इसमे एकमात्र दैव ही प्रधान है। क्योकि पूर्वजन्म के कर्मो के अनुसार प्राणी इस ससार मे आता है। कमलानने ! जीव गर्भ मे, बालकाल मे, युवावस्था मे,

यद्यत्पुरातनं कर्म तत्तदेवेह युज्यते। कारणं दैवमेवात्र मन्ये सोपाधिका जना ॥६३॥
गर्भे वा बाल्यभावे वा यौवने वापि वार्द्धके। मृत्योर्वश प्रयातव्य जंतुभि कमलानने ॥६४॥
हृति पाति च गोविन्दो जतून्कर्मवशे स्थितान्। प्रवाद रोपयत्यज्ञा हेतुमात्रेषु जतुषु ॥६५॥
तस्माद्दुःख परित्यज्य सुखिनी भव सुव्रते। कुरु पत्युश्च कर्माणि विवेकेन स्थिरा भव ॥६६॥
एतच्छरीर दुःखाना व्याधीनामयुतैर्वृतम्। सुखाभास बहुक्लेश कर्मपाशेन यन्त्रितम् ॥६७॥
इत्याश्वास्य महाबुद्धिस्तया कार्याण्यकारयत्। त्यक्तशोका च सा तन्वी नता प्राह मुनीश्वरम् ॥६८॥
किमत्र चित्र यत्सतः परार्थफलकाङ्क्षिण। नहि द्रुमाश्च भोगार्थं फलति जगतीतले ॥६९॥
योऽन्यदुःखानि विज्ञाय साधुवाक्यै प्रबोधयेत्। स एव विष्णुसत्वस्थो यत परहिते स्थित ॥७०॥
अन्यदुःखेन यो दुःखी योऽन्यहर्षेण हर्षित। स एव जगतामीशो नररूपधरो हरि ॥७१॥
सद्भिः श्रुतानि शास्त्राणि परदुःखविमुक्तये। सर्वेषा दुःखनाशाय इति सतो वदति हि ॥७२॥
यत्र सत प्रवर्तते तत्र दुःख न बाधते। वर्तते यत्र मार्त्तण्ड कथ तत्र तमो भवेत् ॥७३॥
इत्येव वादिनी सा तु स्वपत्युश्चापरा क्रिया। चकार तत्सरस्तीरे मुनिप्रोक्तविधानत ॥७४॥
स्थिते तत्र मुनौ राजा देवराडिव सज्वलन्। चितामध्याद्विनिष्क्रम्य विमानवरमास्थित ॥७५॥
प्रपेदे परम धाम नत्वा चौर्व मुनीश्वरम्। महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकै. ॥७६॥
पर पद प्रयात्येव महद्भिरवलोकिता। कलेवर वा तद्भस्म तद्धूम वापि सत्तम ॥७७॥
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परा गतिम्। पत्यु कृतक्रिया सा तु गत्वाश्रमपद मुने ॥७८॥
चकार तस्य शुश्रूषा सपत्न्या सह नारद ॥७९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणतो गगोत्पत्तौ पचमोऽध्याय ॥५॥

बुढापा मे कभी न कभी मृत्यु के अधीन होता ही है। कर्मफलानुसार स्थित जीव का नाश, एव रक्षा दोनो एकमात्र गोविद करते है, अज्ञानी जीव निमित्त मात्र बने हुए केवल प्राणियो मे ही दोषारोपण करते हैं। इसलिए सुव्रते! दुःख-त्याग कर सुखी हो पति की क्रिया करो और ज्ञान-दृढ बनो। यह शरीर अनेक दुःख एव व्याधियो से घिरा हुआ है, सुख का केवल भासमात्र है। विविध क्लेशो का अधिष्ठान हो कर यह कर्मपाश से बद्ध है। महान् बुद्धिमान् ऋषि ने इस प्रकार उन्हे धैर्य दे कर उन्ही द्वारा क्रिया का निष्पादन कराया, वे स्त्रिया भी शोक-त्याग कर मुनीश्वर से कहने लगी। सन्त लोग परोपकार रूप फल की ही इच्छा करते है, इसमे क्या आश्चर्य है। क्योकि समस्त पृथिवी मे वृक्ष-गण स्वार्थ के लिए नही परमार्थ के लिए फूलते फलते है। जो दूसरो के दुःखो को जान कर उन्हे उत्तम वाक्यो द्वारा ज्ञान देता है, परोपकार मे तत्पर उस प्राणी को विष्णु तुल्य जानना चाहिए। जो दूसरो के दुःख से दुःखी तथा दूसरो के सुख से सुखी होता है मनुष्य शरीरधारी उस प्राणी को जगत का अधीश्वर जानना चाहिए।

दूसरो को दुःख-मुक्त करने के हेतु ही सज्जन लोग शास्त्र का अध्ययन करते है। इसीलिए समस्त प्राणी के दुःख नाश करने के लिए सत लोग उसे कहते फिरते है। जहाँ सत लोग रहते हैं वहाँ कोई दुःखी नही रह सकता है। भला जहाँ सूर्य है वहाँ अधकार कैसे रह सकता है? इस प्रकार कह कर रानी ने उसी तालाब के किनारे मुनि के बतलाये गए विधानो द्वारा अपने पति की समस्त क्रिया सम्पन्न की। यहाँ पर मुनि की विद्यमान दशा मे ही राजा चिता के मध्य से निकल कर देवराज इन्द्र के समान तेज धारण किए हुए उत्तम विमान पर स्थित हो गया और मुनीश और्व ऋषि को नमस्कार कर परम धाम को प्रस्थान किया। महापातकी, उपपातकी सभी लोग महान लोगो के दर्शनमात्र से ही परम पद प्राप्त करते है। सत्तम! शरीर, राख या धूआ आदि कोई भी पुण्यात्मा के दर्शन मात्र से उत्तम गति प्राप्त करता है। नारद! पति की क्रिया करने के उपरान्त वे स्त्रियाँ उन्ही मुनि के आश्रम मे रह कर उन्ही महर्षि की सेवा करने लगी। ॥५३-७९॥

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसगमे पाचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

बभूव बलवान्धर्मी कृतज्ञो गुणवान्सुधी । धर्मज्ञ सोऽपि सगरो . मुनेरमिततेजस ॥१५॥
समित्कुशाबुपुष्पादि प्रत्यह समुपानयत् । स कदाचिद्गुणनिधि'प्रणिपत्य स्वमातरम् ॥१६॥
उवाच प्राजलिभूत्वा सगरो विनयान्वित ।

सगर उवाच

मातर्गत: पिता कुत्र कि नामा कस्य व शज' ॥१७॥
तत्सर्व मे समाचक्ष्व श्रोतु कौतूहल मम । पित्रा विहीना ये लोके जीवतोऽपि मृतोपमा ॥१८॥
दरिद्रोऽपि पिता यस्यह्यास्ते स धनदोपम । यस्य माता पिता नास्ति सुख तस्य न विद्यते ॥१९॥
धर्महीनो यथा मूर्ख परत्रेह च निदित । माता पितृविहीनस्य अज्ञस्याप्यविवेकिन. ॥२०॥
अपुत्रस्य वृथा जन्म ऋणग्रस्तस्य चैव हि । चन्द्रहीना यथा रात्रि पद्महीन यथा सर ॥२१॥
पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशु । धर्महीनो यथा जतु कर्महीनो यथा गृही ॥२२॥
पशुहीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनार्भक । सत्यहीन यथा वाक्य साधुहीना यथा सभा ॥२३॥
तपो यथा दयाहीन तथा पित्रा विनार्भक । वृक्षहीन यथारण्य जलहीना यथा नदी ॥२४॥
वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनार्भक । यथा लघुतरो लोके मातर्याञ्चापरो नर ॥२५॥
तथा पित्रा विहीनस्तु बहुदु खान्वित सुत । इतीरित सुतेनैपा श्रुत्वा नि श्वस्य दु खिता ॥२६॥
सपृष्ट तथा वृत्त सर्व तस्मै न्यवेदयेत् । तच्छ्रुत्वा सागर क्रुद्ध कोपसरक्तलोचन ॥२७॥
हनिष्यामीत्यरातीन्स प्रतिज्ञामकरोत्तदा । प्रदक्षिणीकृत्य मुनि जननी च प्रणम्य स ॥२८॥
प्रस्थापित प्रतस्थे च तेनैव मुनिना तदा । और्वाश्रमाद्विनिष्क्रात सगर सत्यवाक् शुचि ॥२९॥
वशिष्ठ स्वकुलाचार्य प्राप्त प्रीतिसमन्वित । प्रणम्य गुरवे तस्मै वशिष्ठाय महात्मने ॥३०॥
सर्व विज्ञापयास ज्ञानदृष्ट्या विजानते । ऐद्रास्त्र वारुण ब्राह्ममाग्नेय सगरो नृपः ॥३१॥

आदि ला कर अतुल तेजस्वी उस महर्षि की सेवा करने लगा। कभी एक बार उस गुण शाली सगर ने प्रणाम कर हाथ जोड विनयपूर्वक कहा ॥१-१६॥

सगर ने कहा—मात ! मेरे पिता कहाँ गये है ? उनका नाम क्या है ? और उनका कुल कौन सा है ? यह समस्त वृत्तान्त मुझसे कहो, मुझे सुनने का कुतूहल है, क्योकि पितृ-हीन प्राणी जीवित भी मृतक के समान है। दरिद्र भी पिता जिसका हो वह कुबेर के समान है। क्योकि जिसके माता-पिता न हो वह सुखी नही हो सकता है और धर्म-हीन मूर्ख के समान लोक-परलोक मे निन्दा-पात्र बना रहता है। मातृ-पितृ-हीन, मूर्ख, अज्ञानी पुत्र-हीन एव ऋणी इन सब का जन्म ससार मे व्यर्थ है, चन्द्र-हीन रात्रि, कमल-हीन तालाब और पति-हीन स्त्री, जिस प्रकार शोभा नही पाती, पितृ-हीन बालक भी उसी प्रकार शोभा विहीन है। धर्म-हीन प्राणी, कर्म-हीन गृहस्थ, पशु-हीन वैश्य और पितृ-हीन बालक येस मान है, सत्य-हीन वाक्य, सत्पुरुष-हीन सभा, दया-हीन तप, पितृ-हीन बालक ये समान है। वृक्ष-हीन वन, जल-हीन नदी, वेग-हीन अश्व और पितृ-हीन बालक ये समान है, माता ! जिस प्रकार याचक-मनुष्य ससार मे अत्यन्त छोटा समझा जाता है, पितृ-हीन अत्यन्त दु खी पुत्र भी उसी प्रकार है। पुत्र की ऐसी बाते सुन कर दु खी हो दीर्घ-नि श्वास ले कर रानी ने समस्त वृत्तान्त सगर से कहा, उसे सुन कर सगर ने क्रुद्ध हो रक्त-नेत्र कर उसी समय 'शत्रुओ का नाश करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा की। तदनन्तर मुनि और जननी को प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम कर युद्धार्थ प्रस्थान करते हुए उस सगर को देख मुनि ने बिदा किया ॥१७-२९॥

पवित्राचरण, सत्य-वक्ता उस सगर ने और्व ऋषि के आश्रम से निकल कर ज्ञान-नेत्र द्वारा सभी वृत्तान्तो को जानने वाले अपने कुल-गुरु वसिष्ठ के पास प्रेम-पूर्वक उपस्थित हो कर प्रणामपूर्वक समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। महर्षि द्वारा

तेनैव मुनिनावाप खड्ग वज्रोपम धनु । ततस्तेनाभ्यनुज्ञात सगर सौमनस्यवान् ।।३२।।
आशीर्भिरर्चित सद्य प्रतस्थे प्रणिपत्य तम् । एकेनैव तु चापेन स शूर परिपन्थिन ।।३३।।
सपुत्रपौत्रान्सगणानकरोत्स स्वर्गवासिन । तच्चापमुक्तबाणाग्निसतप्तास्तदरातय ।३४।
किचिद्विनष्टा सत्रस्तास्तथा चान्ये प्रदुद्रुवु । केचिद्विशीर्ण केशाश्च वल्मीकोपरिसस्थिता ।।३५।
तृणान्यभक्षयन्केचिन्नग्नाश्च विविशुर्जलम् । शकाश्च यवनाश्चैव तथा चान्ये महीभृत ।३६।।
सत्वर शरण जग्मुर्वशिष्ठ प्राणलोलुपा । जितक्षिति र्बाहुपुत्रो रिपून्गुरुसमीपगान् ।३७।
चारैर्विज्ञातवान्सद्य प्राप्तश्चाचार्यसन्निधिम ।
तमागत बाहुसुत निशम्य मुनिर्वशिष्ठ शरणागतस्तान् ।
त्रातु च शिष्याभिहित च कर्तु विचारयासास तदा क्षणेन ।।३८।
चकार मुडाञ्छवरान्यवनॉल्लम्बमूर्धजान् । अधाश्च स्मश्रुलान्सर्वान्मुडान्वेदवहिष्कृतान् ३९।।
वशिष्ठमुनिना तेन हतप्रायान्निरीक्ष्य स । प्रहसन्प्राह सगर स्वगुरु तपसोनिधिम् ।।४०।।

सगर उवाच

भो भो गुरो दुराचारानेतान्रक्षसि तान्वृथा । सर्वथाह हनिष्यामि मत्पितुर्देशहारकान् ।।४१।।
उपेक्षेत समर्थ सन्धर्मस्य परिपथिन । स एव सर्वनाशाय हेतुभूतो न सशय ।।४२।।
बाधन्ते प्रथम मत्ता दुर्जना सकल जगत् । त एव बलहीनाश्चेद्भजतेऽत्यतसाधुताम ।।४३।।
अहो मायाकृत कर्म खला कश्मलचेतस । तावत्कुर्वंति कार्याणि यावत्स्यात्प्रबल बलम् ।।४४।।
दासभाव च शत्रूणा वारस्त्रीणा च सौहृदम् । साधुभाव च सर्पाणां श्रेयस्कामो न विश्वसेत् ।।४५।
प्रहास कुर्वते नित्य यान्दन्तान्दर्शयन्खला । तानेव दर्शयत्याशु स्वसामर्थ्यविपर्यये ।।४६।।
इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गगोत्पत्तौ षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

राजा सगर ने ऐंद्र, वारुण, ब्राह्म, आग्नेय, तथा वज्र के समान तलवार और धनुष प्राप्त किया और उन्ही की आज्ञा तथा आशिष ग्रहण कर शीघ्र ही युद्धार्थ प्रस्थान किया। शू-वीर सगर ने एक ही धनुष द्वारा पुत्र-पौत्र समेत उन शत्रुओ को स्वर्गवासी बनाया । उसके धनुष द्वारा छोडे गये वाणो की अग्नि से सतप्त हो कर शत्रु लोग इधर-उधर भागने लगे कोई भयभीत हो कर मर गया, कोई भाग निकला, किसी का केश नष्ट हुआ, किसीने विमौर मर अपनी स्थिति की, कोई तृण खा कर रहने लगे, कोई नग्न हो कर जल मे प्रविष्ट हो गए, शक, आदि अन्य राजा लोग अधीर हो कर प्राण-रक्षा के निमित्त शीघ्र वशिष्ठ की शरण मे गये । इस प्रकार समस्त पृथ्वी जीत कर बाहु-पुत्र सगर दूत द्वारा शत्रुओ को गुरु के समीप मे गये हुए जान कर स्वय आचार्य के समीप गया। मुनिवर वशिष्ठ ने आये हुए बाहु-पुत्र को सुन कर उसी समय शरणागतो की रक्षा एव शिष्यहित का अविरोधी विचार निश्चय किया। वेद-बहिष्कृत शवर, यवन अन्य आदि को दाढी-मूँछ समेत मुडित देख कर सगर ने अपने तपोनिधि गुरु से हँस कर कहा—।।३०-४०।।

सगर ने कहा—गुरो ! इन दुराचारियो की आप व्यर्थ रक्षा करते है, ये मेरे पिता के देश का अपहरण करने वाले है, अत इन्हे मै अवश्य मारना चाहता हूँ। समर्थ हो कर धर्म-विरोधियो की उपेक्षा करना नि सन्देह सर्व-नाश का हेतु है। मतवाले हो कर क्षुद्र लोग पहले समस्त ससार को दु खी करते है और स्वय निर्बल होने पर बडी साधुता प्रगट करते है। पापी दुर्जन लोग जब तक प्रबल रहते है तब तक अनेक छलछन्दपूर्वक अपना कार्य निष्पन्न करते है। शत्रुओ के दास्य-भाव, वेश्याओ की मित्रता, सर्पा की साधुता का विश्वास कोई भी कल्याण चाहने वाला प्राणी न करे। दुर्जन लोग हँसते हुए पहले अपने जिन दाँतो को दिखाते है, सामर्थ्य-हीन हीन होने पर उन्ही द्वारा दीनता भी प्रकाशित करते है।।४१-४६।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण के गगोत्पत्ति के प्रसग मे छटा अध्याय समाप्त ।।६।।

सप्तमोऽध्यायः

सगर उवाच

पिशुना जिह्वया पूर्वं परुष प्रवदति च। अतीव करुण वाक्य वदत्येव तथाबला ॥१॥
श्रेयस्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविद । साधुत्व समभाव च खलाना नैव विश्वसेत् ॥२॥
दुर्जन प्रणति यात मित्र कैतवशीलिनम् । दुष्टा भार्या च विश्वस्तो मृत एव न सशय ॥३॥
मा रक्ष तस्मादेतान्वै गोरूपव्याघ्रकर्मिण । हत्वैतानखिलान् दुष्टास्त्वत्प्रसादान्मही भजे ॥४॥
वशिष्ठस्तद्वच श्रुत्वा सुप्रीतो मुनिसत्तम । कराभ्या सगरस्याग स्पृशन्निदमुवाच ह ॥५॥

वशिष्ठ उवाच

साधु साधु महाभाग सत्य वदसि सुव्रत । तथापि मद्वच श्रुत्वा परा शार्ति लभिष्यसि ॥६॥
मयैते निहता पूर्वं त्वत्प्रतिज्ञाविरोधिन । हताना हनने कीर्ति का समुत्पद्यते वद ॥७॥
भूमीश जतव सर्वे कर्मपाशेन यत्रिता । तथापि पापैर्निहता: किमर्थं हसि तान्पुन ॥८॥
देहस्तु पापजनित पूर्णमेवैनसा हत । आत्माहभेद पूर्णत्वाच्छास्त्राणामेष निश्चय ॥९॥
स्वकर्मफलभोगाना हेतुमात्रा हि जतव । कर्माणि दैवमूलानि दैवाधीनमिद जगत् ॥१०॥
यस्माद्दैवाहि साधूना रक्षिता दुष्टशिक्षिता । ततो नरैरस्वतत्रै कि कार्यं साध्यते वद ॥११॥
शरीर पापसभूत पापेनैव प्रवर्तते । पापमूलमिद ज्ञात्वा कथ हन्तु समुद्यत ॥१२॥
आत्मा शुद्धोऽपि देहस्थो देहीति प्रोच्यते बुधै । तस्मादिद वपुर्भूप पापमूल न सशय ॥१३॥
पापमूल वपुर्हन्तु का कीर्तिस्तव बाहुज । भविष्यतीति निश्चित्य नैतान्हिसीस्तत सुत ॥१४॥

सगर ने कहा—पिशुन (चुगलखोर) लोग जिस जिह्वा द्वारा कठोर भाषण का व्यवहार करते है, निर्बल होने पर उसी द्वारा अत्यन्त करुण वाक्यो का प्रयोग करते है। कल्याण-इच्छुक नीति-शास्त्र का विद्वान् दुर्जनो के सम-भाव और साधु-भाव का विश्वास कभी न करे। नम्र दुर्जन, कपटी मित्र एव दुष्टा स्त्री इन सब का विश्वास करने वाला प्राणी मरे हुए के समान है। अत गौ-रूप धारण कर व्याघ्र-कर्म करने वाले इन दुष्टो की रक्षा आप न करे, आपके अनुग्रह-द्वारा समस्त दुष्टो का सहार कर मै इस पृथिवी का राज्य करना चाहता हूँ। मुनि-श्रेष्ठ वशिष्ठ ने सगर की ऐसी बाते सुन कर प्रसन्नता पूर्वक हाथो से सगर के अग का स्पर्श करते हुए कहा ॥१-५॥

वशिष्ठ ने कहा—महाभाग ! सुकृत ! यद्यपि तुम सत्य और उत्तम बाते कह रहे हो किन्तु मेरी बाते सुन कर तुम्हे अत्यन्त शाति प्राप्त होगी। तुम्हारे इन प्रतिज्ञा-विरोधियो को मैने पहले ही मार दिया है। अत मृतक को मारने से कौन सी कीर्ति होगी, तुम्ही बताओ। पृथिवीपते ! समस्त प्राणी कर्म-पाश से बद्ध हो कर अपने पापो द्वारा मरते है, फिर उन्हे क्यो मारते हो ? पाप-द्वारा उत्पन्न हो कर देह उसी द्वारा नष्ट भी हो जाती है और आत्मा अभेद्य तथा पूर्ण है, ऐसा शास्त्रो का सिद्धान्त है। अपने कर्म-फल के भोग मे प्राणी केवल हेतुमात्र है। क्योकि कर्म दैवाधीन है। अत यह समस्त ससार ही दैवाधीन है। साधु-रक्षक एव दुष्ट-शिक्षक दोनो ही दैव है। तो फिर पराधीन मनुष्य क्या कर सकता है ? तुम्ही बताओ ? पाप-द्वारा उत्पन्न शरीर पाप द्वारा ही कार्यो मे प्रवृत्त होता है। अत पाप-मूलक जान कर इन्हे मारने के लिए क्यो तैयार हो ? देह-धारण करने पर भी आत्मा शुद्ध है, विद्वान् लोग इसे देही कहते है। अत राजन ! इस शरीर को पाप-मूलक समझो। बाहु-पुत्र ! पाप-मूलक शरीर को मार कर तुम्हे कौन यश प्राप्त होगा ? पुत्र ! ऐसा सोच कर इन्हे मत मारो।

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य विरराम स कोपत । स्पृशन्करेण सगर नदर्न मुनयस्तदा ॥१५॥
अथाथर्वनिधिस्तस्य सगरस्य महात्मन । राज्याभिषेक कृतवान्मुनिभि सह सुव्रतै ॥१६॥
भार्याद्वय च तस्यासीत्केशिनी सुमतिस्तथा । काश्यपस्य विदर्भस्य तनये मुनिसत्तम ॥१७॥
राज्ये प्रतिष्ठिते दृष्ट्वा मुनिरौर्वस्तपोनिधि । वनादागत्य राजान सभाष्य स्वाश्रम ययौ ॥१८॥
कदाचित्तस्य भूपस्य भार्याभ्या प्रार्थितो मुनि । वर ददावपत्यार्थमौर्वो भार्गवमत्रवित् ॥१९॥
क्षण ध्यानस्थितो भूत्वा त्रिकालज्ञो मुनीश्वर । केशिनी सुमति चैव इदमाह प्रहर्षयन् ॥२०॥

और्व उवाच

एका वशधर चैकमन्या षड्युतानि च । अपत्यार्थं महाभागे वृणुता च यथेप्सितम् ॥२१॥
अथ श्रुत्वा तस्य मुने रौर्वस्य च नारद । केशिन्येक सुत वव्रे व शसतानकारणम् ॥२२॥
तथा षष्टिसहस्राणि सुमत्या ह्यभवन्सुता । नाम्नासमजा केशिन्यास्तनयो मुनिसत्तम ॥२३॥
असम जस कर्माणि चकारोन्मत्तचेष्टित । त दृष्ट्वा सागरा सर्वेह्यासन्दुर्वृत्तचेतस ॥२४॥
तद्बालभाव सदुष्ट ज्ञात्वा बाहुसुतो नृप । चितयामास विधिवत्पुत्रकर्मविगर्हितम् ॥२५॥
अहो कष्टतरा लोके दुर्जनाना हि सगति । कारुकैस्ताड्यते वन्हिरय सयोगमात्रत ॥२६॥
अशुमान्नाम तनयो बभूव ह्यसम जस । शास्त्रज्ञोगुणवान्धर्मी पितामहहिते रत ॥२७॥
दुर्वृत्ता सागरा सर्वे लोकोपद्रवकारिण । अनुष्ठानवता नित्यमतराया भवति ते ॥२८॥
हुतानि यानि यज्ञेषु हवींषि विधिवद्द्विजै । बुभुजे तानि सर्वाणि निराकृत्य दिवौकस ॥२९॥
स्वर्गादाहृत्य सतत रभाद्या देवयोषित । भजति सागरास्ते वै कचग्रहबलात्कृता ॥३०॥

इस प्रकार गुरु के वाक्यो को सुन कर सगर ने अपना क्रोध त्याग किया। महर्षि ने भी अपने हाथो से आनन्द-प्रद सगर का स्पर्श किया। तदुपरान्त अथर्व-वेत्ता वसिष्ठ ने व्रत एव नियम मे रत रहने वाले मुनियो के साथ महात्मा सगर का राज्याभिषेक किया। मुनिसत्तम ! विदर्भ देश के कश्यप नामक राजा की केशिनी और सुमति नामक दो कन्याये राजा सगर की धर्मपत्नी थी। तपोनिधि, महर्षि और्व राज्य प्रतिष्ठित सगर को देखने के लिए वन से आये और राजा से वार्तालाप कर पुन अपने आश्रम को चले गये। एक बार राजा की उन दोनो स्त्रियो के सन्तान निमित्त प्रार्थना करने पर भृगु-मत्र-वेत्ता मुनिवर और्व ने वरदान दिया। त्रिकाल-ज्ञाता मुनीश्वर ने क्षणमात्र ध्यान-मग्न हो कर हसते हुए कहा॥६-२०॥

और्व ने कहा—तुम दोनो मे से एक को वशधारी केवल एक और एक को साठ हजार पुत्र उत्पन्न होगे, महाभागे ! सन्तानवती होने के लिए अपनी अपनी इच्छानुसार स्वीकार करो।

नारद ! इसके उपरान्त जितेन्द्रिय और्व के कथन को सुन कर केशिनी ने वश के निमित्त केवल एक सुत को स्वीकार किया। सुमति के भी साठ हजार पुत्र हुए। मुनिसत्तम ! केशिनी के पुत्र का नाम असमजस हुआ । वह असमजस उन्मत्तो के समान कर्म करने लगा । उसे देख कर सगर के सभी लडके दुराचारी हो गए। बाहु-पुत्र सगर ने अपने पुत्रो की दुष्टता को जान कर उनके निन्दित कर्मो का विधिवत् विचार किया । ससार मे दुर्जनो की सगति निश्चय ही कष्ट-दायिनी होती है । लोहे का सयोग होने के कारण अग्नि को भी लुहार पीटने लगता है । उस असमजस के शास्त्र-ज्ञाता, गुणवान्, धार्मिक, एव पितामह का हितैषी अशुमान् नामक पुत्र हुआ ।

ससार मे उपद्रव करने वाले, दुराचारी वे सगर के सभी पुत्र यज्ञ करने वालो के अनुष्ठान मे महान विघ्न करने लगे । यज्ञादिको मे देवताओ को भगा-भगा कर ब्राह्मण द्वारा विधिवत् हवन किये हुए हवि का भोजन करने लगे । इस प्रकार वे सगर के पुत्रगण रम्भा आदि देव-स्त्रियो का स्वर्ग से केश पकड कर बलात्कार पूर्वक अपहरण कर बिहार करने लगे॥२१-३०॥

पारिजातादिवृक्षाणा पुष्पाण्याहृत्य ते खला । भूषय ति स्वदेहानि मद्यपानपरायणा ॥३१॥
साधुवृत्ती समाजह्रु सदाचाराननाशयन् । मित्रैश्च योद्धमारब्धा बलिनोऽत्यतपापिन ॥३२॥
एतद्‌दृष्ट्वातिदु खार्ता देवा इद्रपुरोगमा । विचार परम चक्रुरेतेषा नाशहेतवे ॥३३॥
निश्चित्य विबुधा सर्वे पातालातरगोचरम् । कपिल देवदेवेश ययु प्रच्छन्नरूपिण ॥३४॥
ध्याय तमात्मनात्मान परान दैकविग्रहम् । प्रणम्य दडवद्‌भूमौ तुष्टुवुस्त्रिदशास्तत ॥३५॥

देवा ऊचु:

नमस्ते योगिने तुभ्य साख्ययोगरताय च । नररूप मतिच्छन्न विष्णवे जिष्णवे नम ॥३६॥
नम परेशभक्ताय लोकानुग्रहहेतवे । ससारारण्यदावाग्ने धर्मपालनसेतवे ॥३७॥
महते वीतरागाय तुभ्य भूयो नमोनम । सागरै पीडितानस्मास्त्रायस्व शरणागतान् ॥३८॥

कपिल उवाच

ये तु नाशमिहेच्छति यशोबलधनायुषाम् । त एव लोकान्बाधते नात्राश्चर्य सुरोत्तमा ॥३९॥
यस्तु बाधितुमिच्छेत जनान्निरपराधिन । त विद्यात्सर्वलोकेषु पापभोगरत सुरा ॥४०॥
कर्मणा मनसा वाचा य स्तुत्यान्बाधते सदा । त हति दैवमेवाशु नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥
अल्पैरहोभिरेवैते नाशमेष्यति सागरा । इत्युक्ते मुनिना तेन कपिलेन महात्मना ॥४२॥
प्रणम्य त यथान्याय गता नाक दिवौकस । अत्रातरे तु सगरो वशिष्ठाद्यैर्महर्षिभि ।४३॥
आरेभे हयमेधाख्य यज्ञ कर्तुमनुत्तमम् । तद्यज्ञे योजित सप्तिमपहृत्य सुरेश्वर ॥४४।
पाताले स्थापयामास कपिलो यत्र तिष्ठति । गूढविग्रहशक्रेण हृतमश्व तु सागरा ॥४५॥
अन्वेष्टु बभ्रमुर्लोकान् भूरादीश्च सुविस्मिता । अदृष्टसप्तयस्तेच पाताल गन्तुमुद्यता ॥४६॥
चख्नुर्महीतल सर्गमेकैको योजन पृथक् । मृत्तिका खनिता ते चोदधितीरे समाकिरन् ॥४७॥

वे दुष्ट-गण मद्य-पान कर नशे मे पारिजात आदि वृक्षो के फूलो से अपने को सुशोभित करते थे। सज्जनो की आजीविका एव सदाचरण का नाश करते हुए उन घोर पापियो ने अपनी शक्ति से मदाध हो कर अपने मित्रो से भी युद्ध करना आरम्भ कर दिया। यह देख कर इन्द्र आदि देवता लोग अत्यन्त दु खी हो इनके विनाश के हेतु का विचार किया। विचार को निश्चित कर देवलोग अपने स्वरूप को छिपा कर पाताल के भीतर रहने वाले देवाधिदेव कपिल के यहा गए। वहाँ जाकर एकमात्र आनन्दरूप शरीरधारी, आत्म-स्वरूप का ध्यान करते हुए पृथिवी मे दण्डवत् कर स्तुति करना आरम्भ किया।

देवताओ ने कहा—साख्य-योग-मग्न! योगिन! तुम्हे नमस्कार है, मनुष्य रूप मे दिये हुए जयशील विष्णु को नमस्कार है। ससार मे कृपाकारण! पराधीश हो कर भी भक्तरूप! तुम्हे नमस्कार है, ससाररूपी वन की दावाग्नि! धर्म-पालन के मर्यादारूप, विरागी, महान! तुम्हे बार-बार नमस्कार है, सगरपुत्रो द्वारा पीडित, शरण मे आए हुए हम लोगो की रक्षा कीजिये।

कपिल ने कहा—सुरोत्तम! जो अपने यश, बल, धन और आयु का नाश चाहते है नि सन्देह वही ससार को बाधा पहुँचाते है॥३१-३९॥

देव! जो व्यक्ति निरपराध प्राणी को कष्ट देते है, उन्हे ससार मे पाप भागी जानो। मनसा, वाचा, कर्मणा जो व्यक्ति भक्तो को किसी प्रकार की बाधा पहुचाता है नि सन्देह वह अल्प-काल मे दैव द्वारा नष्ट हो जाता है। अत अल्प-काल मे ही इन सगर-पुत्रो का नाश अवश्य होगा, महात्मा कपिल मुनि के इस प्रकार कहने पर देवताओ ने उन्हे प्रणाम कर अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया। इन्ही दिनो राजा सगर ने वशिष्ठ महर्षियो द्वारा अश्व-मेध नामक उत्तम यज्ञ आरभ किया था, उस यज्ञ मे छोडे गये घोडे को चुराकर इन्द्र ने उसे पाताल मे पहुँचा दिया जहाँ कपिल वर्तमान थे। इस प्रकार छिपे रूप मे इन्द्र द्वारा चुराये हुये घोडे को ढूढने के लिये उन सगरपुत्रो ने भू आदि सभी लोको

तद्द्वारेण गता सर्वे पाताल सागरात्मजा । विचिन्वतो हय तत्र मत्तोन्मत्ता विचेतस ॥४८।
तत्रापश्यन् महात्मान कोटिसूर्यसमप्रभम् । कपिल ध्याननिरत वाजिन च तदन्तिके ॥४९॥
तत· सर्वे तु सरब्धास्त मुनि पश्य वेगत । हतुमुद्युक्तमनसो विद्रवत समासदन् ।५०॥
हन्यताहन्यतामेष वध्यता वध्यतामयम् । गृह्यता गृह्यतामाशु इत्यूचुस्ते परस्परम् ॥५१॥
हृताश्व साधुभावेन वकवध्यानतत्परम् । सन्ति चाहो खला लोके कुर्वन्त्याडवर महत् ॥५२॥
इत्युच्चरतो जहसु कपिल ते मुनीश्वरम् । समस्तेन्द्रियसदोह नियम्यात्मानमात्मनि ॥५३॥
आस्थित कपिलस्तेषा तत्कर्म ज्ञातवान्नहि । आसन्नमृत्यवस्तेतु विनष्टमतयो मुनिम् ।५४॥
पद्भि सताडयामासुर्बाहू च जगृहु परे । ततस्त्यक्त्वा समाधिस्तु समुनिर्विस्मितस्तदा ॥५५॥
उवाच भावगभीर लोकोपद्रवकारिण· । ऐश्वर्यमदमत्ताना क्षुधिताना च कामिनाम् ॥५६॥
अहकारविमूढाना विवेको नैव जायते ॥ ७ ।
इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गगोत्पत्तौ सप्तमोऽध्याय ॥७॥

को देखा, पर न पाकर अति विस्मित हुए ओर पाताल को प्रस्थान किया। चार-चार कोस की दूरी पर अलग-अलग स्थित हो कर उन लोगो ने पृथिवी को खोदना आरभ किया और मिट्टी को समुद्र-तीर पर फेकते गये। सयोगत उसी द्वार से वे अज्ञानी, मतवाले सगर-पुत्र घोडे को खोजते हुये पाताल लोक को पहुचे वहाँ जाकर उन्होने करोडो सूर्य के समान प्रकाशित, ध्यान-मग्न महात्मा कपिल को और उनके समीप अपने घोडे को देखा। तदनन्तर उन आततायियो ने बडे वेग से मुनि को मारने के लिये धावा किया।

वे कहने लगे—मारो मारो, यह वध के ही योग्य है, शीघ्र पकड लो, पकडो घोडे को चुराकर यह बक की तरह ध्यान लगागर बैठा है आश्चर्य है कि दुर्जन लोग भी इस ससार मे महान आडबर करते ह। समस्त इन्द्रियो का का नियमन कर परमात्मा के ध्यान मे निमग्न महात्मा कपिल को इस प्रकार की बाते कहते हुए उन लोगो ने महान् अट्टहास किया। पर इस प्रकार उन्होने उन दुष्टो की बातो पर कोई ध्यान नही दिया, किन्तु उन मरणासन्न, भ्रष्टबुद्धि वालो ने मुनि के ऊपर पाद-प्रहार किया। किसी ने हाथ भी पकड लिया। ऐसा करते देख विस्मित होकर मुनि ने समाधि-त्याग कर उन ससारी दुष्टो से कहा। ऐश्वर्य के मद से मतवाले क्षुधा-पीडित, कामी, अहकार-विमूढ प्राणी का ज्ञान लुप्त हो जाता है ॥४०—५७॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे साँतवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

अष्टमोऽध्याय:

कपिल उवाच

निधेराधारमात्रेण मही ज्वलति सर्वदा। तदेव मानवा भुक्त्वा ज्वलतीति किमद्भुतम् ॥१॥
किमत्र चित्र स्वजन बाधते यदि दुर्जना। महीरुहाश्चानुतटे पातयति नदीरया ॥२॥
यत्र श्रीयौवन वापि शारदा वापि तिष्ठति। तत्राश्रीवृद्धतानित्य मूर्खत्व चापि जायते ॥३॥
अहो कनकमाहात्म्यमाख्यातु केन शक्यते। नामसाम्यादतो चित्र धत्तूरोऽपि मदप्रद ॥४।
भवेद्यदि खलस्य श्री' सैव लोकविनाशिनी। यथा सखाग्ने पवन पन्नगस्य यथाविपम् ॥५।
अहो धनमदाधस्तु पश्यन्नपि न पश्यति। यदि पश्यत्यात्महित स पश्यति न सशय ॥६॥
इत्युक्त्वा कपिल क्रुद्धो नेत्राभ्या ससृजेऽनलम्। स वन्हि सागरान्सर्वान्भस्मसादकरोत्क्षणात्। ७॥
यन्नेत्रजानल दृष्ट्वा पातालतलवासिन। अकालप्रलय मत्वा चुक्रुशु शोकलालसा ॥८॥
तदग्नितापिता सर्वे ददशूकाश्च राक्षसा। सागर विविशु शीघ्र सता कोपो हि दु सह ।९॥
अथ तस्य महीपस्य समागम्याध्वर तदा। देवदूत उवाचेद सर्व वृत्त हि यद्यते ॥१०॥
एतत्समाकर्ण्य वच सगर सर्ववित्प्रभु। दैवेन शिक्षिता दुष्टा इत्युवाचातिहर्षित ॥११॥
माता व जनको वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा। अधर्म कुरुते यस्तु स एव रिपुरिष्यते ॥१२॥
यस्त्वधर्मेषु निरत सर्वलोकविरोधकृत्। त रिपु परम विद्याच्छास्त्राणामेष निर्णय ॥१३॥
सगर पुत्रनाशेऽपि न शुशोच मुनीश्वर। दुर्वृत्तनिधन यस्मात्सतामुत्साहकारणम् ॥१४।
यज्ञेष्वनधिकारत्वादपुत्राणामितिस्मृते। पौत्र तमशुमन्त हि पुत्रत्वे कृतवान्प्रभु ॥१५॥
असमजससुत त तु सुधिय वाग्विदावर। युयोज सारविद्भूयो ह्यश्वानयनकर्मणि ॥१६॥

कपिल ने कहा—निधि का आधार होने से पृथिवी सर्वदा जलती रहती है, उसी (निधि) का भोग कर मनुष्य जले तो कौन सा आश्चर्य है। यदि दुर्जन स्वजन को बाधा पहुँचावे तो क्या आश्चर्य है? क्योकि नदी का वेग किनारे पर स्थित वृक्ष को ही गिराता है।

जहाँ लक्ष्मी, युवावस्था, सरस्वती स्थित रहती है वहाँ अलक्ष्मी और मूर्खता की नित्य वृद्धि होती है। कनक के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है? जिसके एकमात्र नाम की समानता के कारण धतूरा भी उन्मत्तता प्रदान करता है। यदि दुष्टो के अधीन श्री हो जाती है तो लोक-विनाश होने मे वही कारण होती है, जैसे अग्नि-मित्र वायु को प्रचण्ड करता है, सर्प-विष बढने पर स्पर्श करने वाले सभी को नष्ट करता है। आश्चर्य है कि धन-सम्पन्न मदाध-प्राणी देखते हुए भी नही देखते है, ओर यदि देखते है तो नि सन्देह अपना स्वार्थ ही देखते है। इस प्रकार कह कर कपिल ने क्रुद्ध हो कर अपने नेत्र द्वारा अग्नि उत्पन्न किया उसी अग्नि ने क्षण-मात्र मे सगर-पुत्रो को भस्म कर दिया। नेत्र द्वारा उत्पन्न उस विकराल अग्नि को देख कर पातालवासी अकालप्रलय समझ शोक प्रगट करते हुए करुण शब्द करने लगे।

उस अग्नि से सतप्त हो कर सर्प और राक्षसगण सागर मे कूद पडे, क्योकि सज्जन का क्रोध दु सह होता है। ॥१-९॥

इसके उपरात देवताओ के दूत ने यज्ञ मे जाकर राजा से समस्त वृतान्त निवेदन किया। उसे सुन कर सर्व-वेत्ता सगर ने "दैव ने दुष्टो को शिक्षा दी" ऐसा कह कर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया।

माता, पिता, भ्राता, पुत्र सभी अधर्म करने से शत्रु-समान होते है। समस्त लोको के विरोधी अधर्म करने वाले प्राणी को शत्रु जानना चाहिए, ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है। मुनीश्वर! पुत्र-नाश होने पर भी महाराज सगर को शोक नही हुआ, क्योकि दुराचारी का मरण सज्जनो के उत्साह का हेतु होता है। पुत्र-हीन प्राणी को यज्ञ-अधिकार नही है,

स गतस्तद्बिलद्वारे दृष्ट्वा त मुनिपुगवम् । कपिल तेजसा राशि साष्टाग प्रणनाम ह ॥१७॥
कृताजलिपुटो भूत्वा विनयेनाग्रत स्थित । उवाच शातमनसै देवदेव सनातनम् ॥१८॥

अशुमानुवाच

दौ शील्य यत्कृत ब्रह्मन्मत्पितृव्यै क्षमस्व तत् । परोपकारनिरता क्षमासारा हि साधव ॥१९॥
दुर्जनेष्वपि सत्त्वेषु दया कुर्वति साधव । नहि सहरते ज्योत्स्ना चद्रश्चाडालवेश्मन ।२०॥
बाध्यमानोऽपि सुजन सर्वेषा सुखकृद्भवेत् । ददाति परमा तुष्टि भक्ष्यमाणोऽमरै शशी ।२१॥
दारितश्छिन्न एवापि ह्यामोदेनैव चदन । सौरभ कुरुते सर्व तथैव सुजनो जन ।२२॥
क्षान्त्या च तपसाचारैस्तद्गुणज्ञा मुनीश्वरा । सजात शासित लोकास्त्वा विदु पुरुषोत्तम ।२३॥
नमो ब्रम्हन् मुने तुभ्य नमस्ते ब्रम्हमूर्तये । नमो ब्रम्हण्यशीलाय ब्रम्हध्यानपराय च ।२४॥
इति स्तुतो मुनिस्तेन प्रसन्नवदनस्तदा । वर वरय चेत्याह प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥२५॥
एवमुक्ते तु मुनिना ह्यशुमान्प्रणिपत्य तम् । प्रापयास्मत्पितॄन्ब्राम्ह लोकमित्यभ्यभाषत ॥२६॥
ततस्तम्यातिसतुष्टो मुनि प्रोवाच सादरम् । गगामानीय पौत्रस्ते नयिष्यति पितॄन्दिवम् ॥२७॥
त्वत्पौत्रेण समानीता गगा पुण्यजला नदी । कृत्वैतान्धूतपापान्वै नयिष्यति पर पदम् ।२८।
प्रापयैन हय वत्स यत स्यात्पूर्णमध्वरम् । पितामहातिक प्राप्य साश्व वृत्त न्यवेदयत् ।२९।
सगरस्तेन पशुना त यज्ञ ब्राह्मणै सह । विधाय तपसा विष्णुमाराध्याप पद हरे ॥३०॥
जज्ञे ह्यशुमत पुत्रो दिलीप इति विश्रुत । तस्माद्भगीरथो जातो यो गगामानयद्दिव ॥३१॥
भगीरथस्य तपसा तुष्टो ब्रम्हा ददौ मुने । गगा भगीरथायाथ चितयामास धारणे ॥३२॥

इस स्मृति-वाक्य का स्मरण कर उन्होने अपने पोत्र अशुमान को पुत्र-स्थान पर नियुक्त किया। तदुपरान्त सार-वेत्ता उस सगर ने विद्वानो मे श्रेष्ठ, असमजस-पुत्र को घोडा ढूढ लाने के लिए नियुक्त किया। उस बिल-द्वार से (पाताल जाकर) मुनि-श्रेष्ठ, तेजो राशि, कपिल मुनि को देख कर असमजस ने साष्टाग प्रणाम किया और सामने स्थित हो कर हाथ जोड विनयपूर्वक शात-चित्त, देवाधि-देव, सनातन भगवान् से निवेदन किया ॥१०-१८॥

अशुमान ने कहा—ब्रह्मन्! हमारे पितृव्यो ने जो कुछ दुर्व्यवहार किया हो उसे क्षमा कीजिये, क्योकि महात्मा लोग परोपकारी और क्षमाशील होते हैं। साधु लोग दुर्जन प्राणी पर भी दया करते ह, जैसे चन्द्रमा अपनी किरणो को चाडाल के घरो से अलग नही करता है। पीडित होने पर भी सज्जन लोग सभी प्राणी के लिए सुखदायी ही होते हैं, जैसे देवताओ द्वारा पान करने पर भी चन्द्रमा उन्हे परम सन्तोष-प्रदान ही करता है। जिस प्रकार छिन्न होने पर भी चन्दन अपने गन्ध द्वारा काटने वाले को सुगन्धित करता है, उसी प्रकार सज्जन लोग भी अपकारी का उपकार ही करते हैं। पुरुषोत्तम! क्षमा और तप-आचरण के ज्ञाता महर्षियो ने आपको लोक-शासनकर्ता ही माना है। ब्रह्मन! मुने! ब्रह्म मूर्ते! तुम्हे नमस्कार है, हे ब्रह्मनिष्ठ! ब्रह्म-ध्यान-निमग्न! तुम्हे हमारा नमस्कार है॥१९-२४॥

मुनि के इस प्रकार कहने पर उन्हे प्रणाम कर अशुमान ने कहा—हमारे पितरो की स्थिति ब्रह्म-लोक मे कीजिए। असमजस का निवेदन सुन महर्षि कपिल ने अत्यन्त प्रसन्न हो प्रसन्नतापूर्वक कहा कि तुम्हारा पौत्र गगा-द्वारा इन्हे स्वर्ग मे स्थित करायेगा। तुम्हारे पौत्र द्वारा आयी हुई पुण्यसलिला गगा इन लोगो के समस्त पापो को नष्ट कर परम-पद प्रदान करायेगी। वत्स! यज्ञ-पूर्ण होने के लिए इस घोडे को ले जाओ, अपने पितामह के समीप पहुँच कर असमजस ने समस्त वृत्तान्त सुनाया। ब्राह्मणो के साथ सगर ने उस घोडे के द्वारा अपना यज्ञ सम्पन्न किया और तप द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना कर उत्तम लोक प्राप्त किया। राजा अशुमान के दिलीप नामक पुत्र हुआ, दिलीप के स्वर्ग से गगा लाने वाला भगीरथ नामक पुत्र हुआ।

ततश्च शिवमाराध्य तद्वारा स्वर्णदीं भुवम् । आनीय तज्जलै स्पृष्ट्वा पूतान्निन्ये दिव पितॄन् ।।३३।।
भगीरथान्वये जात सुदासो नाम भूपति । तस्य पुत्रो मित्रसह सर्वलोकेषु विश्रुत ।।३४।।
वशिष्ठशापात्प्राप्त स सौदासो राक्षसी तनूम् । गगाविन्दु निषेकेण पुनर्मुक्तो नृपोऽभवत् ।।३५।।
इति श्री वृहन्नारदीय पुराणतो गगोत्पत्तौ अष्टमोऽध्याय ।।८।।

मुने ! भगीरथ के तप से प्रसन्न हो कर ब्रह्मा ने भगीरथ को गगा प्रदान किया। पुन गगा को धारण करने के लिए भगीरथ ने विचार किया। शिव की आराधना कर उनके द्वारा प्राप्त की हुई गगा के जल का स्पर्श करा कर उसने अपने पितरो को स्वर्ग प्राप्त कराया। उस राजा भगीरथ के सुदास नामक पुत्र हुआ, सुदास के समस्त ससार मे विख्यात मित्रसह नामक पुत्र हुआ। वशिष्ठ-शाप द्वारा राक्षस शरीर धारण करने पर भी वह सुदास-पुत्र गगा-विन्दु से सेचन करने पर उस शरीर का त्याग कर फिर राजा हुआ।।२५-३५।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे आठवाँ अध्याय समाप्त।।८।।

नवमोऽध्याय:

सनक उवाच

परकार्यं न ये मर्त्या कायेनापि धनेन वा। मनसा वचसावापि ते ज्ञेया, पापकृत्तमा: ॥१॥
अत्रेतिहास वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वत.। यत्र दानादिकाना तु लक्षण परिकीर्तितम् ॥२॥
गगामाहात्म्यसहित सर्वपापप्रणाशनम्। भगीरथस्य धर्मस्य सवाद पुण्यकारणम् ॥३॥
आसीद्भगीरथो राजा सागरान्वयसभव। शशास पृथिवीमेता सप्तद्वीपा ससागराम् ॥४॥
सर्वधर्मरतो नित्य सत्यसध प्रतापवान्। कदर्पसदृशो रूपे यायजूको विचक्षण ॥५॥
प्रालेयाद्रिसमा धैर्ये धर्मे धर्मसमो नृप'। स॰लक्षणसपन्न. सर्वशास्त्रार्थपारग ॥६॥
सर्वसपत्समायुक्त' सर्वानंदकरो मुने। आतिथ्यप्रयतो नित्य वासुदेवार्चने रत: ॥७॥
पराक्रमी गुणनिधि र्मात्र कारुणिक सुधी.। एतादृश त राजान ज्ञात्वा हृष्टे भगीरथम् ॥८॥
धर्मराजो द्विजश्रेष्ठ कदाचिद्द्रष्टुमागत'। समागत धर्मराजमर्हयामास भूपति. ॥९॥
शास्त्रदृष्टेन विधिना धर्म' प्रीत उवाच तम्।

धर्मराज उवाच

राजन्धर्मविदा श्रेष्ठ प्रसिद्धोऽस्मि जगत्त्रये। धर्मराजोऽथ कीर्ति ते श्रुत्वा त्वा द्रष्टुमागता' ॥१०॥
सन्मार्गनिरत सत्य सर्वभूतहिते रतम्। द्रष्टुमिच्छति विबुधास्तवोत्कृष्टगुणप्रिया: ॥११॥
कीर्तिर्नीतिश्च सपत्तिर्वर्तते यत्र भूपते। वसति तत्र नियत गुणास्सतश्च देवता. ॥१२॥
अहो राजन्महाभाग शोभन चरित तव। सर्वभूतहितत्वादि मादृशामपि दुर्लभम् ॥१३॥
यदर्थमहमायातस्त्वत्समीप जनाधिप। तत्ते वक्ष्यामि सुमते सावधान निशामय ॥१४॥

सनक ने कहा—जो लोग मन, वाणी, शरीर और धन द्वारा परोपकार नही करते है उन्हे पापी जानना चाहिए। नारद ! दान आदि लक्षण विषयक एक इतिहास मै तुमसे कह रहा हूँ सुनो ! समस्त पाप-विनाशक गगा-माहात्म्य तथा भगीरथ-धर्म-सवाद भी उसी मे सबद्ध है।

सगर-कुल मे भगीरथ नामक एक राजा थे, सातो सागर और सातो द्वीपो समेत समस्त पृथिवी पर उनका शासन था। मुने ! उन्हे निखिल धर्म-प्रेमी, सत्य-प्रतिज्ञ, प्रतापी, काम के समान सुन्दर, याज्ञिक, बुद्धिमान, हिमालय के समान धैर्यशील, धर्मराज के समान धर्म-स्वरूप, समस्त लक्षण-सपन्न, अखिल शास्त्र के अर्थ-ज्ञाता, समस्त समृद्धिशाली,प्राणी मात्र को आनन्द प्रदान करने वाल, नित्य अतिथि सेवी भगवान् वासुदेव की अर्चना मे निमग्न, पराक्रमी, गुणनिधि, कारुणिक, विद्वान् जान कर परम सन्तुष्ट हो एक बार धर्मराज ब्राह्मणरूप धारण कर दर्शन के निमित्त उनके यहाँ उपस्थित हुए। राजा ने धर्मराज की पूजा की। प्रसन्न हो कर धर्मराज ने उनसे शास्त्र सम्मत वचन निवेदन किया ॥१-९॥

धर्मराज ने कहा—राजन् ! धार्मिको मे श्रेष्ठ ! तीनो लोको मे आपकी ख्याति है, अत कीर्ति सुन कर देखने के लिए धर्मराज का आगमन हुआ है। सन्मार्गगामी, सत्य-भाषी, समस्त जीवो के हितैषी तुम्हारे गुणो-द्वारा आकृष्ट हो कर देवता लोग भी तुम्हारा दर्शन चाहते है। राजन् ! जिस स्थान पर कीर्ति, नीति सथा सपत्ति का वास रहता है वहाँ पर निश्चय ही देवता, समस्त गुण और महात्मा लोग रहते है। राजन् ! महाभाग ! आपका चरित्र अति सुन्दर है क्योकि समस्त जीवो का हितैषीपन गुण तो हम लोगो मे भी दुर्लभ है। नृप ! तुम्हारे यहाँ जिस प्रयोजन के लिए मै आया हूँ, सुमते ! उसे कह रहा हूँ, सावधान हो कर सुनो। राजन् ! आत्मघाती, पापी, कपिल के कोप से जले हुए तुम्हारे पितामह

आत्मघातकपाप्मानो दग्धा· कपिलकोपत·। वसति नरके ते तु राजस्तव पितामहा· ॥१५॥
तानुद्धर महाभाग गगानयनकर्मणा। गगा सर्वाणि पापानि नाशयत्येव भूपते ॥१६॥
केशास्थिनखदताश्च भस्मापि नृपसत्तम। नयति विष्णुसदन स्पृष्ट्वा गागेन वारिणा ॥१७॥
यस्यास्थि भस्म वा राजन् गगाया क्षिप्यते नरै। स सर्व पापनिर्मुक्त प्रयाति भवन हरे ॥१८॥
यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि तव भूपते। तानि सर्वाणि नश्यति गगाबिद्वभिषेचनात् ॥१९॥

सनक उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल महाराज भगीरथम्। धर्मात्मान धर्मराजः सद्यश्चातर्दधे तदा ॥२०॥
स तु राजा महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग। निक्षिप्य पृथिवी सर्वा सचिवेपु ययौ वनम् ॥२१॥
तुहिनाद्रौ ततो गत्वा नरनारायणाश्रमात्। पश्चिमे तुहिनाक्राते शृगे पोडशयोजने ॥२२॥
तपस्तप्त्वानयामास गगा त्रैलोक्यपावनीम् ॥२३॥

नारद उवाच

हिमवद्गिरिमासाद्य कि चकार महीपति·। कथमानीतवान्गगामेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥२४॥

सनक उवाच

भगीरथो महाराजो जटाचीरधरो मुने। गच्छन्हिमाद्रि तपसे प्राप्तो गोदावरीतटम् ॥२५॥
तत्रापश्यन्महारण्ये भृगोराश्रममुत्तमम्। कृष्णसारसमाकीर्ण मातगगणसेवितम् ॥२६॥
भ्रमद्भ्रमरसपुष्ट कूजद्विहगसकुलम्। व्रजद्वराहनिकर चमरीपुच्छवीजितम् ॥२७॥
नृत्यन्मयूरनिकर सारगादिनिषेवितम्। प्रवर्द्धितमहावृक्ष मुनिकन्याभिरादरात् ॥२८॥
शालतालतमालाढ्य नूनहितालमडितम्। मालती यूथिकाकुदचपकाश्वत्थभूषितम् ॥२९॥

लोग नरकवास कर रहे है। महाभाग ! गगा को लाकर उन्ही द्वारा उनका उद्धार करो। राजन् ! गगा समस्त पापो का नाश करती है । नृप सत्तम ! केश, नख, अस्थि, दात, भस्म आदि मे से किसी का भी गगा-जल के साथ स्पर्श होने से जीवत विष्णु-भवन पहुँचता है । राजन् ! जिस प्राणी की अस्थि या भस्म गगा मे डाली जाती है वह समस्त पापो से मुक्त हो कर विष्णु-भवन को प्रस्थान करता है । भूपते ! मेरे कहे हुए ये समस्त पाप गगा-जल-विदु से अभिषिक्त होने पर नष्ट हो जाते है ।

सनक ने कहा—मुनि शार्दूल ! महाराज भगीरथ से इस प्रकार कह कर धर्मराज शीघ्र अन्तर्धान हो गए। समस्त शास्त्र-अर्थ-पारगामी, महाबुद्धिमान् राजा ने पृथिवी (राज्य) का समस्त भार मत्रियो पर रख कर वन को प्रस्थान किय और हिमालय पर्वत पर जा कर नर-नारायण के पश्चिम सोलह योजन वाले हिमालय-शिखर पर तप कर के तीनो लोको को पवित्र करने वाली गगा को प्राप्त किया। ॥१०-२३॥

नारद ने कहा—राजा भगीरथ ने हिमालय पर जा कर क्या किया ? और किस प्रकार गगा को पृथ्वीतल पर अवतारित किया ? इसे बताइये ।

सनक ने कहा—मुनिवर ! इस प्रकार जटा-चीर धारण कर राजा भगीरथ तपस्या के लिए हिमालय जाते हुए गोदावरी के तट पर पहुँचे और वहाँ पर उन्होने एक अति घोर वन मे मृग-गण और हाथियो द्वारा सेवित महर्षि भृगु का आश्रम देखा। उस आश्रम मे चारो ओर भ्रमर गुजार कर रहे थे, पक्षियो का मनोरम कलरव हो रहा था, सुअर दौड रहे थे, चमरी गाये पूँछ हिलाती हुई इधर उधर घूम रही थी। मोर-गण नाच रहे थे, सारग आदि पक्षी बोल रहे थे, मुनि की कन्याओ द्वारा सादर सीच कर बढाये हुए बडे बडे वृक्ष स्थित थे, साखू ताड और तमाल के वृक्षो की अधिकता थी, शहतूत, हिताल, चमेली, जूही, कनेर चम्पा और पीपल के वृक्षो से वह आश्रम अधिक सुशोभित हो रहा था, चारो ओर सुन्दर फूल खिले हुए थे, महर्षिगण विराजमान थे, उच्च स्वर से वेद-शास्त्र की ध्वनि हो रही थी, महर्षि-भृगु के ऐसे रमणीक

उत्फुल्लकुसुमोपेत ऋषिसघनिषेवितम् । वेदशास्त्रमहाघोषमाश्रम प्राविशद्भृगो ॥३०॥
गृणत परम ब्रह्म वृत शिष्यगणैर्मुनिम् । तेजसा सूर्यसदृश भृगु तत्र ददृश स ॥३१॥
प्रणनामाथ विप्रेंद्र पादसग्रहणादिना । आतिथ्य भृगुरप्यस्य चक्रे सन्मानपूर्वकम् ॥३२॥
कृतातिथ्यक्रियो राजा भृगुणा परमर्षिणा । उवाच प्राजलि भूत्वा विनयान्मुनिपुगवम् ॥३३॥

भगीरथ उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । पृच्छामि भवभीतोऽह नृणामुद्धारकारणम् ॥३४॥
भगवास्तुष्यते येन कर्मणा मुनिसत्तम । तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ अनुग्राह्योऽस्मि ते सदा ॥३५॥

भृगुरुवाच

राजस्तवेप्सित ज्ञान त्वं हि पुण्यवता वर । अन्यथा स्वकुल सर्व कथमुद्धर्तुमर्हसि ॥३६॥
यो वा को वापि भूपाल स्वकुल शुभकर्मणा । उद्धर्तुकामस्त विद्यान्नतररूपधर हरिम् ॥३७॥
कर्मणा येन देवेशो नृणामिष्टफलप्रद । तत्प्रवक्ष्यामि राजेन्द्र शृणुष्व सुसमाहित ॥३८॥
भव सत्यपरो राजन्नहिसानिरतस्तथा । सर्वभूतहितो नित्य मानृत वद वै क्वचित् ॥३९॥
त्यज दुर्जनससर्ग भज साधुसमागमम् । कुरु पुण्यमहोरात्र स्मर विष्णु सनातनम् ॥४०॥
कुरु पूजा महाविष्णोर्याहि शातिमनुत्तमाम् । द्वादशाष्टाक्षर मत्र जप श्रेयो भविष्यति ॥४१॥

भगीरथ उवाच

सत्य तु कीदृश प्रोक्त सर्वभूतहित मुने । अनृत कीदृश प्रोक्त दुर्जनाश्चापि कीदृशा ॥४२॥
साधव कीदृशा प्रोक्तास्तथा पुण्य च कीदृशम् । स्मर्तव्यश्च कथ विष्णुस्तस्य पूजा च कीदृशी॥४३॥

आश्रम मे राजा ने प्रवेश किया ओर वहाँ शिष्यगणो के साथ मे परब्रह्म की चर्चा मे निरत सूर्य के समान तेजस्वी महर्षि भृगु को देखा ॥२४-३१॥

वहाँ पहुँच कर राजा ने उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ का चरण स्पर्श कर प्रणाम किया, भृगु ने भी सम्मानपूर्वक राजा का यथोचित अतिथि सत्कार किया। परम ऋषि भृगु के अतिथि-सत्कार से सत्कृत हो कर राजा ने हाथ जोड कर विनय-पूर्वक, मुनि-श्रेष्ठ भृगु से कहना आरभ किया।

भगीरथ ने कहा—भगवन्! समस्त धर्मो के जानने वाले! समस्त शास्त्रो मे कुशल! ससार से डरा हुआ मै मनुष्यों के उद्धार का कारण पूछ रहा हू। मुनिवर! यदि आप मुझ पर अनुग्रह करना चाहते हे तो जिस कर्म द्वारा भगवान् सदा प्रसन्न रहते है उसे मुझसे कहिये।

भृगु ने कहा—राजन! तुम्हारे मनोरथ को मैंने जान लिया, तुम पुण्यवान् लोगो मे श्रेष्ठ हो, नही तो अपने कुल के उद्धार का विचार क्यो करते? राजन्! जो कोई शुभ-कर्म द्वारा अपने कुल के उद्धार की इच्छा करता है, मनुष्य-रूप धारण किए हुए उसे भगवान् समझना चाहिए। राजेन्द्र! जिस कर्म द्वारा प्रसन्न हो कर देवाधीश भगवान् मनुष्यो का मनोरथ सफल करते है, उसे मे कहता हूँ, तुम सावधान हो कर सुनो। राजन्! सत्य-परायण हो, हिसा की इच्छा कभी न करो, समस्त जीवो के हितैषी बनो, कही पर कभी भी झूठ न बोलो, दुष्टो का साथ मत करो, सज्जनो की सगति करो, पुण्य करो, दिन रात सनातन विष्णु भगवान् का स्मरण करो। महाविष्ण की पूजा करो, जिससे उत्तम शान्ति मिले, और द्वादशाक्षर या अष्टाक्षर मत्र का जप करो अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा ॥३२-४१॥

भगीरथ ने कहा—मुने! सत्य किसे कहते है, समस्त जीवो का कल्याण किस प्रकार किया जाता है, असत्य का क्या लक्षण है, दुर्जन कौन है। महात्माओ का क्या लक्षण है, किसे पुण्य कहते है, विष्णु भगवान का स्मरण कैसे किया

शातिश्च कीदृशी प्रोक्ता को मत्रोऽष्टाक्षरो मुने। को वाद्वादशवर्णश्च मुने तत्त्वार्थकोविद ॥४४॥
कृपा कृत्वा मयि परा सर्व व्याख्यातु महसि।

भृगुरुवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ तव बुद्धिरनुत्तमा ।४५।
यत्पृष्टोऽह त्वया भूप तत्सर्व प्रवदामि ते। यथाथकथन यत्तत्सत्यमाहुर्विपश्चित ॥४६॥
धर्माविरोधतो वाच्य तद्धि धर्मपरायणै। देशकालादिविज्ञाय स्वयमस्यविरोधत ॥४७॥
यद्वच॰ प्रोच्यते सद्भिस्त त्सत्यमभिधीयते। सर्वेपामेव जन्तूनामक्लेशजनन हि तत ॥४८॥
अहिसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी। कर्मकार्यसहायत्वमकार्यपरिपथिता ॥४९॥
सर्वलोकहितत्त्व वै प्रोच्यते धर्मकोविदै। इच्छानुवृत्तकथन धर्माधर्मविवेकिन ॥५०॥
अनृत तद्धि विज्ञेय सवश्रेयोविरोधि तत्। ये लोके द्वेषिणो मूर्खा कुमार्गरतबुद्धय॰ ॥५१॥
ते राजन् दुर्जना ज्ञेया॰ सर्वधर्मवहिष्कृता। धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिण ॥५२॥
सर्वलोकहितासक्ता साधव परिकीर्तिता। हरिभक्तिकर यत्तत्सद्भिश्च परिरजितम् ॥५३॥
आत्मन प्रीतिजनक तत्पुण्य परिकीर्तितम्। सर्व जगदिद विष्णु विष्णु सर्वस्य कारणम् ॥५४॥
अह च विष्णु र्यज्ज्ञान तद्विष्णुस्मरण विदु। सर्वदेवमयो विष्णु र्विधिना पूजयामि तम् ॥५५॥
इति या भवति श्रद्धा सा तद्भक्ति प्रकीर्तिता। सर्वभूतमयोविष्णु परिपूर्ण॰ सनातन॰ ॥५६॥
इत्यभेदेन या बुद्धि सा मता सा प्रकीर्तिता। समता शत्रुमित्रेषु वशित्व च तथा नृप ॥५७॥
यदृच्छालाभसतुष्टि सा शाति परिकीर्तिता। एते सर्वे समाख्यातास्तप सिद्धिप्रदा नृणाम् ॥५८॥
समस्तपापराशीना तरसा नाशहेतव। अष्टाक्षर महामत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥५९॥
वक्ष्यामि तव राजेन्द्र पुरुपार्थैकसाधनम्। विष्णो प्रियकर चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥६०॥
नमोनारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम्। नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम् ॥६१॥
प्रणवाद्य महाराज द्वादशार्णमुदाहृतम्। द्वयो॰ सम फल राजन्नष्टद्वादशवर्णयो ॥६२॥

जाता है और उनकी पूजा किस भाँति होती है, मुने! शाति का क्या स्वरूप है, अष्टाक्षर मत्र कौन है, तत्त्व जानने वाले पडित! मुने! द्वादशाक्षर मत्र का वर्णन भी कृपा कर मुझसे करिये ॥४२-४५॥

भृगु ने कहा—महा बुद्धिमान्! धन्य हो, धन्य हो! तुम्हारी बुद्धि अति उत्तम है। राजन्! जो कुछ तुमने पूछा है मै विस्तारपूर्वक सब कह रहा हूँ। विद्वानो ने यथार्थ कहने को सत्य कहा है, धर्म-परायण मनुष्य को धर्म के प्रतिकूल न कहना चाहिए, देश और काल का ज्ञान रखते हुए धर्म के अनुकूल जो वाणी विद्वानो ने कही है, उसे सत्य कहते है वह समस्त जीवो को सुखी बनाती है। नृप! अच्छे कार्यो की सहायता, बुरे कार्यो के त्याग को अहिसा कहते है, उससे समस्त कामनाये सफल होती है। धर्म और अधर्म का ज्ञान रखने वाले प्राणी के इच्छानुकूल कहने को धार्मिक पडित लोग सभी जीवो का कल्याणकारी मानते है। समस्त कल्याण के विरोधी को असत्य जानो, ससार मे अकारण द्वेष करने वाले मूर्ख, कुमार्गगामी को दुर्जन जानो। राजन! उन्हे समस्त धर्मो से बहिष्कृत समझो। धर्म और अधर्म का ज्ञान रखते हुए वेद-मार्ग का अनुसरण करने वाले समस्त लोको के हितैषी को साधु कहते है, जो भगवद्भक्ति करने वाला हो, सज्जनो का मनोरजन करने वाला हो, तथा आत्मा को प्रसन्न करने वाला हो उसे पुण्य कहते है। यह समस्त ससार विष्णुस्वरूप है, भगवान् विष्णु ही एकमात्र समस्त चराचर जगत् के कारण है और मै भी विष्णुस्वरूप हूँ, ऐसे निर्मल-ज्ञान को विष्णु स्मरण कहा गया है। विष्णु भगवान् सर्वदेव मय है। मै उनकी विधिवत् पूजा करूँगा, इस प्रकार की उत्पन्न श्रद्धा को भक्ति कहते है। ससार के समस्त प्राणी विष्णुस्वरूप है, परिपूर्ण और सनातन है। ऐसी भेदरहित बुद्धि का नाम राजन्! शत्रु

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च साम्यमुद्दिष्टमेतयो । शखचक्रधर शात नारायणमनामयम् ।।६३।।
लक्ष्मीसश्रितवामाक तथा भयकर प्रभुम् । किरीटकु डलधर नानामडलशोभितम् ।।६४।।
भ्राजत्कौस्तुभमालाढ्य श्रीवत्साकितवक्षसम् । पीताम्बरधर देव सुरासुरनमस्कृतम् ।।६५।।
ध्यायेदनादिनिधन सर्वकामफलप्रदम् । अतर्यामी ज्ञानरूपी परिपूर्ण सनातन ६६।।
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणतो गगात्पत्तौ नवमोऽध्याय ।।९।।

ओर मित्र मे समता समान होनी चाहिए, सर्वदा इन्द्रियो को अपने अधीन रक्खो। जो कुछ मिल जाय, उसमे सन्तोष करो यही शाति कहलाती है, ये सभी मनुष्यो का तप सिद्ध करते है। अष्टाक्षर मत्र महामत्र है और समस्त पाप समूहो के नाश का कारण है। राजन् ! यह पुरुषार्थ का एकमात्र साधन है, भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला तथा समस्त सिद्धि प्रदान करने वाला है। मे तुमसे कह रहा हूँ 'नमो नारायणाय' यही उसका स्वरूप है। आदि मे प्रणव (ओ) लगा कर जप करना चाहिए। 'नमो भगवते' कह कर 'वासुदेवाय' का उच्चारण करे। महाराज ! इसके आदि मे भी प्रणव (ओ) का प्रयोग करने से यह 'ओ नमो भगवते वासुदेवाय' द्वादशाक्षर कहा जाता है। राजन् ! अष्टाक्षर ओर द्वादशाक्षर मत्र का समान फल है। प्रवृत्तिमार्ग ओर निवृत्तिमार्ग मे भी इसकी समानता है। शख-चक्र-धारी, शात, अनामय, वाम भाग मे लक्ष्मी से सुशोभित, अभय करने वाले, व्यापक, किरीट ओर कुण्डल धारण किये और समस्त आभूषणो से विभूपित, कौस्तुभ मणि युक्त सुन्दर माला पहिने, वक्ष स्थल मे श्रीवत्स धारण करन वाले, देवता ओर राक्षसो से वन्दित, जन्म-मरण रहित, समस्त कामनाओ को सफल करने वाले, अन्तर्यामी, ज्ञान-स्वरूप, परिपूर्ण, सनातन भगवान् के ऐसे मनोहर स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।।४६-६६।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे नवाँ अध्याय समाप्त।।९।।

दशमोऽध्यायः

भृगुरुवाच

एतत्सर्वं समाख्यात यत्तु पृष्ट त्वया नृप । स्वस्ति तेऽस्तु तप सिद्धि गच्छ लब्धु यथासुखम् ॥१॥
एवमुक्तो महीपालो भृगुणा परमर्षिणा । परमा प्रीतिमापन्न प्रपेदे तपसे वनम् ॥२॥
हिमवद्गिरिमासाद्य पुण्यदेशे मनोहरे । नादेश्वरे महाक्षेत्रे तपस्तेपेऽतिदुश्चरम् ॥३॥
राजा त्रिपवस्नायी कदमूलफलाशन । कृतातिथ्यर्हण श्चापि नित्य होमपरायण ॥४॥
सर्वभूतहित शातो नारायणपरायण । पत्रै पुष्पै फलै स्तोयैस्त्रिकाल हरिपूजक ॥५॥
एव बहुतिथ काल नीत्वा चात्यतधैर्यवान् । ध्यायन्नारायण देव शीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥६॥
प्राणायामपरो भूत्वा राजा परमधार्मिक । निरुच्छ्वास तपस्तप्तु तत समुपचक्रमे ॥७॥
ध्यायन्नारायण देवमनतमपराजितम् । षष्टिवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासपरोऽभवत् ॥८॥
तस्य नासापुटाद्राज्ञो वह्निर्जज्ञे भयकर । त दृष्ट्वा देवता सर्वे वित्रस्ता वह्नितापिता ॥९॥
अभिजग्मुर्महाविष्णु यत्रास्ते जगतापति । क्षीरोदस्योत्तर तीर सप्राप्य त्रिदशेश्वरा ॥१०॥
स्तुवन्देवदेवेशशरणागत पालकम् ।

देवा ऊचु

नता स्म विष्णु जगदेकनाथ स्मरत्समस्तार्तिहर परेशम् ॥११॥
स्वभावशुद्ध परिपूर्णभाव वदति यज्ज्ञानतनु च तज्ज्ञा ।
ध्येय सदा योगिवरैर्महात्मा स्वेच्छाशरीरै कृतदेवकार्यः ॥१२॥

भृगु ने कहा—राजन् ! तुमने जो कुछ पूछा था, मैंने उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया, तुम्हारा कल्याण हो, अब जा कर तप-सिद्ध करो जिससे सर्वदा सुखी बने रहो। महर्षि भृगु के इस प्रकार कहने पर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और तप करने के लिए वन को प्रस्थान किया। हिमालय पर्वत पर पहुँच कर राजा ने पवित्र और सुन्दर नादेश्वर नामक अतिविशाल क्षेत्र मे अत्यन्त घोर तप करना आरभ किया। राजा तीनो काल स्नान करते थे, कद-मूल-फल का भोजन करते थे, अतिथि-सत्कार और नित्य हवन करते थे, सर्व भतो के हितैषी तथा शात हो कर एकमात्र नारायण म लीन हो पत्र, पुष्प, फल और जल द्वारा तीनो काल भगवान् की पूजा करते थे ॥१-५॥

इस प्रकार बहुत काल व्यतीत कर अत्यन्त धैर्यशाली राजा नारायण देव का ध्यान करते हुए केवल सूखे ओर पुराने पत्तो का भोजन करने लगे। तदुपरान्त धर्मधुरन्धर उस राजा ने प्राणायाम करते हुए नि श्वास को सर्वदा के लिए रोक कर तप करना आरभ किया। इस प्रकार अजेय, अनन्त भगवान् का ध्यान करते हुए साठ हजार वर्ष तक नि श्वास का अवरोध किया। तदनन्तर राजा के नासिका-छिद्र से भयकर अग्नि निकली। उसे देख कर विस्मित तथा सतप्त देवता लोग जगत्पति महाविष्णु जहाँ विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। क्षीर-सागर के उत्तर तट पर जा कर देवताओ ने शरणागत-रक्षक और देवाधीश भगवान् की स्तुति करना आरभ किया ॥६-१०॥

देवताओ ने कहा—ससार के एकमात्र स्वामी विष्णु भगवान् को हम नमस्कार करते है, जो स्मरणमात्र से समस्त दु खो का अपहरण करते है, और पराधीश रूप है। ज्ञानी लोग आपको अत्यन्त शुद्ध और पूर्णस्वरूप कहते है, बडे-बडे

जगत्स्वरूपो जगदादिनाथस्तस्मै नता स्म पुरुषोत्तमाय ।
यन्नामसंकीर्त्तनतोऽखिलानि समस्तपापानि लय प्रयान्ति ॥१३॥
तमीशमीड्य पुरुष पुराण नता स्म विष्णु पुरुषार्थसिद्ध्यै ।
यत्तेजसा भाति दिवाकराद्या नातिक्रमत्यस्य कदापि शिक्षा ॥१४॥
कालात्मक तं त्रिदशाधिनाथ नमामहे वै पुरुषार्थरूपम् ।
जगत्करोत्यब्जभवोऽतिरुद्र पुनाति लोकाञ्छ्रुतिभिश्च विप्रा ॥१५॥
तमादिदेव गुणसन्निधान सर्वोपदेष्टारमिता शरण्यम् ।
वर वरेण्य मधुकैटभारि सुरासुराभ्यर्थितपादपीठम् ॥१६॥
सद्भक्तसकल्पितसिद्धिहेतु ज्ञानैकवेद्य प्रणता स्म देवम् ।
अनादिमध्यातमज परेशमनाद्यविद्याख्यतमोविनाशम् ॥१७॥
सच्चित्परानदघनस्वरूप रूपादिहीन प्रणता स्म देवम् ।
नारायण विष्णुमनतमीश पीताम्बर पद्मभवादिसेव्यम् ॥१८॥
यज्ञप्रिय यज्ञकर विशुद्ध नता स्म सर्वोत्तममव्यय तम् ।
इति स्तुतो महाविष्णु र्देवैरिद्रादिभिस्तदा ॥१९॥
चरित तस्य राजर्षेर्देवाना सन्यवेदयत् । ततो देवान् समाश्वास्य दत्त्वाभयमनजन ॥२०॥
जगाम यत्र राजर्षिस्तपस्तपति नारद । शखचक्रधरो देव सच्चिदानदविग्रह ॥२१॥
प्रत्यक्षता मगात्तस्य राज्ञ सर्वजद्गुरुः । त दृष्ट्वा पुडरीकाक्ष माभाषितदिगतरम् ॥२२॥
अतसीपुष्पसकाश स्फुरत्कुडलमडितम् । स्निग्धकुतलवक्त्राब्ज विभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलम् ॥२३॥

योगी आपका सर्वदा ध्यान करते हें, आप अपनी इच्छा से शरीर धारण कर देवताओ का कार्य करते ह। आप जगत्स्वरूप हैं और जगत् के आदि कारण है, ऐसे पुरुषोत्तम को हम नमस्कार करते है, जिनके नाम का सकीर्तन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हे। जिनके तेज से सूर्य आदि प्रकाशित होते ह, जिनके वाक्यो का उल्लघन कोई नही कर सकता है, उन पुराण-पुरुष भगवान् विष्णु को अपनी अर्थसिद्धि के लिए हम नमस्कार करते हैं। जो ब्रह्मा होकर जगत् का सर्जन करते है, रुद्र रूप से जगत् का सहार करते ह और ब्राह्मण रूप से श्रुतियो द्वारा लोक को पवित्र करते हैं, ऐसे कालात्मक, देवाधीश तथा पुरुषार्थ रूप विष्णु को हम नमस्कार करते है। जो आदि दव है, गुणनिधि है, सर्वोपदेष्टा है, शरण लेने के योग्य है, सुन्दरो से सुन्दर है मधु-कैटभ का सहार करने वाले है, देवता और राक्षस जिनके चरण-कमल की पूजा करते है, जो आदि, मध्य तथा अत रहित है, अजन्मा हे, पराधीश है अविद्या रूपी अधकार का नाश करते है, सच्चिदानन्द घनस्वरूप है और रूपादिहीन भी है, उन्हे हम प्रणाम करते है। जो नारायण, विष्णु, अनत, सर्वेश्वर, पीताम्बरधारी है, ब्रह्मादिक देवता जिनकी सेवा करते हे, उन यज्ञ-प्रिय यज्ञकर्त्ता, अत्यन्त विशुद्ध, सर्वोत्तम, अव्यय भगवान् को हम नमस्कार करते है। इद्र आदि देवताओ ने इस प्रकार महाविष्णु की आराधना की॥११-१९॥

तदुपरान्त निरजन भगवान् ने राजर्षि भगीरथ का चरित्र देवताओ से कह कर उन्हे धैर्य और अभय प्रदान किया। नारद जी! जहाँ राजर्षि भगीरथ तप कर रहे थे वहाँ शख-चक्रधारी भगवान् सच्चिदानन्द जगद्गुरु पहुँचे।

कमल के समान नेत्र वालेअपने प्रकाश से दसो दिशाओ को प्रकाशित करने वाले, अलसी के पुष्प के समान श्यामल रग तथा चीकने और कोमल केशो से शोभायमान थे, कमल के समान उनका मुख अति सुन्दर था, चमकते हुए मुकुट की किरणो द्वारा वे उज्ज्वल दिखाई पड़ रहे थे, श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि से सुशोभित थे, वनमाला से विभूषित

श्रीवत्सकौस्तुभधर वनमालाविभूषितम् । दीर्घबाहु मुदाराग लोकेशार्चितपकजम् ।।२४।।
ननाम दडवद्भूमौ भूपतिर्नम्रकधर । अत्यतहर्षसपूर्ण सरोमाच सगद्गद ।।२५।।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति श्रीकृष्णेति समुच्चरन् । तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा ह्यतर्यामी जगद्गुरु: ।।२६।।
उवाच कृपयाविष्टोभगवान्भूतभावन ।

श्रीभगवानुवाच

भगीरथ महाभाग तवाभीष्ट भविष्यति ।।२७।।
आगमिष्यति मल्लोक तव पूर्वपितामहा । मम मूर्त्यन्तर शम्भु राजन्स्तोत्रै स्वशक्तित ।।२८।।
स्तुहि ते सकल काम स वै सद्य करिष्यति । यस्तु जग्राह शशिन शरण समुपागतम् ।।२९।।
तस्मादाराधयेशान स्तोत्रै स्तुत्य सुखप्रदम् । अनादिनिधनो देव सर्वकामफलप्रद ।।३०।।
त्वया सपूजितो राजन् सद्य श्रेयो विधास्यति । इत्युक्त्वा देवदेवेशो जगता पतिरच्युत ।।३१।।
अतर्दधे मुनिश्रेष्ठ उत्तस्थौ सोऽपि भूपति । किमिद स्वप्न आहोस्वित्सत्य साक्षाद्द्विजोत्तम ।।३२।।
भूपति र्विस्मय प्राप्त कि करोमीति विस्मित । अथातरिक्षे वागुच्चै प्राह त भ्रातचेतसम् ।।३३।।
सत्यमेतदिति व्यक्त न चिता कर्तुमर्हसि । तन्निशम्यावनीपाल ईशान सर्वकारणम् ।।३४।।
समस्तदेवताराजमस्तौपीद्भक्तितत्पर । प्रणमामि जगन्नाथ प्रणतार्तिप्रणाशनम् ।।३५।।
प्रमाणागोचर देवमीशान प्रणयात्मकम् । जगद्रूपमज नित्य सर्गस्थित्यतकारणम् ।।३६।।
विश्वरूप विरूपाक्ष प्रणतोऽस्म्युग्ररेतसम् । आदिमध्यातरहितमनतमजमव्ययम् ।। ३७।।

थे, विशाल भुजाये थी, उदार मनोहर अग था, लोकपति गण उनके चरण-कमलो की पूजा करते थे, ऐसे मनोहर रूप धारी भगवान् को देख कर राजा ने शिर को झुकाये भूमि मे पट कर दण्डवत् किया। और अत्यन्त हर्षित तथा रोमाचित गद्गद वाणी द्वारा श्री कृष्ण ! श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! इस प्रकार उच्च स्वर से उच्चारण करने लगे। जगद्गुरु, अन्तर्यामी, जीवो को उत्पन्न करने वाले भगवान् ने प्रसन्न हो कर कृपालु-भाव से कहा।।२०-२६।।

श्री भगवान् ने कहा—महाभाग भगीरथ ! तुम्हारा मनोरथ सफल होगा, तुम्हारे (पूर्वज) पितामह लोग मेरे लोक मे निवास करेगे, किन्तु राजन् ! अपनी शक्ति के अनुसार स्तोत्र द्वारा श्री शकर जी की आराधना करो ? वे मेरी दूसरी मूर्ति है, तुम्हारे समस्त मनोरथ को वे शीघ्र सफल करेगे, जिसने शरण मे आये हुए चन्द्रमा को उत्तम स्थान प्रदान किया है, ऐसे शकर देव की मनोहर स्तोत्रो द्वारा तुम आराधना करो। राजन् ! जन्म-मरण रहित तथा समस्त कामनाओ को सफल करने वाले (शिव) देव तुम्हारे द्वारा पूजित होने पर शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण करेगे। मुनिश्रेष्ठ ! देवाधीश्वर, जगन्नाथ, अच्युत भगवान् इस प्रकार कह कर वही अन्तर्धान हो गए। तदुपरान्त राजा भगीरथ पृथ्वी से उठे और विचार करने लगे कि यह स्वप्न है या वस्तुत सत्य है।

ब्राह्मणश्रेष्ठ ! राजा को महान् आश्चर्य हुआ, विस्मित हो कर कहने लगे कि मै क्या करूँ ? उसी समय भ्रात चित्त राजा से आकाशवाणी ने कहा—राजन् ! यह सब सत्य है इसमे किसी प्रकार की चिन्ता न करो इसे सुन कर राजा ने समस्त जगत के एकमात्र कारण, देवाधीश शकर देव की आराधना भक्तिपूर्वक करना आरभ किया।।२७-३४।।

भगीरथ ने कहा—भक्तो के समस्त दु खो का नाश करने वाले जगत्पति को मै नमस्कार करता हूँ, अनुमानादि प्रमाणो से अगोचर, प्रणव रूप, जगद्रूप, सर्जन, पालन और विनाश करने वाले अजन्मा, ईशान देव, उग्र तजधारी विश्व-रूप विरूपाक्ष को मै नमस्कार करता हूँ। जो आदि, मध्य, अत रहित है, अनत है, अजन्मा है, अव्यय है, ऐसा जिन्हे महान योगी लोग समझते है उन पुष्टिवर्धन भगवान् की मै वन्दना करता हूँ। लोकाधीश्वर, अपनी माया द्वारा ससार को मोहित करने

समामनति योगीद्रास्त वन्दे पुष्टिवर्धनम् । नमोलोकाधिनाथाय वचते परिवचते ॥३८॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय पशूना पतये नम । नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टाना पतये नम ॥३९॥
नम कल्पप्रकल्पाय भूताना पतये नम । नम पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नम ॥४०॥
नम कपालहस्ताय पाशमुद्गरधारिणे । नमस्ते सर्वभूताय घटहस्ताय ते नम ॥४१॥
नम पचास्यदेवाय क्षेत्राणा पतये नम । नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ॥४२॥
अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने । नमोगणाधिदेवाय गणाना पतये नम ॥४३॥
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यपतये नम । हिरण्यरेतसे तुभ्य नमो हिरण्यबाहवे ॥४४॥
नमो ध्यानस्वरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे । नमस्ते ध्यानसस्थाय ध्यानगम्याय ते नम ॥४५॥
येनेद विश्वमखिल चाराचरविराजितम् । वर्षेवाभ्रेण जनित प्रधानपुरुषात्मना ॥४६॥
स्वप्रकाश महात्मान पर ज्योति सनातनम् । यमामनति तत्त्वज्ञा सवितार नृचक्षुषाम् ॥४७॥
उमाकात नन्दिकेश नीलकठ सदाशिवम् । मृत्युजय महादेव परात्परतर विभुम् ॥४८॥
परे शब्दे ब्रह्मरूप त वदेऽखिलकारणम् । कपर्दिने नमस्तुभ्य सद्योजाताय वै नम ॥४९॥
भवोद्भवाय शुद्धाय ज्येष्ठाय च कनीयसे । मन्यवे त इषे त्र्यापतये यज्ञततवे ॥५०॥
ऊर्जे दिशा च पतय कालायाघोररूपिणे । कृशानुरेतसे तुभ्य नमोऽस्तु सुमहात्मने ॥५१॥
यत· समुद्रा· सरितोऽद्रयश्च गधर्वयक्षासुरसिद्धसघा ।
स्थाणुश्चरिष्णुर्महदल्पक च असच्च सज्जीवमजीवमास ॥५२॥
नतोऽस्मि त योगिनताघ्रिपद्म सर्वान्तरात्मानमरूपमीशम् ।
स्वतत्रमेक गुणिन गुण च नमामि भूय प्रणमामि भूय· ॥५३॥

वाले (शकर) को नमस्कार है, नीलकठ को नमस्कार है, पशुओ (अज्ञ जीवो) को ज्ञान देने वाले को नमस्कार है, कल्पो की कल्पना करने वाले भूत-पति को नमस्कार है, धनुष हाथ में लिये हुए शूलपाणि को नमस्कार है। कपाल हाथ मे लिए हुए फास, मुद्गर धारी को नमस्कार है, घटा हाथ मे लिए हुए समस्त भूत मे व्यापक रहने वाले को नमस्कार है। पाच मुख वाले, क्षेत्र-पति शकरदेव को नमस्कार है, समस्त भूतों मे आदि भूत तथा पृथिवी का धारण-पोषण करने वाले को नमस्कार है। अनेक रूपधारी, गुण (सत्त्व, रज, तम) रहित, परमात्मा, गणाधीश्वर गणपति को हमारा नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, हिरण्य-पति तथा हिरण्य (सुवर्ण) वीर्य वाले हिरण्यबाहु को नमस्कार है। ध्यान-स्वरूप, ध्यान के साक्षी ध्यान मे स्थित और ध्यान गम्य आपको नमस्कार है। जिस प्रधान पुरुष ने चर अचर मय इस समस्त ससार को मेघ द्वारा वर्षा के समान उत्पन्न किया है, और तत्त्वज्ञो ने जिसे स्वप्रकाश, महात्मा, परप्रकाशक, सनातन तथा मनुष्यो के नेत्रो मे प्रकाश प्रदान करने वाला माना है उन उमाकात, नन्दिकेश्वर, नीलकठ, सदाशिव, मृत्युञ्जय, महादेव, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर, व्यापक, शब्द-ब्रह्मस्वरूप निखिल सृष्टि के कारण भूत को नमस्कार है, तत्काल प्रगट होने वाले कपर्दी भगवान को हमारा नमस्कार है। ससार के उत्पत्तिस्थान, शुद्ध, सृष्टि के आदि मे प्रगट होने के कारण ज्येष्ठ और छोटे भी, यज्ञ-स्वरूप, ऋक्, यजु, साम रूप वेदत्रयी की रक्षा करने वाले, यज्ञ तन्तु, बलवान्, दिशाओ के अधीश्वर, काल-स्वरूप, अघोर रूप धारी, अग्नि वीर्य वाले महात्मा शकर को नमस्कार है। जिनके द्वारा समस्त समुद्र, नदिया, पर्वत, गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धो के समूह, स्थावर, जगम, छोटे, बडे, असत् (अनित्य), सत् (नित्य), जड और चेतन उत्पन्न हुए है, जिनके चरण कमल की सेवा-वन्दना योगी लोग सर्वदा करते है, समस्त प्राणियो के आत्मा मे स्थित रहने वाले रूपहीन उन ईश, स्वतत्र, एक, गुणी और गुण रूप वाले को नमस्कार करता हूँ, उन्हे हमारा बार-बार प्रणाम है ॥३५-५३॥

इत्थ स्तुतो महादेवो शकरो लोकशकर । आविर्बभूव भूपस्य सतप्ततपसोग्रतः ॥५४॥
पचवक्त्र दशभुज चद्रार्द्धकृतशेखरम् । त्रिलोचनमुदाराग नागयज्ञोपवीतिनम् ॥५५॥
विशालवक्षस देव तुहिनाद्रिसमप्रभम् । गजचर्माम्बरधर सुरार्चितपदाबुजम् ॥५६॥
दृष्ट्वा पपात पादाग्रे दडवद्भुवि नारद । तत उत्थाय सहसा शिवाग्रे विहिताजलि ॥५७॥
प्रणनाम महादेव कीर्तयञ्छकराह्वयम् । विज्ञाय भक्ति भूपस्य शकर शशिशेखर ॥५८॥
उवाच राज्ञे तुष्टोऽस्मि वर वरय वाछितम् । तोषितोऽस्मि त्वया सम्यक् स्तोत्रेण तपसा तथा ॥५९॥
एवमुक्त स देवेन राजा सतुष्टमानस. । उवाच प्राजलिर्भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ॥६०॥

भगीरथ उवाच

अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते वरदानान्महेश्वर । तदा गगा प्रयच्छास्मत्पितृणा मुक्तिहेतवे ॥६१॥

श्री शिव उवाच

दत्ता गगा मया तुभ्य पितृणा ते गति परा । तुभ्य मोक्ष परश्चेति तमुक्त्वान्तर्दधे शिवः ॥६२॥
कपर्दिनो जटास्रस्ता गगा लोकैकपावनी । पावयती जगत्सर्वमन्वगच्छद्भगीरथम् ॥६३॥
तत प्रभृति सा देवी निर्मला मलहारिणी । भागीरथीतिविख्याता त्रिषु लोकेष्वभून्मुने ॥६४॥
सगरस्यात्मजा. पूर्व यत्र दग्धा स्वपाप्मना॥ त देश प्लावयामास गगा सर्वसरिद्वरा ॥६५॥
यदा सप्लावित भस्म सागराणा तु गगया । तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैनस ॥६६॥
पुरा सक्रुश्यमानेन ये यमेनातिपीडिता । त एव पूजितास्तेन गगाजलपरिप्लुता ॥६७॥
गतपापान्स विज्ञाय यमः सगरसभवान् । प्रणम्याभ्यर्च्य विधिवत्प्राह तान्प्रीतिमानसः ॥६८॥
भो भो राजसुता यूय नरकाद्भृशदारुणात् । मुक्ता विमानमारुह्यग च्छध्व विष्णुमदिरम् ॥६९॥
इत्युक्तास्ते महात्मानो यमेन गतकल्मषा । दिव्यदेहधरा भूत्वा विष्णुलोक प्रपेदिरे ॥७०॥

इस प्रकार स्तुति करने पर लोक का कल्याण करने वाले शकर, महादेव घोर तपस्या से सतप्त राजा भगीरथ के सामने प्रकट हुए। उनके पाँच मुख थ, दश भुजाये थी, मस्तक मे अर्धचन्द्र धारण किये थे, सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये थे, सभी अग उदार थे, विशाल वक्षस्थल था, हिमालय पर्वत के समान धवल कान्ति थी, गज-चर्म पहिने थे उनके चरण कमल की वन्दना देवता लोग कर रहे थे, ऐसे आशु तोष भगवान् को देखकर उनके चरण के समीप राजा ने पृथिवी मे गिरकर दण्डवत् किया और फिर शीघ्र ही उठकर हाथ जोडकर प्रणाम कर 'शकर' इस नाम का उच्चारण करते हुये उनका कीर्तन भी किया। शशि शेखर भगवान् शकर ने राजा की इस भक्ति को देख कर उनसे कहा—मै तुम्हारे स्तोत्र और तप से अच्छी तरह प्रसन्न हूँ। अत अपना मनोरथ कहो, क्या चाहते हो ? शकर भगवान् के इस प्रकार कहने पर राजा ने प्रसन्न होकर हाथ जोड जगत् के अधीश्वर शिव से निवेदन किया ॥५४-६०॥

भगीरथ ने कहा—महेश्वर ! यदि मुझे आपने अनुगृहीत किया है तो पूर्वजो की मुक्ति के लिये गगा को प्रदान कीजिये ।

श्री शिव ने कहा—मैने तुम्हे गगा दे दी , तुम्हारे पूर्वजो को उत्तम गति प्राप्त होगी और तुम्हे भी उत्तम मुक्ति मिलेगी इस प्रकार कह कर भगवान् शिव अतर्धान हो गये और उसी समय कपर्दी भगवान् की जटा से लोकपावनी गगा जी निकल कर समस्त ससार को पवित्र करती हुई भगीरथ के पीछे पीछे चली । मुने ! उसी समय से मल का नाश करने वाली उस निर्मल गगा का भागीरथी यह नाम तीनो लोको मे प्रचलित हुआ। जिस स्थान पर सगर के वश वाले अपने पापो से जल कर भस्म हो गये थे, समस्त नदियों मे श्रेष्ठ गगा ने उसे पवित्र किया। सगर की सन्तानो के भस्म

एव प्रभावा सा गगा विष्णुपादाग्रसभवा । सर्वलोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी ।।७१।।
य इद पुण्यमाख्यान महापातकनाशनम् । पठेच्च श‍ृणुयाद्वापि गगास्नानफल लभेत् ।।७२।।
यस्त्वेतत्पुण्यमाख्यान कथयेद्ब्राह्मणाग्रत: । स याति विष्णुभवन पुनरावृत्तिवर्जितम् ।।७३।।
इति श्री वृहन्नारदीय पुराणतो गगोत्पत्तौ दशमोऽध्याय: ।।१०।।

को गगा ने जिस समय (डुबाकर) पवित्र किया उसी समय नरक मे पड हुये वे लोग निष्पाप हो मुक्त हो गये । जिन्हे यमराज धमका कर बहुत पीडा दे रहे थे, गगाजल द्वारा पवित्र होने के कारण उन्ही लोगो की यमराज ने पूजा की । सगर की सतानो को निष्पाप समझ कर यमराज ने प्रणाम पूर्वक विधिवत् पूजा की और उन लोगो से कहा---राजपुत्र ! इस भयकर नरक से आप लोग मुक्त हो गये, अत विमानो पर बैठकर भगवान् विष्णु के मन्दिर मे जा कर निवास कीजिये । यमराज के इस प्रकार कहने पर निष्पाप हो उन लोगो ने दिव्य देह धारण कर विष्णु-लोक का प्रस्थान किया ।इस प्रकार भगवान् विष्णु के अग्रभाग से निकल कर गगा समस्त लोको मे 'महा पातक का नाश करने वाली' विख्यात हुई । जो इस महापातक नाश करने वाले पवित्र चरित्र को पढता या सुनता है, उसे गगा स्नान का फल प्राप्त होता है । जो इस पवित्र चरित्र को ब्राह्मण के सामने कहता है वह जन्म-मरण रहित विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है ।।६१-७३।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे दशवॉ अध्याय समाप्त ।।१०।।

एकादशोऽध्यायः

वसुरुवाच

अथावगाहनादीना कर्मणा फलमुच्यते । सावधाना शृणुष्व त्व ब्रह्मपुत्रि नृपप्रिये ॥१॥
यै पुण्यवाहिनी गगा सकृद्भक्त्यावगाहिता । तेषा कुलाना लक्ष तु भव तारयते शिवा ॥२॥
सामान्यस्थानतो देवि तत्र सध्या ह्युपासिता । पुण्य लक्षगुण कर्तु समर्था द्विजपावनी ॥३॥
दत्ता पितृभ्यो यत्रापस्तनयै श्रद्धयान्वितै । अक्षया तु प्रकुर्वन्ति तृप्ति मोहिनि दुर्लभाम् ॥४॥
यावतश्च तिला मर्त्यैर्गृहीता पितृकर्मणि । तावद्वर्षसहस्राणि पितर स्वर्गवासिन ॥५॥
पितृलोकेषु ये केचित्सर्वेषा पितर स्थिता । तर्प्यमाणा परां तृप्ति याति गगाजलै. शुभै ॥६॥
य इच्छेत्सफल जन्म सतति वा शुभानने । स पितृ स्तर्पयेद्गगामभिगम्य सुरास्तथा ॥७॥
ये मृता दुर्गता मर्त्यास्तर्पितास्तत्कुलोद्भवै । कुशैस्तिलैर्गागजलैस्ते प्रयाति हरे पदम् ॥८॥
स्वर्गसस्थाश्च ये केचित्पितर पुण्यशीलिन । ते तर्पिता गागजलैर्मोक्ष याति विधेर्वच. ॥९॥
मास तर्पणमात्रेण पिडसपातनेन च । गगाया पितर सर्वे सुप्रीता सूर्यवर्चस ॥१०॥
अप्सरोगणसयुक्तान्हेमरत्नविभूषितान् । मुक्ताजालपरिच्छन्नान्वेणुवीणानिनादितान् ॥११॥
भेरीशखमृदगादिनिर्घोषान्स्रग्विभूषितान् । गधर्वदेहरुचिरान्दिव्यभोगसमन्वितान् ॥१२॥
आरुह्य तु विमानाग्र्यान्ब्रह्मलोक प्रयाति हि । गधर्वदेहरुचिरान्दिव्यभोगसमन्वितान् ॥१३॥

वसु ने कहा—ब्रह्मा की पुत्री, राजा की प्रिये मोहिनि! अब मै गगा मे स्नानादि करने का फल बतला रहा हूँ, सावधानीपूर्वक सुनो। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक केवल एक बार गगा मे स्नान कर लेता है, उसके एक लाख कुलो को भवसागर से शिवप्रिया गगा तारती है। देवि! साधारण स्थान पर की गई सन्ध्या से गगा तट पर की गई द्विजाति को पवित्र करने वाली सन्ध्या लाख गुनी अधिक पुण्य प्रदान करने मे समर्थ है। हे मोहिनि! उस गगा तट पर श्रद्धापूर्वक पुत्रो द्वारा दी गई जलाजलि पितरो को अक्षय तृप्ति प्रदान करती है, जो कि अत्यन्त दुर्लभ है। गगा तट पर मनुष्य पितृ कर्म मे जितना तिल ग्रहण करता है उतने सहस्र वर्ष उसके पितर स्वर्ग मे निवास करते हैं। गगाजल द्वारा तर्पण करने पर पितृ-लोक-निवासी सभी पितरो को अत्यन्त तृप्ति मिलती है, कारण कि वह (गगा जल) अत्यन्त कल्याणप्रद है ॥१-६॥

कल्याणमुखि! जो अपने जन्म को सफल करना चाहे अथवा सतान की अभिलाषा करता हो उसे चाहिए कि गगा मे जा कर पितरो तथा देवताओ का तर्पण करे। जिन लोगो की अल्प मृत्यु हुई हो, उनके कुल के किसी भी प्राणी द्वारा कुश, तिल और गगाजल से तर्पण करने पर वे लोग मुक्त हो कर विष्णु-लोक पहुँच जाते है। जो पुण्यशाली पितर स्वर्ग मे निवास करते है, गगाजल द्वारा तर्पण किये जाने पर उनका मोक्ष निश्चय ही होता है, यह ब्रह्माजी का कथन है। एक मास तक गगा मे केवल तर्पण और पिडदान करने से पितर लोग अत्यन्त प्रसन्न हो सूर्य के समान तेजस्वी स्वरूप धारण कर अप्सराओ के साथ सुवर्णो ओर रत्नो से अलकृत तथा मोतियो के गुच्छो से सजे हुए वेणु, वीणा, भेरी, शख और मृदग से सुसज्जित, सुन्दर फूल-मालाओ से सुशोभित गन्धर्व-देह के समान सुन्दर, देवताओ की दिव्य-भोग सामग्रियो से परिपूर्ण, मनोहर विमानो मे बैठ कर ब्रह्म-लोक को प्रस्थान करते है।

जो पुरुष गगा मे स्नान कर नित्य शिव-लिग का पूजन करता है, वह एक ही जन्म मे नि सन्देह मुक्त हो जाता है। अन्यत्र स्थान मे किये गये अग्निहोत्र, वेद-पाठ और अधिक दक्षिणा वाले यज्ञ आदि—ये सभी गगा मे किये गये लिग

एकेन जन्मना मोक्ष परमाप्नोति स ध्रुवम्। अग्निहोत्राणि वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणा ॥१४॥
गगाया लिगपूजाया कोट्यशेनापि नो समा। पितृनुद्दिश्य वा देवान्गगाभोभि प्रसिचयेत् ॥१५॥
तृप्ता. स्युस्तस्य पितरो नरकस्थाश्च तत्क्षणात्। मृत्कुभात्ताम्रकुभैस्तु स्नान दशगुण स्मृतम् ॥१६॥
रौप्यै शतगुण पुण्य हैमै कोटिगुण स्मृतम्। एवमर्घे च नैवेद्ये वलिपूजादिषु क्रमात् ॥१७॥
पात्रातरविशेषेण फल चैवोत्तरोत्तरम्। विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम् ॥१८॥
न स तत्कर्मफलभाग्देवद्रोही प्रकीर्त्यते। देवाना दर्शन पुण्य दर्शनात्स्पर्शन वरम् ॥१९॥
स्पर्शनादर्चन श्रेष्ठ घृतस्नानमत' परम्। प्राहुर्गंगाजलै' स्नान घृतस्नानसम बुधा ॥२०॥
अर्घ्यं द्रव्यविशेषेण गंगातोयेन य. सकृत्। मागधप्रस्थमात्रेण ताम्रपात्रस्थितेन च ॥२१॥
देवताभ्य' प्रदद्यात्तु स्वकीयपितृभ्य: सह। पुत्रपौत्रैश्च सयुक्त स च वै स्वर्गमाप्नुयात् ॥२२॥
विष्णो. शिवस्य सूर्यस्य दुर्गाया ब्रह्मणस्तथा। गगातीरे प्रतिष्ठा तु य: करोति नरोत्तम ॥२३॥
तथैवायतनान्येषा कारयत्यपि शक्तित। अन्यतीर्थेषु करणात्कोटिकोटिगुण भवेत् ॥२४॥
गगातीरसमुद्भूतमृदा लिगानि शक्तित। सलक्षणानि कृत्वा तु प्रतिष्ठाप्य दिने दिने ॥२५॥
मत्रैश्च पत्रपुष्पाद्यै: पूजयित्वा च शक्तित.। गगाया नि.क्षिपेन्नित्य तस्य पुण्यमनतकम् ॥२६॥
सर्वानन्दप्रदायिन्या गगाया यो नरोत्तम। अष्टाक्षर जपेद्भक्त्या मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥२७॥
नमो नारायणायेति प्रणवाद्य नियम्य च। षण्मास जपत सर्वा ह्युपतिष्ठति सिद्धय ॥२८॥

(पार्थिव) पूजन के कोटि अश के भी समान नही है। जो लोग अपने पितरो के उद्देश्य से गगाजल से देवताओ को स्नान कराते है, उनके नरक मे भी रहते हुए पितर उसी समय तृप्त हो जाते है। मिट्टी के घडे से तामे के घडे मे दश गुना पुण्य अधिक है ॥७-१६॥

चॉदी के घडे मे सौगना ओर सुवर्ण के पात्र मे कोटि गुना पुण्य कहा गया है। इसी प्रकार अर्घ, नैवेद्य और बलि पूजा आदि मे क्रमश उत्तरोत्तर पुण्य अधिक समझना चाहिए। जितने ही उत्तम धातु का पात्र रहेगा (स्नान, पूजन और भोजन के लिए) उतना ही अधिक पुण्य होगा। जो पुरुष धनी होते हुए भी लोभ वश अपनी शक्ति के अनुसार पुण्य विधि का विस्तार नही करता है, उसे उस कर्म का फल नही मिलता, प्रत्युत देवद्रोही कहा जाता है। देवताओ का दर्शन करने से पुण्य होता है। दर्शन से स्पर्श, स्पर्श से अर्चन और उससे घृतस्नान अधिक श्रेष्ठ कहा गया है। विद्वान् लोग घृतस्नान के समान गगा जल के स्नान को मानते है। जो मनुष्य किसी उत्तम धातु के बने हुए पात्र से अथवा ताम्र-पात्र मे ही गगाजल रख कर देवता को अर्घ्य देता है, उसके पितर तथा वह स्वयम् और उसके पुत्र-पौत्र सभी स्वर्ग मे निवास करते है ॥१७-२२॥

जो उत्तम पुरुष गगाजी के तीर पर विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा ब्रह्मा आदि देवताओ मे किसी की प्रतिष्ठा करता है और अपनी सपत्ति के अनुसार इन देवताओ के लिए मन्दिर भी बनवाता है उसे अन्य तीर्थो मे बनवाने के करोडो गुना फल से भी अधिक फल प्राप्त होता है। गगा के किनारे की मिट्टी का अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन सागोपाग और लक्षणो से युक्त पार्थिव बना कर तथा प्राण-प्रतिष्ठा कर के मत्र पूर्वक, विल्वपत्र और पुष्पो से पूजा करे फिर विसर्जन कर गगा मे छोड दे तो उसका पुण्य अनन्त है, जो कि कहा नही जा सकता। जो श्रेष्ठ मनुष्य भक्तिपूर्वक अष्टाक्षर मत्र को सब प्रकार का आनन्द देने वाली गगा मे या तीर पर जपता है, उसके अधीन मुक्ति सर्वदा रहती है। प्रणव (ओकार) सहित नमो नारायणाय इस मत्र को नियमपूर्वक ६ मास तक जपने वाले को सब प्रकार की सिद्धिया प्राप्त होती है। जो ओ नम शिवाय—इस मत्र को विधिपूर्वक चौबीस लाख जप कर ले, वह साक्षात् शिव के समान हो जाता है। (नम शिवाय) यह पचाक्षरी विद्या सिद्ध विद्या है। इसे सिद्ध कर लेने पर मनुष्य नि सन्देह शिव हो जाता है, और पवित्र

नम· शिवायेतिर्ॐ मत्र सतार विधिना तु य । चतुर्वि शतिलक्ष वै जपेत्साक्षात्स शंकर ॥२९॥
पचाक्षरी सिद्धविद्या शिव एव न सशय । अपवित्र पवित्रो वा जपन्निष्पातको भवेत् ॥३०॥
पूजिताया तु गगाया पूजिता· सर्वदेवता । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेदमरापगाम् ॥३१॥
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च सर्वावयवशोभिताम् । रत्नकुभसिताभोजवराभयकरा शुभाम् । ३२॥
श्वेतवस्त्रपरीधाना मुक्तामणिविभूपिताम् । सुप्रसन्ना सुवदना करुणार्द्रहृदावुजाम् ॥३३॥
सुधाप्लावितभूयिष्ठा त्रैलोक्यनमिता सदा । ध्यात्वा जलमयी गगा पूजयन्पुण्यभाग्भवेत् ॥३४॥
मासार्द्धमपि यस्त्वेव नैरन्तर्येण पूजयेत् । स एव देव सदृशो बहुकालफलाधिक ॥३५॥
वैशाखशुक्लसप्तम्या जह्नुना जाह्नवी पुरा । क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात् ॥३६॥
ता तत्र पूजयेद्देवी गगा गगनमेखलाम् । अक्षयाया तु वैशाखे कार्तिकेऽपि शुभानने ॥३७॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा यवान्नैश्च तिलैस्तथा । विष्णु गगा च शभु च पूजयेद्भक्तिभावत ॥३८॥
तथा सुगधै· कुसुमै कुकुमागरुचदनै । तुलसीविल्वपत्राद्यैर्मातुलुगफलादिभि ॥३९॥
धूपै र्दीपैश्च नैवेद्यैर्यथा विभववित्तरै. । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥४०॥
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते । ततो महीतल प्राप्य राजा भवति धार्मिक ॥४१॥
भुक्त्वा विविधसौख्यानि रूपशीलगुणान्वित । देहाते ज्ञानवान्भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥४२॥
यज्ञो दान तपो जप्य श्राद्ध च सुरपूजनम् । गगाया तु कृत सर्व कोटिकोटि गुण भवेत् ॥४३॥
यस्त्वक्षयतृतीयाया गगातीरे ददाति वै । घृतधेनु विधानेन तस्य पुण्यफल शृणु ॥४४॥

या अपवित्र अवस्था मे जपने से पाप-रहित होता है। एकमात्र गगा की पूजा करने पर समस्त देवताओ की पूजा हो जाती है, इसलिए बडे प्रयत्न के साथ श्री गगाजी की पूजा करनी चाहिए ॥२३-३१॥

गगा का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए। चार भुजाए हो, तीन नेत्र हो, समस्त सुन्दर अगो से सुशोभित हो, रत्न जडित कुभ और श्वेत कमल से युक्त हो कर अभय दान देने वाली हो, श्वेत-वस्त्र पहिने, मोतियो और मणियो से अलकृत हो, प्रसन्न-मुख हो, प्रसन्नता का भाव भलीभाति विदित होता हो, अपने हृदय-कमल मे करुणा भरे हो, सुधा-सागर मे निमग्न हो और तीनो लोक वन्दना करते हो, इस प्रकार ध्यान कर जलमयी गगा का पूजन करने से प्राणी पुण्य का भागी होता है। जो मनुष्य निरतर इस प्रकार ध्यान कर केवल आधे मास तक पूजन करता है, वह देव समान हो कर अनन्तकाल तक उत्तम फलो को भोगता है। पहले समय मे राजा जह्नु ने वैशाख शुक्ल सप्तमी को क्रुद्ध होकर गगा को पी लिया था, और फिर उसी दिन दाहिने कान के छिद्र के द्वारा छोड भी दिया था, अत आकाश-वाहिनी गगा देवी का पूजन उस दिन भी करना चाहिए। सुन्दरि! वैशाखशुक्ल तृतीया मे और कार्तिकशुक्ल तृतीया मे भी रात्रि मे जागरण करे। यव और तिल से विष्णु, गगा और शिव जी का भक्तिपूर्वक पूजन करे। सुगध (इत्र आदि), सुगधित पुष्प, कुकुम, अगर, चदन, तुलसी, विल्वपत्र समेत विविध फल, धूप, दीप और नैवेद्य आदि पदार्थ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार एकत्र कर अर्पण करे। ऐसा करने से प्राणी करोडो कल्प दिव्य-विमान पर बैठ कर विष्णु-लोक मे सम्मानपूर्वक निवास करता है और तदुपरान्त मर्त्य-लोक मे आकर धार्मिक राजा होता है, यहाँ भी सुन्दर रूप, उत्तम स्वभाव और गुणो को प्राप्त कर अनेक प्रकार के सुखो का भोग कर शरीर-त्याग के पश्चात् अपने ज्ञान के प्रताप से भगवान शकर का सायुज्य प्राप्त करता है। यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देव-पूजन आदि सभी गगा तट पर करने से अन्य स्थानो की अपेक्षा करोड गुना अधिक फलदायक होते है। अक्षय-तृतीया मे गगा के तीर पर जो सविधि घृत-धेनु का दान करता है, उसके पुण्य-फल को सुनो ॥३२-४४॥

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । सहस्रादित्यसकाश सवकामसमन्वित ॥४५॥
हेमरत्नमये चित्रे विमाने हसभूषिते । स्वकीयपितृभि सार्द्ध ब्रह्मलोके महीयते ॥४६॥
ततस्तु जायते विप्रो गगातीरे धनान्वित । अते तु ब्रह्मविद्भूत्वा मोक्षमाप्नोत्यसशय ॥४७॥
तीर्थे च गोप्रदान च विधिना कुरुते तु य । गोलोमसख्यवर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥४८॥
जायते च कुले पश्चाद्धनधान्यसमाकुले । रत्नकाचनभूपूर्णे शीलविद्यायशोऽन्विते ॥४९॥
स भुक्त्वा विपुलान्भोगान् पुत्रपौत्रसमन्वित' । मोक्षभागी भवेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥५०॥
कपिला यदि दत्ता स्याद्विधिना वेदपारगे । नरकस्थान्पितृन्सर्वान्स्वर्ग नयति वै तदा ॥५१॥
भूमि निवर्तनमिता गगातीरे ददाति य । भूमिरेणुप्रमाणाब्द ब्रह्मविष्णुशिवातिग ॥५२॥
जायते च पुनर्भूमौ सप्तद्वीपपतिर्भवेत् । भेरीशखादिनिर्घोषै र्गीतवादित्रनि स्वनै ॥५३॥
स्तुतिभिर्मागधाना च सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते । सर्वसौख्यान्यवाप्येह सर्वधर्मपरायण ॥५४॥
नरकस्थान्पितृन्सर्वान्प्रापयित्वा दिव तथा । स्वर्गस्थितान्मोक्षयित्वा स्वय ज्ञानी च मोहिनि ॥५५॥
अते ज्ञानासिना छित्वा अविद्या पचपर्विकाम् । पर वैराग्यमापन्न पर ब्रह्माधिगच्छति ॥५६॥
सप्तहस्तेन दडेन त्रिंशद्दडानिवर्तनम् । त्रिभागहीन गोचर्म मानमाह विधि स्वयम् ॥५७॥
ग्राम गगातटे यो वै ब्राह्मणेभ्य प्रयच्छति । ब्रह्मविष्णुशिवप्रीत्यै दुर्गाया भास्करस्य च ॥५८॥
सर्वदानेषु यत्पुण्य सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । तपोव्रतेषु पुण्येषु यत्फल परिकीर्तितम् ॥५९॥

हजारो सूर्य के समान तेज धारण कर, समस्त कामनाओ को पूरा कर, रत्नजडित सुवर्ण के चित्र-विचित्र तथा हस से विभषित विमान पर बैठ कर अपने पितर के साथ ब्रह्मलोक मे जा करोडो कल्प तक वह निवास करता है। तदनन्तर गगा के किनारे धनी ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होता है, और अत मे ब्रह्म-ज्ञानी हो कर निस्सदेह मोक्ष प्राप्त करता है। जो तीर्थ मे विधान पूर्वक गोदान करता है, वह उस गौ के जितने लोम होते ह उतने वर्ष स्वर्ग मे निवास करता है। तत्पश्चात् मर्त्यलोक मे आ कर धन-धान्य युक्त रत्नो और सुवर्णो से भरे हुए किसी सुशील, विद्वान् और चारो ओर विख्यात अच्छे भू-पति के कुल मे जन्म लेता है। उस कुल मे वह आजीवन अनेक प्रकार के अनन्त सुख भोगते हुए पुत्र और पौत्र समेत सुखी रहता है और उसी जन्म मे मरण के बाद मोक्ष भी प्राप्त करता है, इसमे विचार करने की आवश्यकता नही है। जो मनुष्य कपिला गौ का दान किसी वेदपाठी ब्राह्मण को देता है, वह उसी समय नरक मे पडे हुए अपने समस्त पितरो को स्वर्ग पहुँचा देता है॥४५-५१॥

जो निवर्तनमात्र भूमि-दान गगा के किनारे करता है, वह उस भूमि की रेणु-सख्या के समान उतने वर्ष ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी उत्तम लोक मे निवास करता है। फिर इस लोक मे आकर सातो द्वीप का अधीश्वर होता है, नगाडे, शख की ध्वनियाँ, मागलिक गान और बन्दीगण की स्तुति करने पर वह शयनागार से उठता है, समस्त सौख्य को भोगते हुए सर्व-धर्मपरायण होता है। मोहिनि! इस प्रकार वह दाता नरक मे स्थित अपने पितरो को स्वर्ग पहुँचाता है स्वर्ग मे निवास करने वालो को मुक्त करा कर स्वय ज्ञानी होता है और अन्त मे अपने ज्ञानरूपी तलवार से पाँच गाँठ वाली अविद्या को काट कर महान् वैराग्य प्राप्त करता है। फिर शरीर-त्याग के उपरान्त सर्वदा के लिए विमुक्त हो जाता है। सात हाथ के दडा द्वारा नपी हुई तीस दडा भूमि को एक निवर्तन कहते है और उसके चतुर्थाश को गोचर्म कहते है, इस मान-दण्ड को ब्रह्मा ने स्वय बताया है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा और सूर्य इन देवताओ के प्रसन्नार्थ गगा के तट पर जो ब्राह्मण को ग्राम-दान करता है, सर्व दान करने से जो पुण्य मिलता है, समस्त यज्ञो का जो फल कहा गया है, तप व्रत और पुण्य का जो फल कहा गया है, उसका हजार गुना फल उसे मिलता है। करोडो सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर बैठ कर विष्णुलोक या शिवलोक मे जा कर देवताओ का सत्कार ग्रहण करते हुए वह विहार करता है और दान की

सहस्रगुणित तत्तु विज्ञेय ग्रामदायिनः । सूर्यकोटिप्रतीकाशे विमाने वैष्णवे पुरे ॥६०॥
क्रीडते शाकरे वापि स्तुतो देवादिभि मुदा । भूमिरेणोश्च सख्याक काल स्थित्वा च तत्र स. ॥६१॥
अणिमादिगुणैयुक्ते योगिना जायते कुले ।
अक्षयाया तु यो देवि स्वर्ण षोडशमासिकम् । ददाति द्विजमुख्याय सोऽपि लोकेषु पूज्यते ॥६२॥
अन्नदानाद्विष्णुलोक शैव वै तिलदानत । ब्राह्म रत्नप्रदानेन गोहिरण्येन वासवम् ॥६३॥
गाधर्व स्वर्णवासोभि कीर्ति कन्याप्रदानत' । विद्यया मुक्तिद ज्ञान प्राप्य यायान्निरजनम् ॥६४॥
गगातीरे नरो यस्तु नानावृक्षै' समन्वितम् । आराम कारयेद्भक्त्या गृह चोपवनान्वितम् ॥६५॥
कदलीनारिकेरैश्च कपित्थाशोकचपकै । पनसैर्बिल्ववृक्षैश्च कदवाश्वत्थपाटलै । ६६॥
आम्रैस्तालै र्नागरगैवृक्षैरन्यैश्च सयुतम् । जातीविजयसयुक्त' तथा पाटलराजितम् ॥६७॥
निचित कारयित्वैवमावास पुष्पशोभितम् । शिवाय विष्णवेवापि दुर्गायै भास्कराय च ।.६८॥
प्रयच्छति तथा भक्त्या सर्वार्थं परिकल्प्य च । तस्य पुण्यफल वक्ष्ये सक्षेपान्नतु विस्तारात् ॥६९॥
यावति तेषा वृक्षाणा पुष्पमूलफलानि च । बीजानि च विचित्राणि तेषा मूलानि वै तथा ।
तावत्कल्पसहस्राणि तेषा लोकेषु सस्थिति ॥७०॥

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गगोत्पत्तो एकादशोऽध्याय ॥११॥

हुई भूमि की रेणु-सख्या के बराबर समय तक वहा निवास कर पुन अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियो को जानने वाले योगी के कुल मे उत्पन्न होता है ॥५२-६१॥

देवि ! अक्षय तृतीया मे जो सोलह मासा सुवर्ण का दान ब्राह्मण को देता है वह भी लोक मे पूज्य होता है। अन्नदान करने से विष्णु लोक प्राप्त होता है, तिल-दान करने से शिव लोक, रत्न-दान से ब्रह्म-लोक और गौ तथा सुवर्ण-दान करने से इन्द्र-लोक मिलता है। सुवर्ण तथा वस्त्र दान करने से गधर्व लोक मिलता है, कन्यादान से कीर्ति मिलती है और विद्या से मोक्ष-ज्ञान प्राप्त हो कर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । जो मनुष्य गगा के किनारे भक्तिपूर्वक बगीचा और उसमे घर बनाता है, और उस बगीचे मे तरह-तरह के पेड जैसे कला, नारियल, कैथा, अशोक, चपा, कटहर, वेल, कदब, पीपल, पाटल, आम, ताड, नारगी और अन्य जाती आदि वृक्षो को लगाता है, तथा पुन लता पुष्पो से सुशोभित कर उस घर को शिव, विष्णु, दुर्गा या सूर्य को समस्त सामग्री समेत भक्तिपूर्वक अर्पित करता है उसके पुण्य-फल को विस्तार से न कह कर सक्षेप मे ही सुनाता हूं। जितने उन वृक्षो मे फूल,फल, बीज और उनके मूल रहते है, उतने ही हजार कल्प तक वह दाता उन लोको मे निवास करता है ॥६२-७०॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

मोहिन्युवाच

धन्याहं कृतकृत्याहं सफलं जीवितं मम। यच्छ्रुतं त्वन्मुखांभोजाद्गंगामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१॥
अहो गंगासमं तीर्थं नास्ति किंचिद्धरातले। यस्याः संदर्शनादीनामीदृशं पुण्यमीरितम् ॥२॥
गुडधेन्वादिधेनूनां विधानं च यथाक्रमम्। तथा कथय विप्रेन्द्र भक्ताहं तव सर्वदा ॥३॥

वशिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुस्तस्याः पुरोहितः। वेदागमानां तत्त्वज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥४॥

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि यत्पृष्टं हि त्वया मम। गुडधेनुविधानं च यथाशास्त्रे प्रकीर्तितम् ॥५॥
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि। गोमयेनोपलिप्तायां कुशानास्तीर्य यत्नतः ॥६॥
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम्। उत्तमा गुडधेनुस्तु चतुर्भारैः प्रकीर्तिता ॥७॥
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता। अर्द्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु ।८।
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्गृहवित्तानुसारतः। प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तयेत् ॥९॥
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्जायते फलम्। धेनुवत्सौ घृतस्यैतौ सितश्लक्ष्णवरावृतौ ॥१०॥
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुद्धमुक्ताफलेक्षणौ। सितसूत्रसिरालौ च सितकंबलकंबलौ ॥११॥
ताम्रगड्डुकपृष्ठौ तौ सितचामरलोमकौ। विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ॥१२॥
कांस्यदोहाविन्द्रनीलमणिकल्पिततारकौ। सुवर्णशृंगाभरणौ शुद्धरौप्यखुरान्वितौ ॥१३॥

मोहिनी ने कहा—आज मैं धन्य हो गई, कृतकृत्य हो गई, मेरा जीवन सफल हो गया जो तुम्हारे मुखारविन्द से गंगा का माहात्म्य सुनने का शुभावसर प्राप्त हुआ। इस भू-मण्डल में गंगा के समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं है, जिसके दर्शन आदि से ऐसा पुण्य कहा गया है। अब इसके उपरान्त आप गुडधेनु आदि दानों का विधान यथार्थतः कहिये। विप्रेन्द्र! मैं सर्वदा आपकी भक्त हूँ ॥१-३॥

वसिष्ठ ने कहा—मोहिनी की इस बात को सुनकर उसके पुरोहित, वेदज्ञाता वसु हँसते हुए बोले ॥४॥

वसु ने कहा—मोहिनि! तुमने जो गुडधेनु का विधान मुझसे पूछा है, उसे मैं शास्त्र में जिस प्रकार बताया गया है, कह रहा हूँ सुनो। गोबर से लिपी हुई पवित्र भूमि में कुशा बिछा कर उसके ऊपर चार हाथ का काला मृगचर्म पूरब की ओर उसका मुख कर के बिछा देवे। उसके ऊपर बछडा सहित पूरब मुख वाली गौ की कल्पना करे (बनावे)। बछडे के सहित उसके पैर उत्तर की ओर हो। उत्तम गुडधेनु की कल्पना चार भार से कही गई है। उसके बछडे की कल्पना एक भार की करनी चाहिए। दो भारों की मध्यम गौ कही गई है। उसका बछडा आधे भार का करना चाहिए। कनिष्ठा गौ एक भार की होनी चाहिए, उसका बछडा उसके चतुर्थांश का करना चाहिए। इसमें अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार जो चाहे बनावे। घृत की धेनु तथा बछडे को स्वच्छ एवम् कोमल वस्त्र से ढाँक देना चाहिए। उनके कान सीप के, पैर ईख के, आँखे मोतियों की, भाल श्वेत सूत्र के, गल कंबरियाँ शुक्ल कंबल की, गड्डुक (डील) एवम् पीठ ताँबे के, लोम श्वेत चामर के, भौहे विद्रुम (मूँगे) की, स्तन मक्खन के, पूछे क्षौम वस्त्र की, थन काँसे के, आँखों की पुतलियाँ इन्द्रनीलमणि की, सींग सोने के, खुर शुद्ध चाँदी के, दाँत अनेक फलों के और नाके गन्ध (घिसे चन्दन आदि) की

नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगंधकरडकौ । इत्येव रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत् ॥१४॥
या लक्ष्मी सर्वभूताना या च देवेष्वस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम शाति प्रयच्छतु ॥१५॥
देहस्था याच रुद्राणा शकरस्य सदा प्रिया । धेनुरूपेण सा देवी मम पाप व्यपोहतु ॥१६॥
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मी स्वाहारूपा विभावसो । चद्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरुपा तु सा श्रिये ॥१७॥
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मी लक्ष्मीर्या धनदस्य च । लक्ष्मीर्या लोकपालाना सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥१८॥
स्वधा या पितृमुख्याना स्वाहा यज्ञभुजा च या । सर्वपापहरा धेनु सा मे शाति प्रयच्छतु ॥१९॥
एवमामन्त्र्य ता धेनु ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विधानमेतद्धेनूना सर्वासामिह पठ्यते ॥२०॥
यास्तु पापविनाशिन्य कीर्तिता दश धेनव. । तासा स्वरूप वक्ष्यामि शास्त्रोक्त शृणु मोहिनि ॥२१॥
प्रथमा गुडधेनु स्याद्घृतधेनुरथापरा । तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलसज्ञिता ॥२२॥
पचमी क्षीरधेनुश्च षष्ठी मधुमयी स्मृता । सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी ॥२३॥
रत्नधेनुश्च नवमी दशमी तु स्वरूपत । कुभा स्युर्द्रवधेनूना चेतरासा तु राशय ॥२४॥
सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छति सूरय । नवनीतेन तैलेन तथा केऽपि महर्षय ॥२५॥
एतदेव विधान स्यादेत एव उपस्करा । मत्रावाहनसयुक्ता. सदा पर्वणि पर्वणि ॥२६॥
यथाश्रद्ध प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । अनेकयज्ञफलदा. सर्वपापहरा शुभा । २७॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथ वा पुन । युगादौ चैव मन्वादौ चोपरागादिपर्वसु ॥२८॥
गुडधेन्वादयो देया भक्तिश्रद्धासमन्वितै । तीर्थेषु स्वगृहे वापि गगातीरे विशेषत ॥२९॥
एव दत्वा विधानेन धेनु द्विजवराय च । प्रदक्षिणी कृत्य विप्र दक्षिणाभि प्रतोष्य च ॥३०॥

होनी चाहिए। इस प्रकार रचना कर धूप-दीप से धेनु की पूजा करते हुए प्रार्थना करे कि—जो समस्त भूतो की लक्ष्मी है और जो देवताओ मे विराजमान है, वही देवी धेनुरूप हो कर मुझे शाति प्रदान करे। रुद्रो के शरीर मे जो सर्वदा स्थित रहती है और शकर की जो प्रिया है, धेनुरूप हो कर वह देवी मेरे पापो को नष्ट करे। विष्णु के वक्ष स्थल मे जो लक्ष्मी स्थित है, अग्नि की स्वाहा रूप हो कर प्रिया है, चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्र की जो शक्ति रूप है वह धेनुरूप हो कर मुझे कल्याण प्रदान करे। ब्रह्मा की जो लक्ष्मी है, कुबेर की जो लक्ष्मी है और लोकपालो की जो लक्ष्मी है वह धेनु रूप से मुझे वरदान देवे। पितरो की जो स्वधा है, यज्ञ मे हवि आदि भक्षण करने वाले अग्नि की स्वाहा है, समस्त पाप को नष्ट करने वाली वही धनु रूप हो मुझे शाति प्रदान करे। इस प्रकार प्रार्थना कर उस धेनु को ब्राह्मण के लिए अर्पित करे, समस्त धनुओ क लिए यह विधान बताया गया है ॥५-२०॥

मोहिनि ! पाप विनाश करने वाली दश धेनु का जो वर्णन किया गया है, उनके शास्त्र मे कहे गए स्वरूप को कह रहा हूँ, तुम सुनो । पहली गुडधनु है, दूसरी घृतधेनु है, तीसरी तिलधेनु है, चौथी जलधेनु है, पाँचवी दुग्धधेनु है, छठवी मधुधेनु है, सातवी शर्कराधेनु है, आठवी दधिधेनु है, नवमी रत्नधेनु है और दशवी साक्षात् धेनु है । पिघलने वाली धेनुओ के लिए घडे और इतर धेनुओ के लिए राशियाँ[1] होनी चाहिए। कोई विद्वान् सुवर्णधेनु को मानते है, और कोई महर्षि लोग मक्खनधेनु ओर तेलधेनु का भी सग्रह करते है। यही धेनु के बनाने तथा पूजन का विधान है। मत्र द्वारा आवाहन-पूजन कर के प्रत्येक पर्व दिनो मे श्रद्धापूर्वक धेनु-दान करने से भुक्ति और मुक्ति रूप उत्तम फल प्राप्त होते है अनेक यज्ञो का फल भी मिलता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते है ॥२१-२८॥

भक्ति श्रद्धापूर्वक उपर्युक्त धेनु का दान तीर्थ मे या अपने गृह मे करे परन्तु विशेषकर गगा के किनारे करना

(१) ग्रामीण भाषा मे इसको रास, कठई, डाभा आदि कहते है। इसमे दूध दुहा जाता है ।

ऋत्विज प्रीतिसयुक्तो नमस्कृत्य विसर्जयेत् । तत सपूजयेद्गगा विधिना सुसमाहित ।।३१।।
अष्टमूर्तिधरा देवी दिव्यरूपा निरीक्ष्य च । शालितदुलप्रस्थेन द्विप्रस्थपयसा तथा ।।३२।।
पायस कारयित्वा च दत्त्वा मधु घृत तथा । प्रत्येक पलमात्र च भक्तिभावेन सयुत ।।३३।।
तत्पायसमपूपाॅश्च मोदका मडलानि च । तथा गुजार्द्धमात्र च सुवर्ण रूप्यमेव च ।।३४।।
चदनागरुकपूरकुकुमानि च गुग्गुलम् । विल्वपत्राणि दूर्वा च रोचना सितचदनम ।।३५।।
नीलोत्पलानि चान्यानि पुष्पाणि सुरभीणि च । यथाशक्त्या महाभक्त्या गगाया चैव निक्षिपेत् ।।३६।।
मत्रेणानेन सुभगे पुराणोक्तेन चापि हि । गगायै नारायण्यै शिवायै च नमोनम, ।।३७।।
एतदेव विधान तु मासि मासि च मोहिनि । पौर्णमास्याममाया वा कार्य प्रात समाहितै ।।३८।।
वर्ष यस्तु नरो भक्त्या यथाशक्त्याचर्यन्मुदा । हविष्याशी मिताहारो ब्रह्मचर्य्यसमन्वित ।।३९।।
दिने वापि तथा रात्रौ नियमेन च मोहिनि । सवत्सराते तस्यैषा गगा दिव्यवपुर्द्धरा ।।४०।।
दिव्यमाल्याबरा चैव दिव्यरत्नविभूपिता । प्रत्यक्षरूपा पुरतस्तिष्ठत्येव वरप्रदा ।।४१।।
एव प्रत्यक्षरूपा ता गगा दिव्यवपुर्धराम् । दृष्ट्वा स्वचक्षुषा मर्त्य कृतकृत्योभवेच्छुभे ।।४२।।
यान्यान्कामयते मर्त्य कामास्तास्तानवाप्नुयात् । निष्कामस्तु लभेन्मोक्ष विप्रस्तेनैव जन्मना ।।४३।।
एतद्विधानं च मयोदित ते दृष्ट हि सर्व गुडधेनुपूर्णम् ।
गगाचर्न मुक्तिकर व्रत च सावत्सर श्रीपतितुष्टिद हि ।।४४।।

इति श्री बृहन्नारदीय पुराणतो गगोत्पत्तौ द्वादशोऽध्याय ।।१२।।

चाहिए। इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण को धेनु दान दे कर प्रदणिक्षा करके दक्षिणा से उन्हे सतुष्ट करे, फिर हर्षित हो नमस्कार कर के उन्हे बिदा करे और इसके उपरान्त सावधान हो सविधि गगा का पूजन करे।।२९-३१।।

अष्टमूर्त्ति धारण करने वाली दिव्य रूप देवी का दर्शन कर के शालि चावल तथा दूध का खीर बनावे। उसमे घी और मधु भी डाले पुन भक्तिपूर्वक उस खीर, माल पूआ और मोदक (लड्डू), आधी रत्ती सोना तथा चादी, चन्दन, अगर कपूर, कुकुम, गुग्गुर, बेलपत्र, दूबा, रोचन, सफेद चदन, नील कमल और अनेक सुगधित पुष्पो को अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक गगा मे छोडे। सुभगे! पुराण मे कहे हुए 'गगायै नारायण्यै शिवायै च नमोनम' इस मत्र को साथ-साथ पढता रहे। मोहिनि! इस विधान को प्रत्येक मास की पूर्णिमा या अमावस्या मे प्रात काल एकाग्रचित्त होकर करना चाहिए।।३२-३८।।

जो मनुष्य इस क्रम से एक वर्ष तक अपनी शक्त्यनुसार प्रसन्नचित्त हो गगा पूजन करता है और हविष्का अल्पाहार करते हुए ब्रह्मचारी रह कर दिन-रात नियमपूर्वक व्यतीत करता है मोहिनि! उसे वर्ष के अन्त मे दिव्य शरीर धारण कर दिव्य माला तथा वस्त्र और दिव्य आभूषणो से भूषित हो कर गगा जी प्रत्यक्ष हो वर देने के लिए सामने स्थित होती है। कल्याण रूपे! इस प्रकार दिव्यरूपधारी गगा का प्रत्यक्ष दर्शन कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और उसकी जो जो कामनाये होती है सभी सफल हो जाती है। यदि कोई ब्राह्मण निष्काम करता है, तो उसी जन्म मे उसे मोक्ष मिल जाता है। इस प्रकार तुम्हारे पूछे हुए गुडधेनु आदि का विधान, मोक्षकारी गगापूजन और लक्ष्मी नारायण को प्रसन्न करने वाला वार्षिक व्रत को मैने कह सुनाया।।३९-४४।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे बारहवाॅ अध्याय समाप्त।।१२।।

त्रयोदशोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

वसोर्वचनमाकर्ण्य गगामाहात्म्यसूचकम् । पुन पप्रच्छ राजेन्द्र त विप्र स्वपुरोहितम् ॥१॥

मोहिन्युवाच

श्रुत विप्र मया सर्व गोदानादि शुभावहम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि गगाव्रतमनुत्तमम् ॥२॥
स्वर्णादीना पूजन च स्थापन तत्र वा द्विज । कि फल वद सर्वज्ञ त्वामह शरण गता ॥३॥
अधुना गतिदाता त्व वर्जितायाश्च बधुभि । पत्या विरहिता चाह पुत्रहीना विदावर ॥४॥
त्वामेव शरण प्राप्ता पितुर्वचनगौरवात् । तद्भवान्प्रणताया मे गगामाहात्म्यसयुतम्
देवताराधन ब्रूहि यच्छ्रुत्वा मुच्यते ह्यघात् ॥५॥

वशिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्य वसुर्विप्र प्रतापवान् । सभाज्य मोहिनी भूप प्राह वेदविदावरः ॥६॥

वसुरुवाच

साधुपृष्ट त्वया देवि लोकाना हितकाम्यया ॥७॥
गगामाहात्म्यमखिल महापापप्रणाशनम् । वृषध्वजेन कथित शिवेन दयया पुरा ॥८॥
प्रीत्या देव्याभिपृष्टेन गगातीरनिवासिना । देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा ॥९॥
अपराह्णे च पितृभि शर्वर्यां गुह्यकादिभि । सर्वा वेला अतिक्रम्य नक्तभोजनमुत्तमम् ॥१०॥

वशिष्ठ ने कहा—हे राजेन्द्र ! वसु की गगामाहात्म्य सूचक वाणी को सुन कर मोहिनी ने अपने पुरोहित ब्राह्मण वसु से पुन पूछा।

मोहिनी ने कहा—ब्राह्मणदेव ! कल्याणकारी गोदान आदि का विधान तो मै सुन चुकी। अब सर्वश्रेष्ठ गगा का व्रत सुनना चाहती हूँ। द्विज ! गगा का स्थापन-पूजन करने से क्या फल होता है, इसे मै सुनना चाहती हूँ। आप सर्वज्ञ है म आपकी शरण मे हूँ, मुझे सब सुनाइये। इस समय मुझे उत्तम गति देने वाले आप ही है, क्योकि मेरे कोई बधु गण नही है। हे विद्वानो मे श्रेष्ठ ! मै अभागिन पति तथा पुत्र से भी हीन हूँ। पिता का वचन मान मै आपकी शरण मे आई हूँ। अत मुझ दीन को गगामाहात्म्य और देवता की आराधना, जिसके करने तथा सुनने स पाप नष्ट हो जाता है, सुनाइये॥१-५॥

वशिष्ठ ने कहा—मोहिनी के वाक्य को सुनकर प्रतापी ब्राह्मण वसु मोहिनी से आदरपूर्वक पुन बोले।

वसु ने कहा—देवि ! लोक की हितकामना से तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, महापाप को नष्ट करने वाले इस समस्त गगामाहात्म्य को वृषभध्वज भगवान् शकर ने परम आग्रहपूर्वक गगा के किनारे बैठ कर पार्वती जी के पूछने पर बतलाया था।

देवता लोग मध्यान्ह के पहले भोजन करते है, ऋषिगण मध्याह्न मे भोजन करते है, पितर लोग अपराह्ण मे भोजन करते है, गुह्यक लोग रात्रि मे भोजन करते है। अत समस्त उक्त समय का उल्लघन कर नक्त-भोजन सर्वोत्तम कहा गया है॥६-१०॥

उपवासाद्वर भैक्ष्य भैक्ष्याद्वरमयाचितम् । अयाचिताद्वर नक्त तस्मान्नक्त समाचरेत् ॥११॥
हविष्यभोजन स्नान सत्यमाहारलाघवम् । अग्निकार्यमधः शय्या नक्ताशी षट् समाचरेत् ॥१२॥
गगातीरे माघमासे यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । शिवायतनपार्श्वे तु कृशर घृतसयुतम् ॥१३॥
नैवेद्य च निवेद्यैव कृशरान्न शिवस्य तु । काष्ठमौनेन भुजानो जिह्वालौल्य विवर्जयेत् ॥१४॥
पलाशपत्रे भुजान शिव स्मृत्वा जितेन्द्रिय । धर्मराजस्य देव्याश्च पृथक्पिड प्रकल्पयेत् ॥१५॥
सोपवासश्चतुर्दश्या भवेदुभयपक्षयो । पौर्णमास्या तु गधैश्च गगाया. सलिलैस्तथा ॥१६॥
शिव सस्नाप्य पयसा मध्वाज्यदधिभि पृथक् । तथैव हेमपुष्प च लिंगमूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ॥१७॥
ततो दद्यात्तु शक्त्यैवापूप च घृतपाचितम् । तिलाढक प्रगृह्याथ शिवलिगोपरि क्षिपेत् ॥१८॥
नीलोत्पलैश्च सर्वेश पूजयेत्पकजैरपि । तदलाभेतु सौवर्णै पकजै. पूजयेद्वरम् ॥१९॥
पायस चान्नमध्वाक्त घृतयुक्त तु गुग्गुलम् । घृतदीप तथा चैव चदनाद्यैर्विलेपनम् ॥२०॥
दद्याद्भक्त्या महेशाय तथा पत्रफलानि च । कृष्णगोमिथुन चैव सरूप्य च निवेदयेत् ॥२१॥
भोजयेद् ब्राह्मणानष्टौ मासाते तु सदक्षिणान् । वर्जयेन्मधु मास च त मास ब्रह्मचर्यवान् ॥२२॥
एव कृत्वा यथोद्दिष्टमेकवारमिद व्रतम् । यमैश्च नियमैर्युक्त श्रद्धाभक्तिपरायण. ॥२३॥
इह भोगानवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमा गतिम् । इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानै शिखिसयुतै ॥२४॥
दिव्यरत्नमयैश्चैव दिव्य भोगसमन्वितै. । गत्वा शिवपुर रम्य सवस्वकुलसयुत ॥२५॥
सुहृद्भिर्विविधैश्चैव विविधानप्यभीप्सितान् । भुक्त्वा भोगानशेषाश्च यावदाभूतसंप्लवम् ॥२६॥
ततो भवति धर्मात्मा जबूद्वीपपतिस्तथा । तत्र भुक्त्वा समस्ताश्च भोगान्विगतकल्मषः ॥२७॥
सुरूप सुभगश्चैव तथा विहितशासनः । सर्वरोगविनिर्मुक्त सोऽप्येतत्फलभाग्भवेत् ॥२८॥

उपवास करने से भिक्षा माँग कर भोजन कर लेना उत्तम है, भिक्षा माँग कर भोजन करने से बिना माँगे यदि मिल जाय तो वह बहुत अच्छा है । उक्त अयाचित भोजन से भी बढ कर माहात्म्य नक्त भोजन का है । अत नक्तभोजन करने का विधान मानना चाहिए । हविष्यान्न भोजन, स्नान, सत्यभाषण, अल्पाहार, अग्निकार्य (हवन) और भूमिशयन, इन बातो पर नक्ताशी को विशेष ध्यान देना चाहिए । जो व्यक्ति गगा के किनारे माघ के महीने मे शिवमदिर के समीप जा कर नक्तभोजन का विधान करते है और घृत समेत खिचडी तथा नैवेद्य शिव को अर्पण कर मौन हो स्वादिष्ट वस्तु का त्याग कर भोजन करते है, उन्हे चाहिए कि जितेन्द्रिय हो कर धर्मराज और देवी के निमित्त पृथक् पृथक् पिड बना कर अर्पित करे और स्वय पलाश के पत्ते पर भोजन करे । कृष्ण-शुक्ल दोनो पक्ष की चतुर्दशी को उपवास करे, पूर्णिमा के दिन गध तथा गगा जल, दूध, मधु, घी और दही से क्रमश शिव को स्नान करा कर शिव लिंग पर धतूरे का पुष्प चढावे। फिर अपनी शक्ति के अनुसार घृत मे पका हुआ मालपूआ, तिल आदि शिव लिंग पर चढावे। नील कमल और श्वेत कमल से शकर की पूजा करे । यदि ये सब न मिले तो सुवर्णनिर्मित पकज से ही पूजा करे ॥११-१९॥

घृत और मधु मिश्रित खीर, गुग्गुल, घृत का दीपक, चदन और बेलपत्र तथा फल आदि भक्तिपूर्वक महेश को अर्पण कर पुन चाँदी समेत काली गाय का दान करे। मास के अत मे आठ ब्राह्मणो को भोजन करा कर दक्षिणा प्रदान करे। उस व्रती को चाहिए कि उस मास मे मधु और माँस का त्याग कर ब्रह्मचर्य से रहे । इस प्रकार श्रद्धा और भक्तिपूर्वक नियम समेत एक बार भी इसके व्रत को कर प्राणी इस लोक मे उत्तम भोगो को भोगता है और अन्त मे उत्तम गति प्राप्त कर इन्द्रनील मणि के समान कलश वाले, दिव्यरत्नो के बने हुए, दिव्य भोग की सामग्रियो से सम्मानित विमानो पर सकुटुम्ब बैठकर रमणीक शिवपुरी मे जा, अपने इष्ट मित्रो के साथ अनेक प्रकार के अभिलषित भोगो का अनुभव करते हुये महाप्रलय के समय तक वहाँ निवास कर पुन इस लोक

वैशाखे शुक्लपक्षे वा चतुर्दश्या समाहित । शाल्यन्न क्षीरसयुक्त य कुर्यान्नक्तभोजनम् ॥२९॥
शिव सपूज्य पुष्पाद्यैर्भोज्य तु सनिवेद्य च । काष्ठ मौनेन भुजानो वटकाष्ठेन वै तथा ॥३०॥
मौनेन प्रयतो भूत्वा कुर्याद्वै दतधावनम् । शिवलिगसमीपे तु गगातीरे निशि स्वपेत् ॥३१॥
पौर्णमास्या प्रभाते तु गगाया विधिना तथा । स्नात्वोपवास संकल्प्य कुर्याज्जागरण निशि ॥३२॥
लिंग घृतेन सस्नाप्य पुष्पगधादिभिस्तथा । नैवेद्यधूपदीपैश्च सपूज्य वृषभ शुभम् ॥३३॥
श्वेतपुष्पवस्त्राद्यैर्हरिद्रैश्चन्दनैस्तथा । अलकृत्य विधानेन शिवाय विनिवेदयेत् ॥३४॥
ब्राह्मणाश्च यथाशक्ति पायसेन तु भोजयेत् । एव सकृच्च यो भक्त्या करोति श्रद्धयान्वित ॥३५॥
लभते दैवपादोनयुगाना हि सहस्रकम् । तप कृत्वा तु नियमाद्यत्पुण्य तदसशयम् ॥३६॥
हँसकुदप्रभायुक्तैर्विमानैश्चद्रसन्निभै । सुश्वेतवृषयुक्तैश्च मुक्ताजालविभूषितै ॥३७॥
स्वकीयपितृभि सार्द्ध प्रयातीश्वरमदिरम् । नीलोत्पलसुगधाभि सुरूपाभि समतत: ॥३८॥
कांताभिर्दिव्यरूपाभिर्भुक्त्वा भोगाननेकश । अनतकालमैश्वर्ययुक्तो भूत्वा ततो भुवि ॥३९॥
जायते स महीपाल. कीर्त्यैश्वर्यसमन्वित । एकच्छत्रेण स मही पालयत्याज्ञया सह ॥४०॥
अते वैराग्यसपन्नो गगा स लभते पुन । स तया श्रद्धया युक्तो गगायां मरण लभेत् ॥४१॥
तथा तत्र स्मृति लब्ध्वा मोक्षमाप्नोति स ध्रुवम् । ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्या हस्तसयुते ॥४२॥
गगातीरे तु पुरुषो नारी वा भक्तिभावत । निशाया जागर कृत्वा गगा दशविधैस्तत ॥४३॥
पुष्पैर्गंधैश्च नैवेद्यै फलैश्च दशसख्यया । तथैव दीपैस्ताम्बूलै· पूजयेच्छ्रद्धयान्वित ॥४४॥
स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्या दशकृत्वो विधानत । दशप्रसृतिकृष्णाश्च तिलान्सर्पिश्च वै जले ॥४५॥
सक्तुपिडान्गुडपिंडान्दद्याच्च दशसख्यया । ततो गगातटे रम्ये हेम्न· रूप्येण वा तथा ॥४६॥
गगाया प्रतिमा कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम् । पद्मस्वस्तिकचिह्नस्य सस्थितस्य तथोपरि ॥४७॥

मे जम्बूद्वीप का अधिपति होता है। वहाँ पाप रहित एव धार्मिक होकर निखिल उत्तम भोगो का उपभोग करता है। वह बडा सुन्दर होता है और समस्त सौभाग्यो से समन्वित हो नीरोग शरीर से राज्य करता है। वह भी इस फल का भागी होता है वैशाख-शुक्ल-चतुर्दशी मे नक्त व्रत करने वाले मनुष्य को चाहिये कि वह सावधानी से साठी चावल तथा दूध का खीर बनाकर रात्रि के प्रथम प्रहरार्ध मे भोजन करे। तदनन्तर पुष्प आदि से शिव की पूजा कर भोज्य पदार्थ उन्हे समर्पित करके मौन होकर भोजन करे। फिर मौनपूर्वक स्वच्छता के साथ दाँत-मुह धो रात्रि मे गगा के किनारे शिवलिग के समीप शयन करे। पूर्णिमा के दिन प्रात काल गगा मे विधिपूर्वक स्नान कर पुन सकल्प कर के उपवास और रात्रि मे जागरण करे। घृत से शिवलिग को स्नान करा के पुष्प-गध आदि वस्तुओ से पूजन कर धूप-दीप और नैवेद्य का अर्पण करे और बैल का भी पूजन कर सफेद फूलो एव वस्त्रो तथा हरदी-चन्दनो से अलकृत कर के उसे शिव के लिए निवेदन करे। तदनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणो को खीर भोजन करावे, इस प्रकार श्रद्धाभक्ति पूर्वक एक बार भी जो कोई करता उसे दो सहस्त्र युगो तक नियमपूर्वक तप करने का फल निस्सदेह प्राप्त होता है ॥२०-३६॥

और हम तथा कुद पुष्प के समान कान्तिवाले तथा चन्द्रमा के समान मनोरम हो, जिसमे अत्यन्त धवल बैल जुते हो, मोतियो के गुच्छो से सुशोभित हो एसे विमान पर अपने पितरो के साथ बैठ कर शिव के मन्दिर मे जा निवास करता है, और वहा नीलकमल के समान सुगन्धित होने वाली तथा अग प्रत्यग सुन्दर हो ऐसी दिव्य रूप धारण करने वाली कामिनियो के साथ अनेक प्रकार का भोग अनन्तकाल तक भोग कर पश्चात् ऐश्वर्यशाली राजा हो इस लोक मे पैदा होता है। उसका ऐश्वर्य ओर यश चारो ओर फैलता है, एव वह एकच्छत्र (सम्राट्) हो पृथिवी पर शासन करता है। पुन अत समय मे विरक्त हो गगा तट पर श्रद्धापूर्वक निवास करते हुए वही शरीर परित्याग भी करता है, और उस समय

वस्त्रस्रग्दामकठस्य पूर्णकुंभस्य चोपरि। संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदादि वा ॥४८॥
अथ तत्राप्यशक्तश्चेल्लिखेत्पिष्टेन वै भुवि। चतुर्भुजां सुनेत्रां च चंद्रायुतसमप्रभाम् ॥४९॥
चामरैर्वीज्यमानां च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम्। सुप्रसन्नां च वरदां करुणार्द्रनिजांतराम् ॥५०॥
सुधाप्लावितभूपृष्ठां देवादिभिरभिष्टुताम्। दिव्यरत्नपरीतां च दिव्यमालानुलेपनाम् ॥५१॥
ध्यात्वा जले यथाप्रोक्तां तत्रार्चायां तु पूजयेत्। वक्ष्यमाणेन मंत्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः ॥५२॥
पंचामृतेन च स्नानमर्चायां तु विशिष्यते। प्रतिमाग्रे स्थण्डिले तु गोमयेनोपलेपयेत् ॥५३॥
नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा। भगीरथं च नृपतिं हिमवंतं नगेश्वरम् ॥५४॥
गंधपुष्पादिभिश्चैव यथाशक्ति प्रपूजयेत्। दशप्रस्थांस्तिलान्दद्याद्दश विप्रेभ्य एव च ॥५५॥
दशप्रस्थान्यवान्दद्याद्दश गव्यैर्यथा हि तान्। मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान् ॥५६॥
कारितान्वै यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा। तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य कुसुमादिभिः ॥५७॥
गंगायां प्रक्षिपेत्पूर्वं मंत्रेणैव तु मंत्रवित्।
रथयात्रादिने तस्मिन्विभवे सति कारयेत्। रथारूढप्रतिकृतिं गंगायास्तूत्तरामुखाम् ॥५८॥
भ्रमंत्या दर्शनं लोके दुर्लभं पापकर्मणाम्। दुर्गाया रथयात्रास्ति तथैवात्रापि कारयेत् ॥५९॥
एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः। दशपापैर्वक्ष्यमाणैः सद्य एव विमुच्यते ॥६०॥
इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

ज्ञान स्मरण होने के कारण उसे निस्सदेह मोक्ष मिलता है। ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की हस्त-नक्षत्र-युक्त दशमी तिथि मे गगा के किनारे पुरुष या स्त्री भक्तिपूर्वक रात्रि मे जागरण करे और दश प्रकार के पुष्प, गध, नैवेद्य, फल, दीपक तथा ताम्बूल आदि से श्रद्धापूर्वक गगा की पूजा कर दश बार शक्ति से गगा मे स्नान करे। फिर दश अँजुली कृष्ण तिल और घी तथा दश सक्तुपिड एवम् दश गुडपिड जल मे चढावे।

तदनन्तर गगा के सुन्दर तट पर सुवर्ण अथवा चादी की गगा की प्रतिमा को, जिसके नीचे कल्याणकारी कमल का चिन्ह बना हो और वस्त्र तथा माला से कठ सुशोभित हो ऐसे कलश के उपर स्थित करे। यदि सुवर्ण चादी न हो सके तो मिट्टी की मूर्ति बनावे, उसकी भी शक्ति न हो तो भूमि मे किसी चूर्ण (आटा) आदि से इस प्रकार बनावे जिसमें चार भुजाये हो, सुन्दर नेत्र हो, चन्द्रमा के समान कान्ति हो, चामर चल रहा हो, ऊपर श्वेत-रमणीक छत्र सुशोभित हो, प्रसन्न मुख हो ,वरदायिनी मालूम होती हो, अत करण करुण रस से भरा हो, वहाँ की भूमि सुधा मे डूबी हो, देवता लोग स्तुति करते हो, दिव्य रत्न और दिव्य मालाओ से सुशोभित हो। इस प्रकार गगा की मूर्ति का ध्यान कर आगे कहे जाने वाले मत्रो-द्वारा विशेष पूजा करे। पूजन मे विशेष कर पचामृत से स्नान कराना चाहिये, प्रतिमा के सामने भूमि को गोबर से लीपकर वहाँ नारायण, महेश, ब्रह्मा, सूर्य,राजा भगीरथ और पर्वतराज हिमालय का यथाशक्ति गध-पुष्प आदि से पूजन करे। दश ब्राह्मणो को दश सेर तिल, दश सेर यव तथा दश दश सेर घी प्रदान करे। मत्स्य, कच्छप, मेढ़क तथा मकर आदि जलचरो की मूर्ति यथाशक्ति सुवर्ण या चादी से बनावे। यदि शक्ति न हो तो चूर्ण से ही बनाकर पुष्प आदि से पूजन करे और मत्रवेत्ता को चाहिये कि मत्रपूर्वक गगा मे छोड दे ॥३७–५७॥

यदि विभव हो तो उस दिन रथयात्रा का भी उत्सव करे। रथ पर उत्तर मुह करके स्थापित गगाप्रतिमा के दर्शन से मनुष्यो का पाप नष्ट हो जाता है। दुर्गा की जैसी रथयात्रा होती है उसी तरह गगारथयात्रा भी मनानी चाहिये। जो व्यक्ति कृपणता से रहित होकर उपर्युक्त प्रकार से गगापूजन करता है वह आगे कहे जाने वाले दश प्रकार के पापो से तुरन्त मुक्त हो जाता है ॥५८–६०॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गगो पत्ति के प्रसग मे तेरहवा अध्याय समाप्त ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

वसुरुवाच

स्वदत्तानामुपादान हिसा चैवाविधानत । परोपसेवा च तथा कायिक त्रिविध स्मृतम् ॥१॥
पारुष्यमनृत वापि पैशुन्य चापि सर्वश । असबद्धप्रलापश्च वाचिक स्याच्चतुर्विधम् ॥२॥
परद्रव्येष्वभिध्यान मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च मानस त्रिविध स्मृतम् ॥३॥
एतैर्दशविधै पापैः कोटिजन्मसमुद्भवै । मुच्यते नात्र सदेहो ब्रह्मणो वचन यथा ॥४॥
दश त्रिंशच्च तान्पूर्वान्पितॄनेव तथापरान् । उद्धरत्येव ससारान्मत्रेणानेन पूजिता ॥५॥
"ओनमो दशहरायै नारायण्यै गगायै नम" । इति मत्रेण यो मर्त्यो दिने तस्मिन्दिवानिशम् ॥६॥
जपेत्पचसहस्राणि दशधर्मफल लभेत् । उद्धरेद्दशपूर्वाणि पराणि च भवार्णवात् ॥७॥
वक्ष्यमाणमिद स्तोत्र विधिना प्रतिगृह्य च । गंगाग्रे तद्दिने जप्य विष्णुपूजा प्रवर्तयेत् ॥८॥
ओंनम. शिवायै गगायै शिवदायै नमोऽस्तु ते । नमोऽस्तु विष्णुरूपिण्यै गगायै ते नमोनम ॥९॥
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये । सर्वस्य सर्वव्याधीना भिषक्श्रेष्ठे नमोऽस्तु ते ॥१०॥
स्थाणुजगमसभूतविषहन्त्रि नमोऽस्तु ते । संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोनमः ॥११॥
तापत्रितयहन्त्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमोनम. । शान्त्यै सतापहारिण्यै नमस्ते सर्वमूर्तये ॥१२॥
सर्वसशुद्धिकारिण्यै नमः पापविमुक्तये । भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भोगवत्यै नमोनमः ॥१३॥

वसु ने कहा—अपने द्वारा दान की गई वस्तु का स्वय उपभोग करना, हिंसा करना और दूसरे की स्त्री की सेवा करना ये तीन प्रकार के शारीरिक पाप है। कठोर वाणी बोलना, झूठ बोलना, चुगुलखोरी करना और बिना प्रसग के सब तरह की बाते कहना ये चार प्रकार के वाणी द्वारा (वाचिक) पाप होते है। दूसरे के धन को अपनाने के लिए विचार करना, दूसरे को दु ख पहुँचाने के लिए चितन करना और असत्य बातो पर दृढ रहना ये तीन प्रकार के मानसिक पाप है। करोडो जन्म के इन दस प्रकार के पापो से निस्सदेह मुक्त होता है, इसे ब्रह्मा ने स्वय कहा है। ।१-४॥

इस मत्र से पूजा करने पर गगा उसके चालीस पीढी पूर्व के और चालीस पीढी आगे के पितरो का उद्धार करती है। 'ओ नमो दशहरायै नारायण्यै गगायै नम' इस मत्र का जो मनुष्य रात दिन मे पाच हजार जप कर लेता है, उसे दश धर्म का पुण्य फल मिलता है और वह दश पीढी पूर्व के और दश पीढी पश्चात् के जीवो का ससार-सागर से उद्धार करता है। आगे कहे जाने वाले स्तोत्र को विधिपूर्वक गगा के सामन पढ कर तब विष्णु का पूजन करना चाहिए। शिवा (शिव प्रिया) रूप गगा को नमस्कार है, कल्याण-प्रदान करने वाली गगे! तुम्हे नमस्कार है, विष्णु रुप धारण करने वाली-गगा को बार-बार नमस्कार है। समस्त देवताओ का रूप धारण करने वाली और ओषधि रूप तुम्हें नमस्कार है, समस्त प्राणियो के सम्पूर्ण रोगो के वैद्य रूप को नमस्कार है ॥५-१०॥

चर और अचर मे उत्पन्न विष का नाश करने वाली तुम्हे नमस्कार है, ससार के विष का नाश कर जीवन दान देने वाली को बार-बार नमस्कार ह। तीनो (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) तापो का नाश करने वाली प्राणेश्वरी (गगा) को नमस्कार है, शान्ति-स्वरूप और सताप हारिणी तथा समस्त मूर्तियो मे निवास करने वाली को नमस्कार है। सब प्रकार से अत्यन्त शुद्ध करने वाली तथा पाप से मुक्त करने वाली को नमस्कार है, भुक्ति और मोक्ष देने वाली और भोगवती को बार-बार नमस्कार है। मदाकिनी को नमस्कार है, स्वर्ग पहुँचाने वाली को बार-बार नमस्कार है, तीनो

मंदाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमोनम' । नमस्त्रैलोक्यमूर्तायै त्रिदशायै नमोनमः ॥१४॥
नमस्ते शुक्लसस्थायै क्षेमवत्यै नमोनम. । त्रिदशासनसस्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते ॥१५॥
मदायै लिगधारिण्यै नारायण्यै नमोनम -। नमस्ते विश्वमित्रायै रेवत्यै ते नमोनम ॥१६॥
वृहत्यै ते नमो नित्य लोकधात्र्यै नमोनम । नमस्ते विश्वमुख्यायै नदिन्यै ते नमोनम' ॥१७॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमोनम । परावरगताद्यायै तारायै ते नमोनम ॥१८॥
नमस्ते स्वर्गसस्थायै अभिन्नायै नमोनम । शातायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमोनम ॥१९॥
उग्रायै मुखजल्पायै सजीविन्यै नमोनम । ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनम ॥२०॥
प्रणतार्तिप्रभजिन्यै जगन्मात्रे नमोनम । विलुप्तायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमोनम ॥२१॥
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मगलायै नमोनम । परापरे परे तुभ्य नमो मोक्षप्रदे सदा ।
गगा ममाग्रतोभूयाद्गगा मे पार्श्वयोस्तथा ॥२२॥
गगा मे सर्वतो भूयात्त्वयि गगेऽस्तु से स्थिति. । आदौ त्वमते मध्ये च सर्वा त्व गागते शिवे ॥२३॥
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्व हि नारायणप्रभु । गगे त्व परमात्मा च शिवस्तुभ्य नमोनम ॥२४॥
इतीद पठति स्तोत्र नित्य भक्तिपरस्तु य । शृणोति श्रद्धया वापि कायवाचिकसभवै ॥२५॥
दशधा सस्थितैर्दोषै सर्वैरेव प्रमुच्यते । रोगी प्रमुच्यते रोगान्मुच्येतापन्नआपद ॥२६॥
द्विषद्भ्यो बधनाच्चापि भयेभ्यश्च विमुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ॥२७॥
इद स्तोत्र गृहे यस्य लिखित परिपूज्यते । नाग्निचौरभय तत्र पापेभ्योऽपि भय नहि ॥२८॥

लोक रूप मूर्ति धारण करने वाली देवी को नमस्कार है। शक्ल रूप से स्थिर होने वाली को नमस्कार है, कल्याण रूप वाली को बार-बार नमस्कार है, देवताओ के आसन पर स्थित रहने वाली और तेजरूपधारिणी को नमस्कार है। मदा रूप तथा लिग धारण करने वाली नारायणी को नमस्कार है, विश्व की हितैषिणी और रेवती रुप को नमस्कार है॥११-१६॥

वृहती रूप आपको नित्य नमस्कार है, लोक धारण करने वाली को नमस्कार है, ससार मे प्रधान तथा नदिनी रूप आपको नमस्कार है। पृथिवी रूप आपको नमस्कार है। शिवा, अमृत रूप और अत्यन्त शुद्ध रूप वाली को नमस्कार है। बडे और छोटे सब मे व्याप्त रहने वाली और तारा रूप आपको नमस्कार ह। स्वर्ग मे स्थित रहने वाली और अभिन्न रहने वाली को बार-बार नमस्कार है। शाति रूप, प्रतिष्ठा रूप और वरदान देने वाली को बार-बार नमस्कार है। उग्र रूप धारण करने वाली, मुख की वाणी रूप और सजीवनी रूप आपको नमस्कार है। ब्रह्म को प्राप्त करने वाली, ब्रह्म को प्राप्त कराने वाली तथा पाप को नष्ट करने वाली को नमस्कार है। भक्तो के सकटो का नाश करने वाली जगत् माता आपको नमस्कार है। अत्यन्त शुद्ध रूप, दुर्ग का नाश करने वाली दक्ष रूप आपको नमस्कार है। समस्त आपत्तियो का नाश करने वाली मगल रूप आपको बार-बार नमस्कार है। पर (उत्कृष्ट) रूप और अपर (अत्यन्त लघु) रूप तथा मोक्ष देने वाली आपको सदा नमस्कार है। मेरे सामने गगा हो, मेरे दोनो तरफ गगा हो, मेरे चारो ओर गगा हो और हे गगे! तुझमे मेरी स्थिति हो, तुम आदि, मध्य और अत मे वर्तमान रहती हो, पृथिवी मे आकर कल्याण देने वाली हे शिवे! तुम्ही समस्त रूप हो। तुम्ही मूल प्रकृति हो, तुम्ही साक्षात् नारायण प्रभु हो, हेम गगे! तु परमात्मा और शिव हो। अत तुम्हे बार-बार नमस्कार है। जो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र को पढता है या श्रद्धा समेत सुनता है, उसे कायिक और वाचिक दश पापो से छुटकारा मिलता है। रोगी रोग से मुक्त होता है, आपत्ति वाले की आपत्ति छूट जाती है, शत्रु से, बधन से और भय से मुक्त हो जाता है, सब प्रकार के सुखो को भोग कर अत मे ब्रह्म मे लीन होता है। लिखा हुआ यह स्तोत्र जिसके घर मे रह कर पूजित होता है, उसे अग्नि और चोर का भय नही होता है तथा पापभय भी उसे नही होता। उक्त दशमी को गगा-जल मे स्थित हो कर दश बार जो जपता है, और वह यदि अशक्त या दरिद्र हो तो उसे भी उसके उपरात भक्ति-

तस्या दशम्यामेतच्च स्तोत्र गगाजले स्थित'। जपस्तु दशकृत्वश्च दरिद्रोवापि चाक्षमः ॥२९॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोति गगा सपूज्य भक्तित । पूर्वोक्तेन विधानेन फलं यत्परिकीर्तितम् ॥३०॥
यथा गौरी तथा गगा तस्माद् गौर्यास्तु पूजने । विधिर्यो विहित सम्यक्सोऽपि गगाप्रपूजने ॥३१॥
यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथाह्युमा । उमा यथा तथा गगा चात्र भेदो न विद्यते ॥३२॥
विष्णुरुद्रान्तर यश्च गगागौर्यंतर तथा । लक्ष्मीगौर्यंतर यश्च प्रब्रूते मूढधीस्तु स ॥३३॥
शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गगायामुत्तरायणे । धन्या देह विमुचति हृदयस्थे जनार्दने ॥३४॥
ये मुचति नरा' प्राणान् गगाया विधिनदिनि । ते विष्णुलोक गच्छन्ति स्तूयमाना दिवि स्थितै' ॥३५॥
अर्द्धोदकेन जाह्नव्या म्रियतेऽनशनेन य । स याति न पुनर्जन्म ब्रह्मसायुज्यमेति च ॥३६॥
या गतिर्योगयुक्तस्य सात्त्विकस्य मनीषिणः । सा गतिस्त्यजत' प्राणान् गगाया तु शरीरिण ॥३७॥
अनशन गृहीत्वा यो गगातीरे मृतो नर । सत्यमेव पर लोकमाप्नोति पितृभ्यः सह ॥३८॥
गगाया मरणात्प्राणान् यो प्राज्ञस्त्यक्तुमिच्छति । गतानि बहुजन्मानि यत्र यत्र मृतानि च ॥३९॥
महाश्चापि गतः कालो यत्र तत्रापि गच्छतः । अत्र दूरे समीपे च सदृश योजनद्वयम् ॥४०॥
गगाया मरणेनेह नात्र कार्या विचारणा । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कामतोऽकामतोऽपिवा ॥४१॥
गगाया तु मृतो मर्त्य. स्वर्ग मोक्ष च विन्दति । प्राणेषूत्सृज्यमानेषु यो गगा स्मरेन्नर ॥४२॥
स्पृशेद्वा पापशीलो वा सर्वे याति परा गतिम् ॥४३॥

नगा गत्वा यैः शरीर विसृष्ट प्राप्ता धीरास्ते तु देवैः समत्वम् ।
तस्मात्सर्वान्प्रोह्य मुक्तिप्रदान्वै सेवेद्गगामाशरीरस्य पातम् ॥४४॥

पूर्वक गगा पूजन करने से वही फल मिलेगा जो फल उपरोक्त विधि के साथ पूजन करने से कहा गया है। जैसी गौरी है वैसी ही गगा है। इसलिए गौरी पूजन मे जो विधान कहा गया है वही गगा पूजन मे भी है। जैसे शिव हैं वैसे विष्णु हैं और जैसे विष्णु है वैसी ही उमा है तथा जैसी उमा वैसी गगा है, इनमे कोई भेद नही है ॥१७-३२॥

विष्णु और रुद्र मे, गगा और गौरी मे तथा लक्ष्मी और गौरी मे जो भेद निकालते हो वे मूर्ख है। सूर्य उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष मे और गगा की भूमि मे किसी दिन सूर्यास्त के पहले जो कोई हृदय मे भगवान् का ध्यान करते हुए शरीर का त्याग करते है वे धन्य है। हे विधिनदिनि ! जो प्राणी गगा मे प्राण-परित्याग करते हैं देवता लोग उनकी प्रार्थना करते हुए उन्हे विष्णु-लोक मे ले जाते हैं। गगा के आधे जल मे अनशन करते हुए जो मरता है, वह ब्रह्म मे सायुज्य मोक्ष पाता है और कभी पैदा नही होता। जो गति सात्त्विक वृत्ति से रहने वाले विद्वान् योगी की होती है, वही गति गगा मे प्राण त्यागने वाले को मिलती है। गगा के तट पर अनशन कर के जो मरता है, वह अपने पितरो के समेत उत्तम सत्यलोक मे पहुँचता है ॥३३-३८॥

जो विद्वान् मरने से पूर्व गगा मे प्राणत्याग करने की इच्छा करता है, उसके जहाँ-तहाँ जन्म लेना, मरना तथा जन्म लेते-मरते बहुत काल बिताना—ये सब चीजे दूर हो जाती है (अर्थात् वह मुक्त हो जाता है)। गगा के किनारे दो योजन (आठ कोस) तक एक समान है। अत इसके मध्य मे ज्ञान या अज्ञान से निष्काम या सकाम किसी भी प्रकार मरने मे कोई विचार नही करना चाहिए। गगा मे जो मनुष्य मरता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है, किंतु प्राण-त्याग के समय जो गगा का स्मरण करता है या स्पर्श करता है, वह महान् पापी क्यो न हो उसकी उत्तम गति होती है। जो गगा मे अपना शरीर-त्याग करते है, वे देवता के समान हो कर सुखी रहत है। अत समस्त मुक्ति-प्रद उपायो का त्याग कर जबतक शरीर का त्याग न हो तब तक गगा की सेवा करनी चाहिए ॥३९-४४॥

अंतरिक्षे क्षितौ तोये पापीयानपि यो मृतः । ब्रह्मविष्णुशिवैः पूज्य पदमक्षय्यमश्नुते ॥४५॥
यो धर्मिष्ठश्च स प्राण' प्रयत' शिष्टसमत' । चिन्तयेन्मनसा गगा स गति परमा लभेत् ॥४६॥
यत्र तत्र मृतो वापि मरणे समुपस्थिते । भक्त्या गगां स्मरन्याति शैव वा वैष्णव पुरम् ॥४७॥
शभोर्जटाकलापात्तु विनिष्क्रातिककर्कशात् । प्लावयित्वा दिव निन्येऽतिपापान्सगरात्मजान् ॥४८॥
यावत्यस्थीनि गगाया निष्ठति पुरुषस्य वै । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥४९॥
गगातोये तु यस्यास्थि नीत्वा प्रक्षिप्यते नरैः । तत्कालमादितः कृत्वा स्वर्गलोके भवेत्स्थिति ॥५०॥
गगातोये तु यस्यास्थि प्राप्यते शुभकर्मणः । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कथचन ॥५१॥
दशाहाभ्यन्तरे यस्य गगातोयेऽस्थिसगतम् । गगाया मरणे यादृक्तादृक् फलमवाप्नुयात् ॥५२॥

स्नात्वा तत पंचगव्येन सिक्का हिरण्यमध्वाज्यतिलैर्नियोज्य ।
तदस्थिपिडं पुटके निधाय पश्यन् दिश प्रेतगणोपगूढाम् ॥५३॥
नमोऽस्तु धर्माय वदन्प्रविश्य जल स मे प्रीत इति क्षिपेच्च ।
स्नात्वा ततस्तीर्थवराक्षय च दृष्ट्वा प्रदद्यादथ दक्षिणाम् तु ॥५४॥
एवं कृत्वा प्रेतपुरे स्थितस्य स्वर्गे गति. स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ॥५५॥

प्रवाहमवधि कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् । तत्र नारायणः स्वामी नान्य स्वामी कदाचन ॥५६॥
न तत्र प्रतिगृह्णीयात् प्राणै कठगतैरपि । भाद्रशुक्लचतुर्दश्या यावदाक्रमते जलम् ॥५७॥
तावद्गर्भ विजानीयात् तदूर तीरमुन्यते । सार्द्ध हस्तशतं यावद्गर्भस्तीर तत परम् ॥५८॥
इति केषा मत देवि श्रुतिस्मृतिषु समतम् । तीराद्गव्यूतिमात्र तु परित. क्षेत्रमुच्यते ॥५९॥
तीर त्यक्त्वा वसेत्क्षेत्रे तीरे वासो न चेष्यते । एकयोजनविस्तीर्णा क्षेत्रसीमा तटद्वयात् ॥६०॥

गगा के ऊपर अन्तरिक्ष मे या उसकी भूमि पर या उसके जल मे जो पापी भी मरता है, वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश से वन्दनीय अक्षय्य लोक को प्राप्त करता है। जो धार्मिक पुरुष अपने जीवनकाल मे प्रयत्नपूर्वक गगा का चिन्तन करता है, उसे परमोत्तम गति मिलती है। मरण के समय मे भक्तिपूर्वक गगा का स्मरण करते हुए जहाँ कही जो मरता है, उसका शिवपुरी मे या विष्णुपुरी मे निवास अवश्य होता है। शिव के कर्कश जटासमूह से निकल कर गगा ने पाप का प्रक्षालन कर सगर के सन्तानो को स्वर्ग मे पहुँचा दिया। पुरुष की जितनी हड्डिया गगाजल मे पडती है उतने हजार वर्ष वह स्वर्ग मे पूजित होता है। मनुष्य जिसकी हड्डी को जिस समय गगा जल मे छोडता है, उसी समय से वह स्वर्ग लोक मे अपनी स्थिति करता है। जिस पुण्यात्मा की हड्डी गगा जल मे पडती है, उसका किसी प्रकार भी ब्रह्मलोक स आगमन नही होता। दशाह के अन्दर जिसकी हड्डी गगा मे पहुँच जाती है उसे गगा मे मरने का फल मिलता है ॥४५-५२॥

स्वय स्नान कर पचगव्य (गौ का दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर) से हड्डी का स्नान करा कर सुवर्ण, मधु, घी और तिल साथ मे रख कर उस हड्डी को किसी पुटक (ढक्कनदार पात्र) मे रख वहाँ प्रेतवासिनी दिशाओ को देखते हुए तथा 'नमोऽस्तु धर्माय' यह कहते हुए जल मे घुस कर छोड देवे, पुन. उस अक्षय और उत्तम तीर्थ मे स्नान कर दक्षिणा दान करे। इस प्रकार करने से प्रेतपुरी मे रहने वाला प्रत स्वर्ग मे जा इन्द्र के समान सुखी होता है। प्रवाह (धारा) से ले कर चार हाथ तक नारायण स्वामी का अधिकार रहता है किसी दूसरे का नही। यदि प्राण निकलते हुए कठ तक आ गया तब भी वहाँ दान न लेना चाहिए। भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को जहाँ तक जल आता हो उसे गर्भ कहते है, और उससे दूर तीर कहाता है। एक सौ पचास हाथ तक गर्भ की सीमा होती है उसके बाद तीर होता है और तीर से दो कोस चारो ओर क्षेत्र कहा जाता है। देवि! यह श्रुति और स्मृति से समत है, एसा कोई लोग कहते है ॥५३-५९॥

तीर छोड कर क्षेत्र मे रहना चाहिए, दोनो किनारे से चार कोस की चौडाई मे क्षेत्र की सीमा कही गई है।

गंगासीमा न लघति पापान्यखिलान्यपि। तां दृष्ट्वा पलायते यथा सिंह वनौकस ।।६१।।
यत्र गगा महाभागे रामशभुतपोवनम्। सिद्धक्षेत्र तु तज्ज्ञेय समन्तात्तु त्रियोजनम् ।।६२।।
तीर्थे न प्रतिगृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च। निमित्तेषु च सर्वेषु तन्निवृत्तो भवेन्नर ।।६३।।
तीर्थे य प्रतिगृह्णाति पुण्येष्वायतनेषु च। निष्फल तस्य तत्तीर्थं यावत्तद्धनमुच्यते ।।६४।।
गगाविक्रयणाद्देवि विष्णोर्विक्रयण भवेत्। जनार्दने तु विक्रीते विक्रीत भुवनत्रयम् ।।६५।।
गगातीरसमुद्भूता मृद मूर्ध्ना बिभर्ति य। बिभर्ति रूप सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ।।६६।।
गंगापुलिनजा धूलिमास्तीर्याथ निजान्पितॄन्। प्रीणयन्यो नरःपिंडान्दद्यात्तान् स्वर्णयेदपि ।।६७।।
इद तेऽभिहित भद्रे गगामाहात्म्यमुत्तमम्। पठन् शृण्वन्नरो ह्येति तद्विष्णो परम पदम् ।।६८।।
नित्य जप्यमिद भक्त्या प्रयतै श्रद्धयान्वितै। वैष्णवी गतिमिच्छद्भि शैवी वा विधिनदिनि ।।६९।।

इति श्री वृहन्नारदीयपुराणतो गगोत्पत्तौ चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

सब प्रकार के पाप गगा के सीमा को नही लाँघने, उसे देख कर सिंह को देख जगली जानवरो की भाति भाग जाते हैं। हे महाभागे! जहाँ कही गगा तथा राम और शिव का तपोवन हो इनके चारो ओर बारह कोस तक सिद्ध स्थान जानना चाहिए। तीर्थ मे और पवित्र देवालय मे दान न ग्रहण करना चाहिए, कोई भी निमित्त हो पर उससे मनुष्य को अलग ही रहना चाहिए। तीर्थ मे या देवालय मे जो दान लेते है तो जब तक वह धन रहता है तब तक उनका उस तीर्थ मे निवास करना निष्फल रहता है। देवि! गगा के बेचने से विष्णु का बेचना होता है और भगवान् के बेचने पर तीनो लोक का बेचना हो जाता है। जो गगातीर की मिट्टी अपने शिरोधार्य करते हैं वे अँधेरा नाश करने वाले सूर्य के समान रूप धारण करते है। गगा की मिट्टी को बिछा कर उस पर पितरो के निमित्त जो पिंड दान करता है वह अपने पितरो को स्वर्ग भेजता है। हे भद्रे! इस उत्तम गगामाहात्म्य को मैंने तुम्हे सनाया, इसे सुन कर अथवा पढ कर मनुष्य विष्णु के परम पद को प्राप्त होते हैं। हे विधिनदिनि! विष्णु लोक या शिव लोक के चाहने वालो को श्रद्धा समेत प्रयत्न से इसका पाठ करना चाहिए।।६०-६९।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गगोत्पत्ति के प्रसग मे चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।१४।।

स्तुति खण्ड

प्रथमोऽध्यायः

गगा ध्यानम्

श्वेतचम्पकवर्णाभा गगा पापप्रणाशिनीम्। कृष्णविग्रहसभूता कृष्णतुल्या परा सतीम्॥१॥
वह्निशुद्धाशुकाधाना रत्नभूषणभूषिताम्। शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभाजुष्टकलेवराम्॥२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। नारायणप्रिया शान्ता सत्सौभाग्यसमन्विताम्॥३॥
बिभ्रती कबरीभार मालतीमाल्यसयुताम्। सिन्दूरबिन्दुललिता सार्ध चन्दनबिन्दुभिः॥४॥
कस्तूरीपत्रक गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्। पक्वबिम्बसमानैकचार्वोष्ठपुटमुत्तमम्॥५॥
मुक्तापक्तिप्रभाजुष्टदन्तपक्तिमनोहराम्। सुचारुवक्त्रनयना सकटाक्षमनोरमाम्॥६॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टपादपद्मयुगवराम्। रत्नाभरणसयुक्त कुकुमाक्त सयावकम्॥७॥
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्। सुरसिद्धमुनीन्द्रादिदत्तार्घ्यैस्सयुत सदा॥८॥
तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसयुतम्। मुक्तिप्रद मुमुक्षूणा कामिना स्वर्गभोगदम्॥९॥
वरा वरेण्या वरदा भक्तानुग्रहकातराम्। श्री विष्णो पददात्री च भजे विष्णुपदी सतीम्॥१०॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्तपुराणतो गगाध्यान नाम प्रथमोऽध्याय.॥१॥

श्वेत चम्पा के पुष्प के समान वर्णवाली, सम्पूर्ण पापो को नष्ट करने वाली, भगवान् कृष्ण (विष्णु) के शरीर से समुत्पन्न, एव उन्ही के समान भक्तजनानन्ददायिनी परम सती भगवती गगा का (ध्यान करता हूँ।) अग्नि के समान परम शुद्ध रक्तवर्ण का वस्त्र धारण किए हुए, रत्नजटित आभूपणो से विभूषित, शरत्पूर्णिमा के सौ चन्द्रमा की कान्तियो से सुशोभित शरीर वाली, मन्द मन्द मुस्कान से प्रसन्न मुखवाली, सर्वदास्थिर रहने वाली यौवनावस्था से सुशोभित, परम शान्तिमयी, नारायण की प्रियतमा, परम सौभाग्यशालिनी (का ध्यान करता हूँ।) मनोहर केशो के भार को धारण करने वाली, मालती के पुष्पो से सुशोभित, चन्दन बिन्दु के साथ-साथ सुन्दर सिन्दूर की बिदी से अलकृत (गगा का ध्यान करता हूँ।) कपोल स्थल मे कस्तूरी के बने हुए पत्र एव विविध प्रकार के चित्रो से समलकृत, पके हुए मनोहर बिम्ब के फल के समान निम्न होठ वाली (गगा का ध्यान करता हूँ।) मोतियो की लडी के समान कान्तिवाले मनोहर दाँतो की पक्तियो से मन को हर लेने वाली, सुन्दर मुख एव कटाक्षमय नेत्रो वाली (गगा का ध्यान करता हूँ।) उनके दोनो चरण-कमल स्थल-पद्म (गुलाब) की कान्ति के समान मनोहारी है, सुन्दर रत्नो के आभरण से अलकृत है, कुमकुम एव यावक के रसो से सुशोभित है। देवराज इन्द्र के शिर पर विराजमान मन्दार के मकरन्द के कणो से उस मनोहर चरण की छवि अरुण वर्ण की हो रही है। सुर, सिद्ध, मुनिगण एव महर्षियो से दिये गए अर्घ्य-जल से वे पाद सर्वदा सुशोभित होते रहते है। तपस्वियो के शिर समूह रूप भ्रमरो की पक्तियाँ उस चरण कमल की चारो ओर चक्कर लगाती रहती है। वह मनोहर चरण मुमुक्षुओ को मुक्ति प्रदान करने वाला है, एव कामियो को स्वर्ग तथा भोग प्रदान करने वाला है। परम पूजनीय, वरदान प्रदान करने वाली, भक्तो के ऊपर अनुग्रह करने के लिए सर्वथा तत्पर रहने वाली श्री विष्णु के चरणो मे शरण देने वाली विष्णु-पाद-सम्भूत उस परम सती गगा की मै भक्ति करता हूँ॥१-१०॥

श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण से गगाध्यान नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

गगासहस्रनाम

पार्वत्युवाच

देव देव महादेव भक्ताना प्रीतिवर्धन । कानि नामानि प्रोक्तानि तेन राज्ञा महात्मना ॥१॥
सहस्रनाम गगाया' स्तोत्र परमदुर्लभम् । वद मे देवशार्दूल भक्तास्मि सतत प्रिया ॥२॥

ईश्वरउवाच

साधु साधु महादेवि पृष्ट नामामृत त्वया । गुह्याद्गुह्यतर स्तोत्र प्रवक्ष्यामि समासत' ॥३॥
यस्य स्मरणमात्रेण नरो वै शिवता व्रजेत् । पठनाल्लिखनाच्चैव पूजनात् कि न जायते ॥४॥
श्लोकमेक पठित्वापि गगाया: शतयोजने । गगास्नानफल सद्य प्राप्नुयान्नात्र सशय ॥५॥
सहस्रनामस्तोत्रस्य भगीरथऋषिर्मत । छन्दोऽनुष्टुप् तथा ख्यात गगा वै देवता मता ॥६॥
सर्वत पापनाशार्थे सर्वकामार्थसिद्धये । अक्षयस्वर्गकामाय विनियोग प्रकीतित ॥७॥
गगा सरिद्वरा विष्णुपादाम्बुजजनि परा । शिवशेखरसवासा ब्रह्मण कलशस्थिता ॥८॥
आकाशगामिनी भद्रा चतुरात्मा प्रवाहिनी । ब्रह्मरन्ध्रसमुद्भूता ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनी ॥९॥
ब्रह्मरन्ध्रधरा देवी सर्वकामार्थदायिनी । ब्रह्माडोद्भेदनपरा परब्रह्मधरा परा ॥१०॥
द्रवरूपधरा चैव शिवसगमदायिनी । मुक्तिदा भुक्तिदानङ्गा शत्रुदावानलात्मिका ॥११॥
अनङ्गाङ्गी त्रिमूर्तिश्च ब्रह्माणी कमला स्थिता । सरस्वती च सावित्री जयसेना जयात्मिका ॥१२॥
जयभद्रा वैष्णवी च चिच्छक्ति परमेश्वरी । त्रयी वेदवदान्या च मेदिनी भेदिनी धरा ॥१३॥
वेदमूर्तिस्त्रिमूर्तिश्च देवमूर्तिर्दयापरा । दामिनी दामिनीवासा कुलिशा कुलिशप्रिया ॥१४॥
कुलिशाङ्गी कुलाङ्गा च कुलनाथकुटुम्बिनी । कुलीना सुभगा भाग्या भाग्यगम्या यशोमती ॥१५॥

पार्वती ने कहा—हे महादेव! भक्तो की प्रीति को बढाने वाले! उस महात्मा राजा ने गगा के कौन से सहस्र नाम कहे? मुझे बताओ। वह स्तोत्र अत्यन्त दुर्लभ है किन्तु हे देवशार्दूल! मै तुम्हारी सर्वदा भक्त हूँ तथा तुम मेरे प्रिय हो ॥१-२॥

ईश्वर ने कहा—हे महादेवि! तुम धन्य हो। तुमने तो गुप्त से गुप्त अमृतस्वरूप नामस्तोत्र को पूछा। मै सक्षेप मे ही कहूँगा। जिस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य शिवत्व को प्राप्त होता है उसके पढने, लिखने और पूजन से क्या नही हो सकता? गगा से सौ योजन दूर रह कर मनुष्य इस स्तोत्र का एक श्लोक भी पढ कर गगास्नान के फल को तत्क्षण प्राप्त कर लेता है, इसमे कोई सदेह नही। इस सहस्रनामस्तोत्र के ऋषि भगीरथ कहे गए है। इसका छन्द अनुष्टुप् है और देवता गगा। समस्त पापो को नष्ट करने के लिए, सकल कामो की सिद्धि के लिये और अक्षय स्वर्ग-प्राप्ति के लिए इसका विनियोग है ॥३-७॥

(अब नामावली कहते है) जो गगा, नदियो मे श्रेष्ठ, विष्णु के चरणकमलो से उत्पन्न, शकर की जटा मे निवास करने वाली, ब्रह्मा के कमण्डलु मे रहने वाली, आकाश मार्ग से जाने वाली, भद्रा, चार प्रवाहो मे विभक्त, ब्रह्मरन्ध्र से उत्पन्न, ब्रह्मरन्ध्र मे रहने वाली, ब्रह्माण्ड के उद्भेदन मे तत्पर और परब्रह्म को धारण करने वाली है। जो द्रवरूप को धारण किए हुई है और शिवसगम को देने वाली है। मुक्ति देने वाली, भक्ति देने वाली तथा अनगा है। जिसे अनगागी, त्रिमूर्ति, ब्रह्माणी, कमला, सरस्वती, सावित्री, जयसेना तथा जयात्मिका कहते है। जो जयभद्रा, वैष्णवी, चित्शक्ति,

कला कलाधरधरा कलाधरशतप्रिया। षोडशी षोडशाराध्या षोढान्याससहायिनी ॥१६॥
षोढा समासविलया षोढाङ्गी कालरूपिणी। कालिका मुडमाला च कालाना शतनाशिनी ॥१७॥
कालाङ्गी कालनिलया काली कालेश्वरी वरा। शैवी माया शिवा रुडा चडमुडविनाशिनी ॥१८॥
चडाट्टहासा दुर्गम्या चडाना प्रीतिवर्द्धिनी। चडेश्वरी महाप्राज्ञा प्रसाधी सिद्धिदायिनी ॥१९॥
लक्षलाभस्य जननी शतलाभा सुरेश्वरी। कौमारी शक्तिरुद्दिष्टा क्रौंचदैत्यविनाशिनी ॥२०॥
तारकासुरहन्त्री च तारकामयगामिनी। तारकस्य पराशक्तिस्तारकाणा पतिप्रिया ॥२१॥
तारकेशपरा ज्योत्स्ना तारेशशतरूपिणी। नारायणी दयासिन्धु सिन्धूत्तरनिवासिनी ॥२२॥
सिन्धुश्रेष्ठतमा भार्या रत्नदा रत्नहारिणी। जलन्धरस्य जननी जलन्धरविरूपिणी ॥२३॥
काममाता च कामघ्नी रतिरूपा शतप्रिया। भीष्ममाता महाभीष्मा भीष्माणा प्रीतिवर्द्धिनी ॥२४॥
ज्वाला कराली तुगेशी तुगशेखरवासिनी। तुगेश्वरसहाया च वदर्याश्रमवासिनी ॥२५॥
श्रीक्षेत्रनिलया चैव द्वारस्था द्वारपालिनी। जाह्नवी जह्नुतनया नागालयनिवासिनी ॥२६॥
नागाना जननी चैव नागप्रीतिविवर्द्धिनी। नागेश्वरसहाया च कैलासनिलया तथा ॥२७॥
महाप्रभा वरेण्या च वेदमाता विलासिनी। हरसगरता चैव हरिपादविनि सृता ॥२८॥
अदितिश्च दितिश्चैव कद्रू च विनता तथा। सुरसा चाग्निभार्या च रत्नगर्भा विभावरी ॥२९॥
शारदी वै चन्द्रकला नलकूबरसेविता। अरिष्टनेमिदुहिता नहुषागणवासिनी ॥३०॥
शतनोगृहिणी भव्या वसुमाता कृशोदरी। मत्स्योदरी सुराराध्या सुराणा प्रीतिदायिनी ॥३१॥
यमुना चन्द्रभागा च शतद्रू सरयूस्तथा। सरस्वती शुभामोदा नदनाद्रिनिवासिनी ॥३२॥
नन्दप्रियाङ्गनिलया देवतीर्थनिवासिनी। रुद्राणी रुद्रसावित्री महाभैरवनादिनी ॥३३॥

परमेश्वरी, त्रयी, वेदवन्दित, मेदिनी, मेदिनी को धारण करने वाली, वेदमूर्त्ति, त्रिमूर्त्ति, देवमूर्त्ति, दयापरा, दामिनी, दामिनी के समान वस्त्र वाली, कुलिशा, कुलिशप्रिया, कुलिशागी, कुलागी, कुलीना, भाग्या, भाग्यगम्या, यशोमती तथा कुलनाथ-कुटुम्बिनी है। जिसे कला, कलाधर को धारण करने वाली, कलाधरशतप्रिया, षोडशी, षोडशाराध्या (सोलह विधियो से पूजित), छ न्यास मे सहायिनी, षोढासमासनिलया, षोढागी, कालरूपिणी, कालिका, मुण्डमाला, शतकालो को नष्ट करने वाली, कालागी, काली, कालेश्वरी, शैवी, माया, शिवा, रुण्डा, चण्डमुण्ड को नष्ट करने वाली, चण्ड अट्टहास करने वाली, दुर्गम्य, चण्डो की प्रीति को बढाने वाली, चण्डेश्वरी, महाप्राज्ञा, आराधना करने पर सिद्धि देने वाली, लक्षलाभ को उत्पन्न करने वाली, शतलाभा, सुरेश्वरी, कौमारी शक्ति, उद्दिष्टा, क्रौच-दैत्य-विनाशिनी कहते है ॥८-२०॥

जो तारक राक्षस को मारने वाली, तारकामयगामिनी, तारको की दूसरी शक्ति,प तिप्रिया, तारकेशपरा, ज्योत्स्ना, शतचन्द्रस्वरूपिणी, नारायणी, दयासिन्धु सिन्धु के उत्तर मे रहने वाली, सिन्धु से श्रेष्ठतम, भार्या, रत्न को देने वाली, रत्न का हरण करने वाली, जलन्धर की जननी, जलन्धर को विरूप करने वाली, काम की माता, कामको नष्ट करने वाली, रतिरूपा, शतप्रिया, भीष्म की माता, महाभीष्मा, भीष्मो की प्रीति बढाने वाली, ज्वाला, कराली, तुगेशी, उच्च शिखरपर रहने वाली, तुगेश्वरसहाया तथा बदरिकाश्रम मे रहने वाली है ॥२१-२५॥

जिसे श्रीक्षेत्र मे रहने वाली, द्वारस्था, द्वारपालिनी, जाह्नवी, जह्नुतनया, नागलोक मे रहने वाली, नागो की जननी, नागो की प्रीति को बढाने वाली, नागेश्वरसहाया, कैलाश मे रहने वाली, महाप्रभा, वरेण्या, वेदमाता, विलासिनी, शकर के साथ आनन्दित, हरिचरणो से निकली हुई, अदिति, दिति, कद्रू, विनता, सुरसा, अग्निगर्भा, रत्नगर्भा, विभावरी, शारदी चन्द्रकला, नलकूबरसे सेवित, अरिष्टनेमि की कन्या तथा नहुष के आगण मे रहने वाली कहते है। जो शातनु की गृहिणी, भव्या, वसुमाता, कृशोदरी, मत्स्योदरी, देवताओ से आराध्य, देवताओ को प्रीति देने वाली,यमुना, चन्द्रभागा,

भैरवो भीषणवरा भृगुतुङ्गनिवासिनी । केदारशिखरावासा महावलयवासिनी ॥३४॥
तुङ्गभद्रा सुषेणा च माधातृजयदायिनी । भूतभव्यपरा शर्वाखर्वगर्वा नृपेश्वरी ॥३५॥
भविष्यज्ञानदा भूतज्ञानदा वर्तमानदा । शुक्रस्य जननी सौम्या व्यासमाता सुरेश्वरी ॥३६॥
धारापानधरा धीरा धैर्यदा शुभदायिनी । कङ्कणा कङ्कणप्रख्या शुभकङ्कणदायिनी ॥३७॥
कङ्कणै पातकहरा प्रबला शत्रुनाशिनी । स्मरता मुक्तिदा भुक्तिरूपा रूपविवर्जिता ॥३८॥
देवानीका देवसेव्या सेवारूपफलामला । कृत्तिका कार्तिकावासा कार्तिकस्नानदायिनी ॥३९॥
पुष्करा पुष्करावासा पुष्पप्रचयसुन्दरी । मुनिसेव्या मुनिर्मेना मानवाकारधारिणी ॥४०॥
मैनाकशिखरावासा काशीपुरनिवासिनी । महाप्रयागनिलया तीर्थराजप्रसाधिनी ॥४१॥
अक्षया क्षयरूपा च ससारक्षयकारिणी । मृगशीर्षधरा मार्गशीर्षस्नानफलप्रदा ॥४२॥
पुष्यनक्षत्ररूपा च पौषेऽतीवफलप्रदा । माघी मघायुता माघ्या माघस्नाननिवासिनी ॥४३॥
श्रीपचमी श्रियोरूपा षष्टिचारण्यसञ्ज्ञिता । अचला निश्चला जम्बूर्जम्बूद्वीपसहायिनी ॥४४॥
भीष्माष्टमी भीष्मगर्भा भीष्मपचकसेविता । एकादशी द्वादशी च पुण्यापुण्यसहायिनी ॥४५॥
पुण्यदा पुण्यनिलया पुण्याङ्गी चारुवाहिनी । फाल्गुनी फाल्गुने सेव्या होलिका गन्धरूपिणी ॥४६॥
हुताशनी महादेवी सन्तुष्टा भस्मधारिणी । वसन्तर्तु सुसेव्या च वसन्तोत्सवदायिनी ॥४७॥
चैत्री चित्रा पुष्पगणरूपा गणेश्वरी । मकरन्दस्वरूपा च मकरन्दनिवासिनी ॥४८॥
चैत्रशुक्लप्रतिपदा वर्षारम्भकरा शुभा । माधवी माधवागारा माधवप्रीतिदायिनी ॥४९॥
विशाखा वेणुपापघ्नी वैशाखी भानुसप्तमी । वैशाखस्नानशुभदा पिंडाकरनिवासिनी ॥५०॥

शतद्रु, शरयू, सरस्वती, शुभामोदा, नन्दन पर्वत पर रहने वाली, नन्दप्रिया के अग मे रहने वाली, देवतीर्थ मे रहने वाली, रुद्राणी, रुद्रसावित्री, महाभैरवनाद करने वाली, भरवी, भीषण वर को देने वाली, भृगु के उच्च शिखर पर रहने वाली, केदार के शिखरो पर रहने वाली, महावलयवासिनी, तुगभद्रा, सुषेणा, मान्धाता को जय देने वाली, भूतभव्यपरा, शर्वा, अखर्वगर्वा तथा नृपेश्वरी है ॥२६-३५॥

जिसे भविष्य को बताने वाली, भूत बताने वाली, वर्तमान बताने वाली, शुक्र की जननी, सौम्या, व्यासमाता, सुरेश्वरी धारापानधरा, धीरा, धैर्य देने वाली, शुभ देने वाली, ककणा, ककणसदृशा, शुभ ककण देने वाली, ककणोसे पातको को नष्ट करने वाली, प्रबल शत्रुओ को नष्ट करने वाली, स्मरण करते ही मुक्ति तथा भुक्ति देने वाली, रूपरहित, देवताओ की सेना स्वरूप, देवसेव्या, सेवारूपफलामला, कृत्तिका, कार्तिकावासा, कार्तिक-स्नान को देने वाली, पुष्करा, पुष्कारावासा, पुष्पप्रचय से सुन्दर, मुनियो से सेव्य, मुनियो से माननीय, तथा मानव शरीर को धारण करने वाली कहते है ॥३६-४०॥

जो मैनाक शिखर पर रहने वाली, काशी पुर मे रहने वाली, महाप्रयाग मे निवास करने वाली, तीर्थराज की सेवा करने वाली, अक्षया, क्षय-रूपा, ससार का क्षय करने वाली, मृगशीर्षधरा, मार्गशीर्ष मे स्नान का फल देने वाली, पुष्य नक्षत्र स्वरूप, पौष मास मे अत्यन्त फल देने वाली, माघी, मघायुता, माघ्या माघस्नान मे रहने वाली, श्री पचमी की शोभास्वरूप, षष्टिचारण्य नामवाली, अचला, निश्चला, जम्बू, जम्बूद्वीप की सहायता करने वाली, भीष्माष्टमी, भीष्मगर्भा, भीष्म पचक से सेवित, एकादशी, द्वादशी, पुण्य और अपुण्य मे सहायता करने वाली, पुण्यदा, पुण्य मे रहने वाली, पुण्यागी, सुन्दर वाहन वाली, फाल्गुनी, फाल्गुन मे सेवनीय, होलिका तथा गन्धरूपिणी है ॥४१-४६॥

जिसे हुताशनी, महादेवी, सन्तुष्ट, भस्म को धारण करने वाली, वसन्त ऋतु मे सेवनीय, वसन्तोत्सव देने वाली, चैत्री, चित्रा, पुष्पगण रूप, गणेश्वरी, मकरन्द स्वरूप, मकरन्द मे रहने वाली, वर्षारम्भ करने वाली चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा, माधव की प्रीति देने वाली, माधव स्वरूप, माधवी, विशाखा, वेणु पापघ्नी, वैशाखी सूर्य सप्तमी, पिण्डो के समूह मे रह कर शुभ वैशाख-स्नान देने वाली कहते है ॥४७-५०॥

तथाक्षयतृतीया च · सक्तुदानशुभप्रदा। प्रपा पुण्यप्रदा चैव नित्यस्नानवशीकृता ॥५१॥
ज्येष्ठा ज्येष्ठस्य महती दशपापप्रणाशिनी। निर्ज्जला रूपिणी चैव तथानलशया मता ॥५२॥
आषाढी चारुसर्वाङ्गी तथा हरिशयस्थिता। श्रावणी श्रवणानन्दा सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥५३॥
भद्रा भाद्रपदे सेव्या जन्मा जन्माष्टमी तथा। दूर्वापूजनसन्तुष्टा वीजाङ्कुरनिवासिनी ॥५४॥
आश्विने सुतरा सेव्या पितृभक्तिप्रदायिनी। नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लपक्षस्य पूर्णिमा ॥५५॥
नवरात्रसहाया च कालरात्रिर्महाष्टमी। अश्विनी भौमवारस्य शतरूपा ह्ययोनिजा ॥५६॥
हरसेव्या हराङ्गी च हरमन्दिरगामिनी। प्रमोदा मोदसकल्पा नानारूपा महोदरी ॥५७॥
महानन्दप्रदात्री च नानालङ्कारधारिणी। अलङ्कारप्रिया चैव नानातिथिसमाश्रया ॥५८॥
तिमिङ्गिलवरा स्वच्छा नानाग्रावविदारिणी। गडशैलवहा चैव कामदेवधराम्बरा ॥५९॥
सर्वतीर्थमयी सर्वदेवदानवरूपिणी। काशीप्रातवहा तुच्छप्रवाहा भारनाशिनी ॥६०॥
भरणी भारणाङ्गी च तथ्यातथ्यप्रिया सती। सतीनां प्रथम गण्या गण्या सर्वमयी प्रभु ॥६१॥
धीर्द्धारणावती सर्वजनस्य हृदि संस्थिता। स्थितिरूपा स्थितिधरा स्थिराङ्गी कमलप्रिया ॥६२॥
कुशोच्छिन्नतटा चैव दूर्वाङ्कुरविराजिता। तरङ्गिणी शैवलिनी तरङ्गशतसकुला ॥६३॥
महाकच्छपनिलया कच्छपपृष्ठसंस्थिता। नानाजन्तुधरा प्रोक्ता नानाजन्तुविनाशिनी ॥६४॥
वर्षाकालतरा सौम्या वातकल्लोलकारिणी। तीरस्थशवसञ्छन्ना धन्यानां शववाहिनी ॥६५॥
तरङ्गशतशोभाढ्या तरङ्गशतमालिनी। स्वर्नारीकुचकुम्भस्य कुङ्कुमारुणसुन्दरी ॥६६॥
नानापुष्पोपहारा च सुखसम्पत्तिदायिनी। मन्दाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा सर्वदेवविगाहिनी ॥६७॥
सर्वलोकमयी तन्द्रा तन्त्रशास्त्रविनोदिनी। तन्त्री तन्त्रस्थिता विद्या महादेवकुटुम्बिनी ॥६८॥

जो शुभ सक्तुदान का फल देने वाली अक्षय तृतीया, नित्यस्नान से वशीकृत हो पुण्य देने वाली, ज्येष्ठा, ज्येष्ठ के दश पापो को नष्ट करने वाली निर्जला स्वरूप, अग्निस्वरूप, आषाढी, चारुसर्वांगी, हरिशयन करने वाली, श्रवण को आनन्द देने वाली तथा सर्व सौख्य देने वाली श्रावणी, भद्रा, भाद्रपद मे सेव्य, जन्माष्टमी, दूर्वापूजन से सन्तुष्ट, बीजाकुर मे रहने वाली, आश्विन मे भली प्रकार सेवनीय, कृष्णपक्ष की नवमी तथा शुक्लपक्ष की पूर्णिमा, नवरात्र मे सहायता करने वाली, कालरात्री, महाष्टमी, मगलवार का अश्विनी नक्षत्र स्वरूप, शतरूपा, योनि से अनुत्पन्न है ॥५१-५६॥

जिसे हरसेव्य, हरागी, हर-मन्दिर मे जाने वाली, प्रमोदा, मोदसकल्पा, नानारूपा, महोदरी, महान आनन्द देने वाली, अनेक अलकार दान करने वाली, अलकारप्रिया, अनेक तिथियो मे रहने वाली, तिमि आदि जल-जन्तुओ को धारण करने वाली, अनेक चट्टानो को फोडने वाली, बडे बडे पर्वत के टुकडो को बहाने वाली, आकाशगामिनी, सर्वतीर्थमयी, सब देव और दानव स्वरूपिणी, काशी मे प्रात काल बहने वाली, तुच्छप्रवाहा, और भारनाशिनी कहते है ॥५७-६०॥

जो भरणी, भारणाँगी, तथ्य तथा अतथ्य को प्रिय समझने वाली, सती, सतियो मे प्रथम गणनीय, सर्वमयी, प्रभु, बुद्धि को धारण करने वाली, सब लोगो के हृदय मे स्थित, स्थिति रूप, स्थितिधरा, स्थिरागी, कमलप्रिया, कुशो से उच्छिन्न तट वाली, दूर्वाकुरो मे विराजित, तरगिणी, सेवार से युक्त, सैकडो तरगो से व्याकुल, महाकच्छप पर रहने वाली, कच्छप के पृष्ठ पर बैठी हुई अनेक जन्तुओ को धारण करने वाली, अनेक जन्तुओ को नष्ट करने वाली, वर्षा कालमे सौम्य, वायु से कल्लोल करने वाली, किनारे के प्रेतो से आवृत तथा धन्य लोगो के प्रेत को ढोने वाली है ॥६१-६५॥

जिसे सैकडो तरगो की शोभा से युक्त, सैकडो तरग मालाओ से शोभित, स्वर्गीय स्त्रियो के स्तन-कुम्भ के कुमकुम से अरुण होने के कारण सुन्दर, अनेक पुष्पोपहारो से युक्त, सुख-सम्पत्ति को देने वाली, मन्दाकिनी, नदियो मे श्रेष्ठ, सब देवो ने जिसमे स्नान किया है, सर्वलोकमयी, तन्द्रा, तन्त्र शास्त्र से विनोद करने वा ली, तन्त्री, तन्त्रस्थिता, विद्या, महादेव

सर्वशास्त्रमयी नन्दा वासवेश्वरपालिनी । शाची पुलोमजा तुगा कश्यपस्य प्रिया मता ।।६९।।
सृष्टि सृष्टिकृदाराध्या प्रलये कालरूपिणी । द्वादशादित्यसदृशी प्रभा त्रैलोक्यदीपिका ।।७०।।
त्रिलोकनिलया वेद्या वेदरूपाघमर्दिनी । मणिप्रचयसम्पूज्या मध्याह्नार्कनिवासिनी ।।७१।।
प्रभातारुणसर्वाङ्गी सर्वकामप्रदायिनी । प्रात सन्ध्या तथा प्रोक्ता सन्ध्या मध्याह्निकी मता ।।७२।।
साय सन्ध्या तथा रात्रिसन्ध्या तिमिररूपिणी । निशीथतारका प्रख्या विद्युद्रूपा महोत्सवा ।।७३।।
दु खाना च विहन्त्री च नाना दु खनिवारिणी । विनोदिनी सुकल्लोला सागरस्वननि स्वना ।।७४।।
गम्भीरावर्तशोभाढ्या गम्भीरगजगामिनी । नानापक्षिसमाकीर्णा जलकुक्कुटशोभिता ।।७५।।
जलजारुणसर्वांगी शखवत्कैरवाबरा । कुदश्वेता कुदभूषा श्वेताबरविराजिता ।।७६।।
राजहसपरीवारा तटस्थद्रुमशोभिता । द्रुमाबरा द्रुमावासा वृहद्द्रुमविदारिणी ।।७७।।
पद्मलेखा पद्मसेव्या पद्मा पद्मजपूजिता । लक्ष्मी श्यामा वरारोहा वरागी भुवनेश्वरी ।।७८।।
तारा श्रीर्दानदा धन्या दानवाना विनाशिनी । छिन्नमस्ता च नक्षत्रा योगिनी योगसेविता ।।७९।।
योगगम्या योगिधरा योगिप्रीतिविवर्द्धिनी । योगमार्गरता साध्या साधकाभीष्टदायिनी । ८०।।
सिद्धिदा सिद्धिससेव्या सिद्धपूज्या सुरेश्वरी । साधिका साधना तुष्टा साधकाना प्रियङ्करी । ८१।।
प्रद्युम्नस्यैव जननी प्रद्युम्नशतसुन्दरी । प्रद्युम्नागी सुप्रद्युम्ना वराभयकरा तथा ।।८२।।
वरदा वरसेव्या च वराङ्गी वरवर्णिनी । वनेचरगणाधीशा वनेचरजनप्रिया ।।८३।।
वनेचरान्दृशा हन्त्री वनेचरमन प्रिया । सुखदा सुखसेव्या च शुभाना शतसयुता ।।८४।
बलभद्रसमाभासा बलभद्रप्रिया तथा । बलाराध्या बला वृष्णिबालाना प्रीतिवर्द्धिनी ।।८५।।

की कुटुम्बिनी (स्त्री), सर्वशास्त्रमयी, नन्दा, वासवेश्वरपालिनी, शची, पुलोमजा, तुगा, कश्यप की प्रिया, सृष्टि, सृष्टिकर्ता से आराध्य, प्रलय मे कालस्वरूप और द्वादश सूर्यो के समान त्रैलोक्य को प्रकाशित करने वाली प्रभा के सहित कहते है ।। ६६-७०।।

जो त्रैलोक्य मे रहने वाली, जानने योग्य, वेद स्वरूप, पापो को नष्ट करने वाली, मणियो के समूह से पूजनीय, मध्याह्न के सूर्य मे रहने वाली, प्रभात काल मे सर्वांग से अरुण, सर्व काम को देने वाली, प्रात सध्या स्वरूप, मध्याह्न सध्या स्वरूप, साय सध्या स्वरूप, अभिसध्या स्वरूप, अधकार स्वरूपिणी, रात्रि मे तारका स्वरूप, विद्युत् स्वरूप, महोत्सव स्वरूप, दु खो को नष्ट करने वाली, अनेक प्रकार के दु खो का निवारण करने वाली, विनोदिनी, अत्यन्त कल्लोल करने वाली, समुद्र की आवाज की तरह आवाज करने वाली, गहरे भँवरो की शोभा से युक्त, गजवत् गम्भीरगामिनी, अनेक पक्षियोसे युक्त तथा जलमुर्गो से सुशोभित है ।।७१-७५।।

जिसे लाल कमल की तरह शरीरवाली, शख की तरह स्वच्छ वस्त्र वाली, कुन्द के फूल की तरह श्वेत, श्वेतवस्त्र से शोभित, राजहस के परिवार वाली, तटस्थद्रुमो से शोभित, द्रुमावासा, बडे बडे पेडो को नष्ट कर देने वाली, पद्मलेखा, पद्मसेव्या, पद्मा, ब्रह्मा से पूजित, लक्ष्मी, श्यामा, वरारोहा वरागी, भुवनेश्वरी, तारा, श्री, दान देनेवाली, धन्या, राक्षसोको नष्ट करने वाली, जिनका अस्त कभी नही होता ऐसे नक्षत्र-स्वरूप, योगिनी, योगसेविता, योग से प्राप्त होनेवाली योगियो की प्रीति को बढाने वाली, योगमार्ग मे रत, साध्या और साधक को अभीष्ट देने वाली कहते है ।।७६–८०।।

जो सिद्धि देनेवाली, सिद्धियो से सेवित, सिद्धो से पूज्य, सुरेश्वरी, साधिका, साधना, सन्तुष्ट, साधको का प्रिय करने वाली, प्रद्युम्न की जननी, सौ प्रद्युम्नो के समान सुन्दर, प्रद्युम्न के समान शरीरवाली, हाथो मे वर तथा अभय मुद्रा रखने वाली, वर देनेवाली, वरागी वरसेव्या, अच्छे वर्ण वाली, वनेचरगणो की स्वामिनी, वनेचर लोगो को प्रिय वनेचरो को दृष्टि से मारने वाली, वनेचरो को मन से प्रिय, सुख देने वाली, सुखसेव्या, सैकडो शुभो से युक्त, बलभद्र के समान भासित होने वाली, बलभद्र की प्रिया, बलदेव की आराध्य देवता, बला और वृष्णि वश की कन्याओ की प्रीति बढाने वाली है ।।८१–८५।।

रामा रामप्रिया साध्वी सीतारामसुसेविता। रमणीया सुरम्याङ्गी तथा श्रीरमणप्रिया ॥८६॥
रेवती रैवते गम्या तथा रैवतवासिनी। रतिरूपधरा सुभ्रू नारदी नारदेरिता ॥८७॥
मृदगशतसवाद्या मृदङ्गशतपूजिता। पणवा पणवाकारा पणवेरितशब्दिका ॥८८॥
नानावादित्रकुशला वादित्रशतशोभिता। रससारा रसाकारा शतसारसशोभिता ॥८९॥
सन्धि सन्धिस्वरूपा च सन्धिनिर्णयदीपिका। सन्धिस्वरूपदुर्गम्या स्वरसन्धिस्थिता प्रिया ॥९०॥
शब्दा शब्दस्वरूपा च शब्दशास्त्रप्रमोदिनी। युष्मदस्मत्स्वरूपा च कारका कारकप्रिया ॥९१॥
शब्दसन्धिस्वरूपा च तद्धितप्रत्यया परा। धातुवादरता चैव धातूना सन्धिरूपिणी ॥९२॥
नैय्यायिकी तर्कविद्या तर्काराध्या सुतार्किका। चतु प्रमाणगम्या च द्रव्यरूपा गुणेश्वरी ॥९३॥
कर्मज्ञा कर्मनिलया सामान्या समपूजिता। समवायस्थिता भावरूपा सर्वप्रियङ्करी ॥९४॥
पचविशतितत्त्वज्ञा मीमासकरता तथा। मीमासाशास्त्रनिरता तथा मीमासकप्रिया ॥९५॥
मीमासागम्यरूपा च कर्मब्रह्मप्रचोदिता। साख्या साख्यपरा सख्या साख्यसूत्रप्रमोदिनी ॥९६॥
प्रकृति पुरुपाकारा भिन्नाभिन्नस्वरूपिणी। स्पर्शिनी स्पर्शरूपा च स्पर्श्या चु बकलोहवत् ॥९७॥
पातजलिधरागम्या पतजलिमुनिप्रिया। वेदान्तिनी वेदगम्या वेदान्तप्रतिपादिनी ॥९८॥
वेदान्तनिलया वेद्या वेदान्तिकजनप्रिया। अद्वैतरूपिणी चैव अद्वैतप्रविवादिनी ॥९९॥
अगम्याकाशरूपा च सर्वदेहस्वरूपिणी। वृथा सर्वप्रपंचा च ससारशतसकुला ॥१००॥
ससृतिर्मर्मनिरता धर्मनिष्ठा पुरावरा। धर्मिष्ठा धर्मनिरता धर्मशास्त्रप्रबोधिनी ॥१०१॥
यज्ञीया यज्ञविद्या च यज्ञगम्या जनाधिपा। अश्वमेधादियज्ञाना जननी जानकिप्रिया ॥१०२॥
यज्ञभूमिर्यज्ञदेवी यज्ञाना नाशकारिणी। यज्ञवाटस्थिता यज्ञा हविर्दात्री प्रभजिनी ॥१०३॥

जिसे रामा, रामप्रिया, साध्वी, सीता के स्मरण से सुसेवित, रमणीय, सुरम्यागी, श्रीरमणप्रिया, रेवती, रैवत पर्वत पर प्राप्य, रैवत पर्वत पर रहने वाली, रति रूप को धारण की हुई, सुभ्रू, नारदी, नारद से प्रेरित, सैकडो मृदगो से सवाद्य, सैकडो मृदगो से पूजित, पणवा, ढोल के समान आकार वाली, ढोल से प्रेरित है शब्द जिसका, अनेक वाद्यो मे कुशल, सैकडो वाद्यो से शोभित, रससारा, रसाकारा, सैकडो सारस पक्षियो से शोभित, सन्धि, सन्धिस्वरूपा, सन्धिनिर्णय की दीपिका, सधि स्वरूप के कारण दुर्गम स्वर सन्धि मे स्थित तथा प्रिय कहते है ॥८६-९०॥

जो शब्दा, शब्दस्वरूपा, व्याकरण मे प्रमोद करने वाली, युष्मद् अस्मत्स्वरूपा, कारक स्वरूप, कारकप्रि य,शब्दसन्धि स्वरूप, तद्धित प्रत्यय स्वरूप, धातुवाद मे रत, धातुओ की सधिस्वरूप, नैय्यायिकी, तर्कविद्या, तर्क से आराध्य, सुतार्किक, चार प्रमाणो से गम्य, द्रव्यरूप, गुणेश्वरी, कर्मज्ञा, कर्म मे वास करने वाली,सामान्य, समपूजित, समवाय मे स्थित, भावरूप,सबका प्रिय करने वाली, पचविशति तत्त्वो को जानने वाली, मीमासको पर प्रेम रखने वाली, मीमासाशास्त्र मे रत तथा मीमासाको को प्रिय है। ॥९१-९५॥

जिसे मीमासागम्यरूपा, कर्मब्रह्म से प्रेरित, साख्या साख्यपरा, सख्या, साख्य सूत्रो से प्रसन्न होने वाली, प्रकृति, पुरुषाकारा, भिन्न तथा अभिन्न स्वरूप वाली, स्पर्शिनी, स्पर्श रूप, चुम्बक लौह की तरह स्पर्श्य, पतजलि को धारण करने वाली, पतजलि मुनि को प्रिय, वेदान्तिनी, वेदगम्या, वेदान्त का प्रतिपादन करने वाली, वेदान्त निलया, वेद्या, वेदान्ति जनो की प्रिय, अद्वैतरूपिणी, अद्वैत की प्रेरणा करने वाली, अगम्या, आकाश रूप को धारण की हुई, सब के शरीर मे वर्तमान, सर्व प्रपच को वृथा बताने वाली तथा सैकडो ससारो से युक्त कहते है ॥९६-१००॥

जो ससृति, मर्म मे निरत, धर्मनिष्ठ, पुरा, अवरा धर्मिष्ठ, धर्मनिरत, धर्मशास्त्र का बोध कराने वाली, यज्ञीय, यज्ञ विद्या, यज्ञगम्य, जनाधिप, अश्वमेधादि यज्ञो की जननी, जानकी की प्रिय, यज्ञभूमि, यज्ञदेवी, यज्ञो का नाश करने वाली,

वाग्वाहारा वायुसेव्या शीतवातमनोहरी । ललना सरला पूर्वा दक्षिणा वारुणी तथा ॥१०४॥
कौवेरी च तथा शैवी आग्नेयी नैर्ऋती तथा । मारुती नन्दिनी चैव नन्दनारण्यवासिनी ॥१०५॥
पातालनिलया सौम्या बोधी बुद्धकुलोद्भवा । राजनीतिर्दण्डनीतिस्त्रयीवार्तापरायणा ॥१०६॥
स्वाहा स्वधा वषट्कारा ओङ्कारसदृशी च या । नारिकेलप्रिया खर्जूरप्रिया रोगविनाशिनी ॥१०७॥
जगदाधाररूपा च रूपेणाप्रतिमा तथा । भद्रकालस्वरूपा च मधुकैटभनाशिनी ॥१०८॥
योगमाया महामाया निद्रा तन्द्रा प्रवासिनी । नित्यानन्दस्वरूपा च सुधामात्रा त्रिधात्मिका ॥१०९॥
निःप्रपञ्चा निराधारा खड्गचर्मधरा सरित् । वनौकसारा सवना अलका चामरावती ॥११०॥
भोगा भोगवती चैव यमसंयमनी कृपा । ईर्ष्यासूया तथा निंदा तितिक्षा क्षान्तिरार्जवम् ॥१११॥
दुर्गा दुर्गतमा दुर्गवासिनी वासवप्रिया । चन्द्रानना चन्द्रवती तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥११२॥
त्रिपुरा त्रिपुरेशानी त्रिपुरेशी त्रिनेत्रका । त्रिपुरध्वंसिनी चित्रा नित्यक्लिन्ना भगेश्वरी ॥११३॥
शुभगा शुभगाराध्या भर्गपूजनतत्परा । सुवासिन्यर्चनप्रीता सुवासा सुमनोहरा ॥११४॥
सुप्रकाशा सुराराध्या शोभना शुम्भनाशिनी । रजोगुणविनिर्मुक्ता निर्मुक्ता मुक्तिदायिनी ॥११५॥
निःप्रकाशा निराधारा साधारा गुणसंयुता । गम्भीरवेदिनी सौरी तपनी तपनप्रिया ॥११६॥
अम्भोजिनी पुरारातिसेव्या तु सुरभिस्वरा । नादिनी सुनदा नदी अम्बिका अम्बिकेश्वरी ॥११७॥
त्रिमार्गगा त्रिवलिनी त्रिजिह्वा त्रितयात्मिका । त्रिनदा त्रिप्रिया चैव अनसूया त्रिमालिनी ॥११८॥
त्रिपादिका त्रितन्त्री च तन्त्रशास्त्रप्रमोदिनी । मन्त्रज्ञा मन्त्रनिलया मन्त्रसाधनतत्परा ॥११९॥
मन्त्राणी मन्त्रसुभगा मन्त्रजाप्यजला विभु । रक्तदन्ती रक्ततुण्डा रक्तबीजविनाशिनी ॥१२०॥

यज्ञ के मार्ग पर स्थित, यज्ञा, हवि को देने वाली, प्रभंजिनी, वायु भक्षण करने वाली, वायुसेव्या, शीतवात से मनोहर, ललना, सरला, पूर्वा, दक्षिणा, वारुणी, कौवेरी, शैली, आग्नेयी, नैर्ऋती, मारुती, नन्दिनी तथा नन्दनारण्य मे रहने वाली है ॥१०१-१०५॥

जिसे पातालनिलया, सौम्य, बोधी, बुद्धकुल मे उत्पन्न, राजनीति, दण्डनीति, त्रयीवार्तापरायण, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारस्वरूप, ओंकारसदृश, नारिकेलप्रिय, खर्जूरप्रिय, रोगविनाशिनी, जगदाधाररूप, स्वरूप से अप्रतिम, भद्रकाल स्वरूप, मधुकैटभ नामक दैत्य को नष्ट करने वाली, योगमाया, महामाया, निद्रा, तन्द्रा, प्रवासिनी, नित्यानन्दस्वरूप, सुधामात्रा, त्रिधाभूत, प्रपंच रहित, निराधार, चर्मखड्ग को धारण करने वाली नदी, वन मे रहने वाली, वन मे नृत्य करने वाली, अलका, तथा अमरावती कहते है ॥१०६-११०॥

जो भोगा, भोगवती, कृपा, यमका संयमन करने वाली, ईर्ष्या, असूया, निन्दा, तितिक्षा, शान्ति, आर्जव, दुर्गा, दुर्गतमा, दुर्गवासिनी, वासवप्रिय, चन्द्रानना, चन्द्रवती, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरा, त्रिपुर की स्वामिनी, त्रिपुरेशी, त्रिनेत्रक, त्रिपुर का ध्वंस करने वाली, चित्रा नित्यक्लिन्न, भगेश्वरी, शुभगा, शुभगो से आराध्य, शंकर की पूजा मे तत्पर सुवासिनियो की पूजा से प्रसन्न होने वाली, सुगंध युक्त, सुमनोहर, सुप्रकाशा, देवताओ से आराध्य, शोभना, शम्भु को नष्ट करने वाली, रजो गुण से मुक्त, निर्मुक्त तथा मुक्ति देने वाली है ॥१११-११५॥

जिसे निःप्रकाश, निराधार, साधार, गुणसंयुता, गम्भीरवेदिनी, सौरी, तपनी, तपनक्रिया, अम्भोजिनी, पुरारातिसेव्य सुरभि स्वरा, नादिनी, सुनदा, नदी, अम्बिका अम्बिकेश्वरी, त्रिमार्गगा, त्रिवलिनी, त्रिजिह्वा, त्रितयात्मिका, त्रिनन्दा, त्रिप्रिया, अनसूया, त्रिमालिनी, त्रिपादिका, त्रितन्त्री, तन्त्रशास्त्र से आनन्दित होने वाली, मन्त्रज्ञ, मन्त्रनिलय, मन्त्रसाधन मे तत्पर, मन्त्राणी, मन्त्रसुभग, मन्त्र से उत्पन्न होने पर भी जल रहित, विभु, लाल दांत वाली, लाल मुह वाली तथा रक्तबीज को नष्ट करने वाली कहते है ॥११६-१२०॥

रक्ताम्बरधरा रक्ता रक्ताक्षी रक्तवर्जिता । रक्ततृप्ता रक्तहरा रक्तस्य वृद्धिदायिनी ॥१२१॥
हरिताभा हरिद्राभा हरिद्रागन्धपूजिता । हरिद्रारससपूज्या हरिद्राङ्गी हरित्स्थिता ॥१२२॥
पीताबरधरानता पीतगधसुवासिनी । कर्बुरागीकर्बुरा च कर्बुराभःप्रपूजिता ॥१२३॥
कनकाभा श्यामरूपा कामरूपधरा धरा । कामरूपस्थिता विद्या कामरूपनिवासिनी ॥१२४॥
पीठगा पीठसपूज्या पीठस्था पीठवासिनी । स्वर्णपीठासना पीठा सर्वपीठप्रपूजिता ॥१२५॥
राजराजेश्वरी माला राजराजधनाधिपा । कुबरगृहसपच्च यक्षगधर्वसेविता ॥१२६॥
विद्याधरगणाधीशा विद्याधरप्रपूजिता । यक्षविद्या देवविद्या दैत्यविद्या विदेहिका ॥१२७॥
शुक्रमाता शुक्रसेव्या शुक्र.स्तगता तथा । सजीवनामृता विद्या कचगा कचसेविता ॥१२८॥
देवयानी च शर्मिष्ठा शर्मदा शर्मभाविनी । सुरा सर्पिस्तथा माध्वी मदविह्वललोचना ॥१२९॥
सर्वभक्ष्या सर्वगम्या सर्वस्वर्गप्रदायिनी । छदोमाता पिङ्गलाक्षो सूत्रपिगलदीपिका ॥१३०॥
वृत्ता वृत्तप्रिया मदा पापाना शतमर्दिनी । जगती पृथ्वी आर्या अनुष्टुप् त्रिष्टुबुष्णिका॥१३१॥
स्रग्धरा स्रग्धरा चैव माल्या माल्यप्रिया सुधी । निर्ममा निरहङ्कारा निर्मोहा मोहवर्जिता ॥१३२॥
मोहनाशकरा कार्या सर्वकार्यकरी मता । मोहिनी मोहवलया महावलयसुन्दरी ॥१३३॥
सुमेरुशिखरावासा सुमेरुगृहपूजिता । सुमेरुमालिनी सुदा सुमुखी सुमुखप्रिया ॥१३४॥
वैनायिकी विघ्नहरी दुष्टविघ्नकरीश्वरी । मुक्ताबरा मुक्तकेशी मत्तमातगगामिनी ॥१३५॥
ज्वालाकरालवदना ज्वलनागी जलोदरी । जलपूरितसर्वाङ्गी जलेश्वरप्रपूजिता ॥१३६॥
जलेश्वरजनिर्जाया जालपा जालशोभिता । वृ दा वृ दाधिपा वृ दसेविका वृन्दवृक्षिका ॥१३७॥

जो रक्त वस्त्र धारण करने वाली, रक्तरूपा, रक्तनेत्रा, रक्तवर्जिता, रक्त से तृप्त होने वाली, रक्तहरा, रक्त को बढाने वाली, हरित वर्ण की शोभा से युक्त हरिद्रा के वर्ण के समान चमकने वाली, हरिद्रा के गध से पूजित, हरिद्रा के रस से पूजित होने योग्य, हरिद्रा की तरह अग वाली, दिशाओ मे वर्तमान, पीताम्बर को धारण की हुई अनन्त, पीतगध से सुवासित, विविध वर्ण के शरीर वाली, कर्बुरा, चित्र विचित्र वर्ण वाले जल से पूजित, कनकाभा, श्यामरूपा, कामरूपको धारण की हुई, काम रूप मे स्थित, कामरूपनिवासिनी, विद्या, पीठगा, पीठसपूज्य, पीठस्था, पीठवासिनी, स्वर्णपीठ पर बैठी हुई और सर्व पीठो से पूजित मुख्य पीठ के समान है ॥१२१-१२५॥

जिसे राजराजेश्वरी, माला, राजराजधनाधिपा, कुबेर के गृह की सपत्ति, यक्ष तथा गधर्वो से सेवित, विद्याधरगणो की स्वामिनी, विद्याधरो से पूजित, शरीररहित, यक्षविद्या, देवविद्या, दैत्यविद्या, शुक्रमाता, शुक्र से सेवित, शुक्रहस्तगत, सजीवन करने वाली अमृत विद्या, कचगा, कच से सेवित, देवयानी, शर्मिष्ठा, शर्मदा, शर्मभाविनी, सुरा, सर्पिष (घृत स्वरूप) माध्वी, मद से विह्वल नयन युक्त, सवभक्ष्या, सर्वगम्या, सब को स्वर्ग देने वाली, छन्दो की माता, पिगल (छन्दशास्त्र) स्वरूप नेत्र वाली तथा पिगल सूत्रो को प्रकाशित करने वाली कहते है ॥१२६-१३०॥

जो वृत्ता, वृत्तप्रिया, मन्द, सो पापो को नष्ट करने वाली, जगती, पृथ्वी, आर्या, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिका, स्रग्धरा, (माला को धारण की हुई) स्रग्धरा (छन्द स्वरूप) माल्या, माल्यप्रिया, निर्मम, निरहकारा, निर्मोह, मोहवर्जित, मोह का नाश करने वाली, कार्य स्वरूप, सब कार्यो को करने वाली, मोहिनी, मोहवलय युक्त, महान वलय से सुन्दर, सुमरु के शिखर पर रहने वाली, सुमरु गृह मे पूजित, सुमेरु मालिनी, सुन्दा, सुमुखी, सुमुखप्रिय, वैनायकी, विघ्नहरी, दुष्टो के लिए विघ्न करन वाली मोतियो के समान स्वच्छवस्त्र युक्त, मुक्तकेशी तथा मत्त हाथी की तरह चलने वाली है ॥१३१-१३५॥

जिसे ज्वाला, कराल मुख वाली, ज्वलनागी, जलोदरी, जलपूरित सर्वाग वाली, जलेश्वर (वरुण) से पूजित, जलेश्वर से उत्पन्न स्त्री स्वरूप, जालपा, जालशोभित, वृन्दा, वृन्दाधिपा, वृन्द (देव समूह) की सेविका, अनेक वृक्षो से युक्त, त्वक्

त्वचः त्वचाविहीना च पल्वला पल्वले स्थिता। मीना मीनसहाया च मीनध्वजविमर्दिनी ॥१३८॥
वडिशा बडिशाकारा धीवरा धीवरात्मजा। पारिजातप्रसूनाभा पारिजातप्रपूरिता ॥१३९॥
पारिजाततटापारा कामधेनुर्विहङ्गमा। भेरुडा गरुडा गौडी गुडनैवेद्यवासिनी ॥१४०॥
जातमात्रहरा जाता जातगम्या सुजातिका। कालिन्दी कालतनया कला षोडशिका तथा ॥१४१॥
दशमी विजया नाम राज्ञा वै जगदायिनी। युद्धश्रीर्विजया नाम युद्धाङ्गणनिवासिनी ॥१४२॥
मासरक्ताशना चडी प्रचडा शिववल्लभा। शिवदा मथुरावन्ती काची द्वारावती तथा ॥१४३॥
सरित्पतिप्रिया शुद्धा गगासागरसगमा। प्रद्युम्नपूजिता चचुचद्रिका चडसुन्दरी ॥१४४॥
चपा चपकपुष्पाग्रा चपकाभा सुचैलिका। चचत्तरगा सर्वाद्या सर्वब्राह्मणपूजिता ॥१४५॥
ब्राह्मणी ब्राह्मणाकारा ब्राह्मणै शुभसवृता। यज्ञोपवीतिनी विप्रा कुमारी बृहदानना ॥१४६॥
बृहस्पतिप्रपूज्या च गुरुगीगुरुतत्परा। गुरुप्रीतिगुरोर्विद्या गुरुपूजनतत्परा ॥१४७॥
गुर्विणी गुरुगम्या च गयासुरविनाशिनी। पचक्रोशी पचहीना पचमी पचसुन्दरी ॥१४८॥
पचेषु. पचनिलया पचास्या पचमात्मिका। पचपाण्डवमाता च कुती कुन्तधराकरा ॥१४९॥
तथा कुन्तलशोभाढ्या प्रमथा प्रमथा तथा। स्वतन्त्रकर्त्री कार्यघ्नी द्वितीया कर्मसस्थिता ॥१५०॥
तृतीया करणे गम्या सम्प्रदाने चतुर्थिका। अपादाने पचमी च तथा सम्बन्धषष्ठिका ॥१५१॥
सप्तम्यधिकरणाख्या विभक्तिवरदातुरा। प्रतिबधस्य जननी औषधी वैद्यजीवनी ॥१५२॥
हरीतकी च शुठी च कणा हसपदी तथा। हुसेनी हुक्कृतिर्हुवा गौरार्या वृषभात्मिका ॥१५३॥

त्वक् विहीन, पल्वल (छोटा तालाब) पल्वल स्वरूप, पल्वल मे स्थित, मीना, मीनसहाया, मीनध्वज को नष्ट करने वाली, वडिशा, वडिश के समानस्वरूप वाली, धीवर स्वरूप धीवरात्मजा, पारिजात के फूलो की तरह आभा वाली, पारिजात से पूरित, दोनो तटो पर पारिजात के वृक्षो से शोभित, कामधेनु स्वरूप, आकाश मे गमन करने वाली (विहगमा) भेरुण्डा, गरुडा, गौडी, तथा गुड के नैवेद्य से सतुष्ट होने वाली कहते है ॥१३६-१४०॥

जो उत्पन्न होते ही हरण की गई, जातगम्या, सुजातिका, कालिन्दी, कालतनया, षोडशिका, कला, राजाओ को जय देने वाली, विजया दशमी, युद्धागण मे बहने वाली, विजया नाम की युद्धश्री, मास रक्त को खाने वाली शिवप्रिया, प्रचण्डा, शिव को प्राप्त कराने वाली, मथुरा, अवन्ती, काञ्ची तथा द्वारावती स्वरूप, सरित्पति (समुद्र) की प्रिया, गगासागर से मिली हुई, प्रद्युम्न से पूजित, चञ्चुचन्द्रिका, चडसुन्दरी, चम्पा, चम्पक पुष्प के अग्र भाग पर रहने वाली, चम्पक की तरह आभा वाली, सुन्दर वस्त्रो से शोभित, चञ्चल तरगो से युक्त, प्राणिमात्र मे प्रथम तथा सब ब्राह्मणो से पूजित है ॥१४१-१४५॥

जिसे ब्राह्मणी, ब्राह्मणाकारा, ब्राह्मणो से घिरी हुई, यज्ञोपवीत को धारण की हुई, विप्र स्वरूप, कुमारी, वृहद् मुख वाली, वृहस्पति से पूज्य, गुरुवाणी स्वरूप, गुरु कार्य मे तत्पर, गुरुप्रीति स्वरूप, गुरुविद्या स्वरूप, गुरुपूजन मे तत्पर, गुरुपत्नीस्वरूप, गुरुगम्य, गयासुर को नष्ट करने वाली, पचक्रोशी, पचहीन, पचमी, पचसुन्दरी, पचेषु, पचनिलया, पाच मुख वाली, पचमात्मिका, पाचो पाण्डवो की माता कुन्ती, कुन्त (भाले) को हाथ मे ली हुई, कुन्तल (केश) से शोभित प्रमथा, स्वतत्र करने वाली, कार्य को नष्ट करने वाली, कर्म मे स्थित द्वितीया कहते है ॥१४६-१५०॥

जो करण (साधन) मे प्राप्त होने वाली तृतीया, सम्प्रदान मे चतुर्थी, अपादान मे पचमी, सम्बन्ध मे षष्ठी, अधिकरण मे सप्तमी विभक्ति रूप, वर देने के लिए आतुर, रोग का प्रतिबन्ध करने वालो की माता, वैद्यो का जीवन देने वाली औषधि, हरीतकी (हर्रे), शुण्ठी (सोठ), हसपदी, कणा, हुसेनी, हुक्कृति, हुवा, गो, आर्या, वृषभ स्वरूप गोस्तनी, निम्नगा, निम्बा, नारदादिको

गोस्तनी निम्नगा निबा नारदादिभिरर्चिता । रेणुका रेणुतनया रजोनाशनतत्परा ।।१५४।।
पापराशिहरा मत्री तथा नीरजशोभना । जया रिक्ता सुषेणा च केदारपथगामिनी ।।१५५।।
जलयत्रामरी कंदा कन्दमूलफलाशिनी । पितृमाता पितृपूज्या पितृणा स्वर्गदायिनी ।।१५६।।
भगीरथकृपा सिन्धुर्भवानी भवनाशिनी । सागरस्वर्गदा चैव सर्वससारगामिनी ।।१५७।।

ईश्वर उवाच

नाम्ना सहस्रमाख्यानं गगाया.सर्वकामदम् । यस्तु वै पठते नित्य मुक्तिभागी भवेन्नर ।।१५८।।
पुत्रार्थी लभते पुत्र भगीरथसम द्रुतम् । विद्यार्थी लभते विद्या वाचस्पतिसमो भवेत् ।।१५९।।
श्राद्धे शृणोति यो भक्त्या पठते वै समाहित । दुर्गता अपि पितरो मुक्ति गच्छन्त्यनामया ।।१६०।।
तथा दशहराया हि गगामध्ये स्थित पुमान् । पठते प्रत्यह देवि तस्य मुक्तिर्न सशय ।।१६१।।
इति श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्डतो भगीरथोपाख्याने गगावतरणे द्वितीयोऽध्याय ।।२।।

से पूजित, रेणुका, रेणुतनया रजोगुण को नष्ट करने मे तत्पर, पापराशि को नष्ट करने वाली मन्त्रयुक्त कमलो से शोभित जया, रिक्ता, सुषेणा, तथा केदार युक्त (कीचड) मार्ग से चलने वाली है।।१५१-१५५।।

जिसे जलयन्त्र की देवता, कन्दा, कन्दमूल तथा फल खाने वाली पितृमाता, पितृपूज्य, पितरो को स्वर्ग देने वाली, भगीरथ की कृपा स्वरूप, सिन्धु, भवानी, भव (ससार) को नष्ट करने वाली, सगर के पुत्रो को स्वर्ग देने वाली तथा सम्पूर्ण ससार मे गमन करने वाली कहते है।।१५६-।।

ईश्वर ने कहा—इच्छित फल को देने वाले गगा के सहस्र नाम मैंने तुम्हे बताये। इसका जो नित्य पाठ करता है वह अवश्य ही मुक्त हो जाता है। पुत्र की इच्छा करने वाले को शीघ्र ही भगीरथ के समान पुत्र प्राप्त होता है। विद्यार्थी विद्या को प्राप्त करता है और बृहस्पति के समान हो जाता है। श्राद्ध के समय जो मनुष्य स्थिर चित्त से इसे पढता अथवा सुनता है, उसके अत्यन्त दुर्गति मे प्राप्त हुए भी पितर पापरहित हो कर स्वर्ग मे चले जाते है। इसीप्रकार दशहरे मे (ज्येष्ठ शु० प्रतिपदा से १० तक) जो मनुष्य गगाजल मे खडा हो कर इस सहस्रनाम का पाठ प्रतिदिन करता है उसकी निश्चित ही मुक्ति हो जाती है।।१५८-१६१।।

श्री स्कन्द पुराणान्तर्गत केदार खण्ड से भगीरथोपाख्यान के गगावतरण मे गगासहस्रनाम नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।।२।।

तृतीयोऽध्यायः

गगास्तोत्र

शिवसगीतसमुग्धश्रीकृष्णाङ्गे द्रवोद्भवाम् । राधाङ्गद्रवसम्भूता ता गङ्गा प्रणमाम्यहम् ॥१॥
या जन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमडले । सन्निधाने शकरस्य ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥२॥
गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे । कार्तिकीपूर्णिमाजाता गङ्गा प्रणमाम्यहम् ॥३॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा तत । समावृता या गोलोक ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥४॥
षष्टिलक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । समावृता या वैकुठ ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥५॥
विंशलक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । आवृता ब्रह्मलोक या ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥६॥
त्रिंशल्लक्षैर्योजनैर्या दैर्घ्ये पचगुणा तत । आवृता शिवलोक या ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥७॥
षड्योजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा तत । मन्दाकिनी येन्द्रलोके ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥८॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा तत । आवृता ध्रुवलोक या ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥९॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता तत । आवृता चन्द्रलोक या ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥१०॥
योजनै षष्टिसाहस्रै दैर्घ्ये दशगुणा तत । आवृता सूर्यलोक या ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥११॥
लक्षयोजविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता तत । आवृता सत्यलोक या ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥१२॥
दशलक्षै योजनैर्या दैर्घ्ये पचगुणा तत । आवृता या तपोलोक ता गगा प्रणमाम्यहम् ॥१३॥
सहस्रयोजना याच दैर्घ्ये सप्तगुणा तत. । आवृता जनलोक या ता गंगा प्रणमाम्यहम् ॥१४॥

शकर के सगीत से मोहित श्रीकृष्ण के अगद्रव से उत्पन्न तथा राधा के अगद्रव से उत्पन्न गगा को प्रणाम करता हूँ। जो ससार के प्रारम्भ मे गोलोक मे रास होते समय शकर के विद्यमान रहने पर उत्पन्न हुई उस गगा को मै प्रणाम करता हूँ। गोप और गोपियो से युक्त शुभ राधा-महोत्सव के समय कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन उत्पन्न गगाजी को प्रणाम करता हूँ। गोलोक मे जो गगा कोटि योजन चौडी है और लम्बाई मे लाख गुना अधिक है, उस गगा को मै प्रणाम करता हूँ। जिस नदी ने वैकुण्ठ को साठ लक्ष योजन चौडाई से तथा उसकी चौगुनी लम्बाई से घेर रक्खा है उस गगा को मै प्रणाम करता हूँ॥१-५॥

जिस गगा ने बीस लक्ष योजन चौडाई से तथा उसकी चौगुनी लम्बाई से ब्रह्मलोक को घेर रखा है उसे मै प्रणाम करता हूँ। जिसने तीस लक्ष योजन चौडाई से तथा उसकी पँच गुनी लम्बाई से शिवलोक को घेर रखा है उस गगा को प्रणाम करता हूँ। जो मन्दाकिनी नाम से इन्द्र लोक मे प्रसिद्ध है और छ योजन चौडी और साठ योजन लम्बी है उस गगा को प्रणाम करता हूँ। जो लक्ष योजन चौडी तथा उससे सातगुनी लम्बी हो कर ध्रुव लोक को घेरे हुई है उस गगा को प्रणाम करता हूँ। लक्ष योजन चौडी तथा उससे छ गुनी लम्बी हो कर चन्द्रलोक को जिसने घेर रखा है उस गगा को प्रणाम करता हूँ॥६-१०॥

साठ हजार योजन चौडी तथा उससे दश गुनी लम्बी हो कर जिसने सूर्य लोक को घेर रखा है उस गगा को प्रणाम करता हूँ। जो चौडाई मे एक लाख योजन हो कर लम्बाई मे उससे छ गुनी हो कर सत्य लोक को घेरे हुई है उस गगा को प्रणाम करता हूँ। जो चौडाई मे दश लाख योजन है और लम्बाई मे उससे पाच गुनी है इस प्रकार जिसने तपो लोक को घेर रखा है उस गगा को प्रणाम करता हूँ। जो हजार योजन चौडी है और सात हजार योजन लम्बी है इस प्रकार

सहस्रयोजनाऽयामे दैर्घ्ये, सप्तगुणा ' तत' । आवृता यात्र कैलास ता गगा प्रणमाम्यहम् ।।१५।।
पाताले या भोगवती विस्तीर्णा दशयोजना । ततो दशगुणा दैर्घ्ये ता गगा प्रणमाम्यहम् ।।१६।।
क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा तत क्षीणा न कुत्रचित् । क्षितौ चालकनन्दा या ता गगा प्रणमाम्यहम् ।।१७।।
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसन्निभा । द्वापरे चन्दनाभा च ता गगा प्रणमाम्यहम् ।।१८।।
जलप्रभा कलौ याच नान्यत्र पृथिवीतले । स्वर्गे च नित्य क्षीराभा ता गगा प्रणमाम्यहम् ।।१९।।
यस्या प्रभाव अतुल पुराणे च श्रुतौ श्रुत । या पुण्यदा पापहर्त्री ता गगा प्रणमाम्यहम् ।।२०।।
यत्तोयकणिकास्पर्श' पापिना च पितामह । ब्रह्महत्यादिक पाप कोटिजन्मार्जित दहेत् ।।२१।।
इत्येव कथित ब्रह्मन् गगापद्यैकविशतिम् । स्तोत्ररूप च परम पापघ्न पुण्यबीजकम् ।।२२।।

इति श्री ब्रह्मवैवर्तपुराणतो गगास्तोत्र नाम तृतीयोऽध्याय ।।३।।

जन लोक को घेरने वाली गगा को प्रणाम करता हू । सहस्र योजन की चौडाई से तथा उसकी सात गुनी लम्बाई से कैलाश को घेरने वाली गगा को प्रणाम करता हूँ ।।११-१५।।

जो पाताल मे भोगवती नाम से प्रसिद्ध है चौडाई में दश योजन तथा लम्बाई मे सौ योजन है उस गगा को प्रणाम करता हूँ। एक कोसमात्र चौडी पृथ्वी पर अलकनन्दा नाम से विख्यात गगा को प्रणाम करता हूँ। यह एक कोस से कही भी कम नही है। सत्य युग मे जो दुग्ध वर्ण की थी , त्रेता मे चन्द्र के समान थी, द्वापर मे चन्दन की तरह थी उस गगा को प्रणाम करता हूँ। कलियुग मे इसी के जल की प्रभा पृथ्वी पर है और किसी की नही। स्वर्ग मे नित्य जो दुग्ध वर्ण की है उस गगा को प्रणाम करता हूँ ।।१६-२०।।

जिसके जलकण के स्पर्श से हे पितामह ! करोडो जन्म का ब्रह्महत्यादिक पाप नष्ट हो जाता है। हे ब्रह्मन् ! इक्कीस पद्य का यह स्तोत्र मैने कहा। यह पाप को नष्ट करने वाला तथा पुण्य को देने वाला है ।।२१-२२।।

श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण से गगास्तोत्र नामक तृतीय अध्याय समाप्त ।।३।।

चतुर्थोऽध्यायः

श्री गगादशहरास्तोत्रम्

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्या हस्तसयुते । गगातीरे तु पुरुषो नारी वा भक्तिभावत ।।१।।
निशाया जागर कुर्याद्गगादशविधिर्हरे । पुष्पै सुगन्धै नैवेद्यै फलैर्दशदशोन्नतै ।।२।।
प्रदीपैर्दशनिधूपैर्दशाङ्गै गरुडध्वज । पूजयेच्छ्रद्धया धीमान् दशकृत्वो विधानतः । ३।।
साज्यास्तिलान् क्षिपेत्तोये गगाया प्रभृतीर्दश । गुडसक्तुमयान् पिण्डान् दद्याच्च दशमत्रत ।।४।।
नम शिवायै प्रथम नारायण्यै पद तत । दशहरायै पदमिति गगायै मन्त्र एष वै ।।५।।
स्वाहात' प्रणवादिश्च भवेद्विशाक्षरो मनु । पूजा दान जपो होमोऽनेनैव मनुना स्मृत ।।६।।
हेम्ना रूप्येणत्वा शक्त्या गगामूर्ति विधाय च । वस्त्राच्छादितवक्त्रस्य पूर्णकुम्भस्य चोपरि ।।७।।
प्रतिष्ठाप्यार्चयेद्देवी पचामृतविशोधिताम् । चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च नदीनदनिषेविताम् ।।८।।
लावण्यामृतनिष्यन्द सशीलद्गात्रयष्टिकाम् । पूर्णकुभसिताभोजवरदाभयसत्कराम् ।।९।।
ततो ध्यायेच्च सौम्या तु चन्द्रायुतसमप्रभाम् । चामरैर्वीज्यमाना च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम् ।।१०।।
सुधाप्लावितभूपृष्ठा दिव्यगन्धानुलेपनाम् । त्रैलोक्यपूजितपदा देवर्षिभिरष्टुताम् ।।११।।
ध्यात्वा समर्च्य मन्त्रेण धूपदीपोपहारत : मा च त्वा च विधि ब्रध्न हिमवन्त भगीरथम् ।।१२।।
प्रतिमागे समभ्यर्च्य चन्दनाक्षतनिर्मितान् । दश प्रस्थतिलान् दद्यादशविप्रेभ्य आदरात् ।१३।।
फल च कुडवप्रस्थ आढको द्रोण एव च । धान्यमानेन बोद्धव्या क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ।।१४।।

जो पुरुष अथवा स्त्री भक्तिपूर्वक गगा के किनारे ज्येष्ठ शुक्ल दशमी, हस्त नक्षत्र की रात को जागरण करे, हे हरे ! उसको गगा की उस समय दश प्रकार की पूजा करनी चाहिए। सुगन्धित पुष्पो से, दस उत्तम फलो के नैवेद्य से, दीप से, दस प्रकार के धूपो से, दस प्रकार के उबटन से विधिवत् श्रद्धापूर्वक गगा की पूजा प्रत्येक बुद्धिमान को करनी चाहिए। गगा के जल मे घृत युक्त तिल दस अजुली भर कर छोडे और गुड तथा सत्तू के दस पिण्ड भी मत्रो का उच्चारण करते हुए गगाजल मे समर्पित करे। मत्र यह है—'प्रथम शिवा को नमस्कार है, उसके बाद नारायणी के चरण कमलो मे प्रणाम है, उसके अनन्तर दशहरा के चरण कमलो मे प्रणाम है और उसके अनन्तर गगा को नमस्कार है।।१-५।।

प्रणव से स्वाहा तक बीस अक्षर रूप मन्त्र है। इसी मत्र से पूजा, दान, तथा होम का विधान किया गया है। यथाशक्ति सुवर्ण अथवा चाँदी से गगा की मूर्ति बना कर जल से भरे हुए घडे पर प्रतिष्ठापित करे। घडे का टेडा भाग कपडे से आच्छादित कर दे। मूर्ति को पञ्चामृत से शुद्ध कर उसकी पूजा करे। मूर्ति का ध्यान इस प्रकार का होना चाहिए—चार हाथ हो, तीन नेत्र हो, नदी तथा नद के जल से सेवित हो। मूर्ति की सुन्दरता इतनी हो कि प्रतीत हो कि उस मूर्ति की गात्रयष्टि लावण्य सागर मे डुबाई गई है। मूर्ति की हाथो मे एक पूर्ण कलश तथा एक स्वच्छ कमल हो। एक हाथ वर देने के लिए हो और एक हाथ अभय बताने के लिए हो।।६-९।।

इसके अन्तर दश हजार चन्द्र के समान प्रभावाली, सौम्य, चामरो से शोभित, श्वेतच्छत्र युक्त, अमृत से लिपी हुई भूमि पर बैठी हुई, सुगन्धित चन्दन से अनुलिप्त, त्रैलोक्य से पूजित चरण वाली तथा देवर्षियो से स्तुति की गई गगा का ध्यान करे। ध्यान कर धूप दीपादि उपहारो से मन्त्रपूर्वक पूजा कर मार्ग मे मेरी, तुम्हारी, ब्रह्मा की, सूर्य की, हिमालय की तथा भगीरथ की पूजा करे। उसके अनन्तर दश ब्राह्मणो को चन्दन तथा अक्षत से मिले हुए दश प्रस्थ तिल दे। कुडव, प्रस्थ, आढक तथा द्रोण ये धान्य के परिमाण है। क्रमश ये एक दूसरे से चौगुने अधिक होते हैं।।१०-१४।।

मत्स्यकच्छपमंडूकमकरादिजलेचरान् । हसकारण्डववकचक्रटिट्टिभसारसान ॥१५॥
यथाशक्ति स्वर्णरूप्यताम्रप्रष्ठविनिर्मितान । अभ्यर्च्य गन्धकुसुमैर्गङ्गया प्रक्षिपेद्व्रती ॥१६॥
एव कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जित । उपवासी वक्ष्यमाणैर्दश पापै प्रमुच्यते ॥१७॥
अदत्तानामुपादान हिसा चैवाविधानत । परदारोपसेवा च कायिक त्रिविध स्मतम् ॥१८॥
पारुष्यमनृत चैव पैशुन्य चैव सर्वश । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मय स्याच्चतुर्विधम् ॥१९॥
परद्रव्येष्वभिध्यान मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च मानस त्रिविध स्मृतम् ॥२०॥
एतैर्दशविधै पापैर्दशजन्मसमुद्भवै । मुच्यते नात्र सन्देह सत्य सत्य गदाधर ॥२१॥
उद्धरेन्नरकात् पूर्वान् दश घोराद्दशावरान् । वक्ष्यमाणमिद स्तोत्र गगाग्रे श्रद्धया जपेत् ॥२२॥
ओं नम शिवायै गगायै शिवदायै नमो नम । नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोस्तु ते ॥२३॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाकर्यै नमो नम । सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये ॥२४॥
सर्वस्य सर्वव्याधीना भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते । स्थाणुजगमसभूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते ॥२५॥
ससारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते । तापत्रितयसहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमोनम ॥२६॥
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये । सर्वसशुद्धिकारिण्यै नम पापारिमूर्तये ॥२७॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नम । भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते ॥२८॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमोनमः । नमस्त्रैलोक्यभूपायै त्रिपथायै नमोनम ॥२९॥
नमस्त्रिशुक्लसस्थायै क्षामवत्यै नमोनम । त्रिहुताशनसस्थायै तेजोवत्यै नमोनम ॥३०॥

इसके अनन्तर मत्स्य, कछुए, मेढक, मगर आदि जलचरो को हस, कारण्डव, वक, टिट्टिभ, सारस आदि स्थलचरो को यथाशक्ति सुवर्ण, रौप्य तथा ताम्र से बना कर चन्दन तथा पुष्पो से पूजा कर गगा के प्रवाह मे प्रवाहित करै। इस प्रकार विधिवत् करने के अनन्तर वह मनुष्य धन के घमड से रहित हो कर यदि उपवास करता है तो आगे कहे हुए दश प्रकार के पापो से मुक्त हो जाता है—बिना दी हुई चीजो को लेना, शास्त्र रहित हिसा, परस्त्रीगमन इस प्रकार के तीन कायिक पाप, पारुष्य, अनृत, पेशुन्य तथा असम्बद्ध प्रलाप इस प्रकार के चार वाचिक पाप, दूसरे के द्रव्य का ध्यान, दूसरो का अनिष्ट चितन, झूठी बातो को सोचना इस प्रकार के तीन मानसिक पाप इसके अन्तर्गत हे ॥१५-२०॥

इस प्रकार दश जन्म से उत्पन्न दश पापो से मनुष्य मुक्त हो जाता है इसमे कोई भी सन्देह नही है। मै जो गगास्तोत्र तुम्हे बताऊँगा उस स्तोत्र का गगा तट पर पाठ करने से मनुष्य अपने पूर्वजन्म कृत पापो से प्राप्त हुए नरक से दश पूर्ववर्ती पुरुषो का और दश परवर्ती पुरुषो का उद्धार करता है ॥२१-२२॥

ओम् शिवा तथा गगा को नमस्कार है। कल्याण करने वाली (शिवदा) को नमस्कार है। विष्णु रूपिणी गगा को नमस्कार है। हे ब्रह्ममूर्ति स्वरूप गगे ! तुम्हे नमस्कार है। रुद्ररूपिणी को नमस्कार है। हे शाकरि ! तुम्हे बारबार प्रणाम है। सर्वदेवस्वरूपिणी तथा औषध रूप गगा को नमस्कार हे। सब व्याधियो को हरने वाली औषधियो मे श्रेष्ठ गगे ! तुम्हे नमस्कार है। स्थावर जगम मे उत्पन्न विपत्तियो को नष्ट करने वाली तुम्हे नमस्कार है। ससार विष को नष्ट करने वाली तथा जीवन देने वाली गगे ! तुम्हे नमस्कार है। तीनो प्रकार के तापो को नष्ट करने वाली जीवन की स्वामिनी तुम्हे नमस्कार है ॥२३-२६॥

शान्ति के कल्पवृक्ष को बनाने वाली, शुद्ध मूर्तिस्वरूप सर्वदा शुद्ध करने वाली, पाप की शत्रु स्वरूप तुम्हे बारम्बार नमस्कार है। भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाली, भोगवती, कल्याण करने वाली तथा भोग एवम उपभोग देने वाली गगे! तुम्हे बारम्बार नमस्कार है। हे मन्दाकिनी ! स्वर्ग को देने वाली तुम्हे नमस्कार है। हे त्रैलोक्य की स्वामिनी ! त्रिपथगामिनी ! तुम्हे नमस्कार है। तीन प्रकार के शुल्क मे रहने वाली, क्षामवती तुम्हे नमस्कार है। हे गगे ! तुम गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिण इन तीन अग्नियो मे निवास करती हो। तुम तेजस्वरूप हो, तुम्हे नमस्कार है ॥२७-३०॥

नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नम.। नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नम. ।।३१।।
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते। नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः ।।३२।।
पृथिव्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमोनम । परापरशताढ्यायै तारायै ते नमोनम ।।३३।।
पापजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते। शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमोनम. ।।३४।।
उग्रायै सुखजग्ध्यै सजीविन्यै नमोऽस्तु ते। ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनम ।।३५।।
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते। सर्वापत्प्रतिपक्षायै मगलायै नमोनम. ।।३६।।
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।३७।।
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमोनम । परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनी ।।३८।।
गङ्गे ममाग्रतो भूयाद् गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठत । गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थिति ।।३९।।
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वा त्व गाङ्गते शिवे। त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्व पुमान् पर एव हि ।।४०।।
गगे त्व परमात्मा च शिवस्तुभ्य नमः शिवे। य इद पठते स्तोत्र शृणुयाच्छ्रद्धयापि य ।।४१।।
दशधा मुच्यते पापै कायवाक्चित्तसम्भवै । रोगस्थो रोगतो मुच्येद्विपद्भ्यश्च विपद्युत ।।४२।।
मुच्यते बन्धनाद्बद्धो भीतो भीते प्रमुच्यते। सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य च त्रिदिव व्रजेत् ।।४३।।
दिव्य विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीपरिवीजितः। गृहेऽपि लिखित यस्य सदा तिष्ठति धारितम् ।।
नाग्निचौरभय तस्य न सर्पादिभय क्वचित् ।।४४।।
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसयुता। सहरेत्त्रिविध पाप बुधवारेण सयुता ।।४५।।
तस्या दशम्यामेतच्च स्तोत्र गगाजले स्थित'। य पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः ।।४६।।

हे नन्दा, लिगधारिणी, सुधाधारा स्वरूप गगे! तुम्हे नमस्कार है। तुम विश्व मे प्रमुख हो, तुम रेवती स्वरूप हो, तुम्हे नमस्कार है। हे वृहती स्वरूप लोक को धारण करने वाली, सम्पूर्ण विश्व की मित्र, नन्दिनी तुम्हे नमस्कार है। पृथिवी, शिवा, अमृता एवम् सुवृषा स्वरूप गगा को नमस्कार है। सैकडो पर तथा अपर रूपो से युक्त तारा नाम वाली गगा को नमस्कार है। हे पाप के जालपाश को काटने वाली, अभिन्नस्वरूप, शान्ता, वरिष्ठा तथा वर देने वाली गगे! तुम्हे नमस्कार है। हे उग्र सुख देने वाली, सजीविनी गगे तुम ब्रह्म मे स्थित हो, ब्रह्म को देने वाली हो, पापो को नष्ट करने वाली हो तुम्हे नमस्कार है ।।३१-३५।।

हे गगे! तुम शरण आये हुए लोगो के दुखो को उस तरह से हटा देती हो जिस तरह बवउर कूडे कचडे को उडा देता है। तुम जगत् की माता हो, हमारे विरुद्ध लोगो के लिए तुम सब प्रकार की आपत्ति स्वरूप हो तथा हमारे लिए मगल स्वरूप हो, तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। तुम सदा शरण मे आए हुए दीन दुखियो की रक्षा करने मे तत्पर रहती हो दीन दुखियो की ही नही बल्कि सब लोगो के दुखो को हरण करने वाली हो। हे नारायणि देवि! तुम्हे नमस्कार है। तुम किसी मे लिप्त नही रहती हो, दुर्ग नामक राक्षस को मारने वाली हो, चतुर हो, पर तथा अपर मे तत्पर हो (ऐहिक तथा पारलौकिक) निर्वाण पद को देने वाली हो, तुम्हें नमस्कार है। हे गगे! तुम मेरे आगे रहो, हे गगे! तुम मेरे पीछे रहो तुम मेरे दोनो तरफ रहो! हे गगे! तुम्हारे ही जल मे मेरी स्थिति हो! तुम्ही आदि हो तुम्ही मध्य हो तथा तुम्ही अन्त हो। हे पृथ्वी पर गई हुई कल्याण स्वरूप गगे! तुम्ही मूल प्रकृति हो तथा तुम्ही परब्रह्म स्वरूप पुरुष हो। हे गगे! तुम परमात्मा हो, तुम शकर हो तुम कल्याण करने वाली हो, तुम्हें बारबार नमस्कार है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्र को सुनता है अथवा पढता है वह कायिक, वाचिक तथा मानसिक इन तीनो प्रकार के पापो से मुक्त हो जाता है, रोगी रोग से मुक्त होता है और विपत्तियो से ग्रस्त मनुष्य उससे मुक्त होता है। बन्धन मे बँधा हुआ मनुष्य बन्धन से मुक्त होता है और डरा हुआ भीति से मुक्त होता है। अपनी सम्पूर्ण इच्छाओ को

सोऽपि तत्फलमाप्नोति गंगा सम्पूज्य यत्नत. । पूर्वोक्तेन विधानेन यत्फल सम्प्रकीर्तितम् ॥४७॥
यथा गौरी तथा गगा तस्माद्गौर्यास्तु पूजने । यो विधिर्विहित· सम्यक्सोऽपि गगाप्रपूजने ॥४८॥
यथाऽह तथा विष्णुर्यथा त्वन्तु तथा ह्युमा । उमा यथा तथा गगा रूप तत्र हि भिद्यते ॥४९॥
विष्णुरुद्रान्तर चैव श्रीगौर्योरन्तरन्तथा । गगागौर्यन्तर चैव यो ब्रूते मूढधीस्तु स ॥५०॥

इति श्री स्कन्दपुराणान्तर्गतकाशीखण्डतो गगादशहरास्तोत्र नाम चतुर्थोऽध्याय ॥४॥

परिपूर्ण कर दिव्य विमान पर आरूढ हो कर स्वर्ग को जाता है। उसके स्वर्ग जाते समय दिव्य स्त्रियाँ पखा डुलाती है। जिसके घर मे यह स्तोत्र केवल लिखा हुआ ही रखा रहता है उसे न तो चोर का डर रहता है न आग का और न सर्पादिका का डर रहता है। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी जिस दिन हस्त नक्षत्र तथा बुधवार हो तीनो प्रकार के पापो को नष्ट कर देती है। उस दशमी के दिन यदि कोई दरिद्र तथा असमर्थ मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ गगा जल मे खडा रह कर दश बार करता है वह उस फल को प्राप्त कर लेता है जो फल गगा की अनेक प्रकार से पूर्वोक्त विधान से पूजा करने पर नहीं प्राप्त हो सकता। जिस प्रकार से गौरी (पार्वती) है उसी प्रकार से गगा भी है। जो विधि गौरी के पूजन मे बताई गई है वही गगा के पूजन मे भी समझनी चाहिए। जिस प्रकार मै हू उस प्रकार विष्णु है, जिस प्रकार तुम हो उसी प्रकार उमा है और जिस प्रकार उमा है उसी प्रकार गगा है। इसलिए रूप मे कोई भेद नही किया जा सकता। जो मनुष्य विष्णु तथा शकर मे अन्तर बताता है, लक्ष्मी तथा पार्वती मे अन्तर बताता है, गगा तथा गौरी मे अन्तर बताता है उसे महान् मूर्ख कहना चाहिए ॥३८-५०॥

श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्ड मे गगादशहरास्तोत्र नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥

पंचमोऽध्यायः

गङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्ता तव पदकमले ॥१॥
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलहिमा निगमे ख्यात ।
नाह जाने तव महिमान पाहि कृपामयि मामज्ञानम् ॥२॥
हरिपदपद्मतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे ।
दूरी कुरु मम दुष्कृतिभार कुरु कृपामयि भवसागरपारम् ॥३॥
तव जलममल येन निपीत परमपद खलु तेन गृहीतम् ।
मातर्गंगे त्वयि यो भक्त किल त द्रष्टु न यम शक्त ॥४॥
पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे ।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये ॥५॥
कल्पलतामिव फलदा लोके प्रणमति यस्त्वा पतति न शोके ।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखवनिताकृततरलापाङ्गे ॥६॥

हे देवि गगे ! तुम देव गणो की भी ईश्वरी हो ! हे भगवति ! तुम्ही त्रिभुवन की रक्षा करती हो ! तुम्ही तरलतरगमयी हो और शकर के मस्तक पर विहार करती हो। तुममे किसी प्रकार का मल (पापस्पर्श) नही है। अत हे मात ! तुम्हारे चरणकमलो मे मेरी भक्ति हो ॥१॥

हे भागीरथि ! तुम्ही सम्पूर्ण प्राणियो का सुख प्रदान करती हो। हे मात ! तुम्हारा माहात्म्य वेद म वर्णित है। किंतु मै तुम्हारी महिमा कुछ भी नही जानता। तुम्ही कृपामयी हो। अत कृपा करके मुझ अज्ञानी की रक्षा करो ॥२॥

हे गगे ! तुम्ही श्री हरिचरणो म तरग रूप मे विराजमान थी। हे देवि ! तुम्हारी सम्पूर्ण तरग हिम, चन्द्र और मुक्ता की भाँति धवल वर्ण की है। हे कृपामयी ! तुम्ही हमारे पापो का भार दूर करके हमको भवसागर के पार उतारो ॥३॥

हे देवि ! जिस व्यक्ति ने तुम्हारा निर्मल जल पान किया है उसी ने परम पद पाया है। हे मात ! गगे ! जो मनुष्य तुम्हारी भक्ति करता है उसको यमराज कभी देख भी नही सकते अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपुर म न जाकर वैकुण्ठ मे ही गमन करते है ॥४॥

हे देवि गगे ! तुम्ही पतित जन का उद्धार करती हो, तुम्ही ने गिरिराज का खण्डन किया है, जिसके ऊपर तुम्हारी भगी लहरे अति सुशोभित है, एव तुम्ही भीष्म की जननी और जह्नु मुनि की कन्या हो। त्रिभुवन मे तुम्हारे अतिरिक्त पापनिवारिणी और कोई नही है, इसीलिये तुम्हे धन्या कहते है ॥५॥

हे मात ! तुम्ही कल्पलता की भाँति फल प्रदान करती हो, अर्थात् भक्तगण तुम्हारे निकट जो कामना करते है, तुम वही प्रदान करती हो, और जो तुम्हारे निकट प्रणत होता है, वह कभी शोक मे पतित नही होता। हे गगे ! तुम्ही समुद्र के साथ विहार करती हो, तुम्हारा अपाग (कटाक्ष) विमुख वनिता की भाँति चञ्चल है ॥६॥

तवचेन्मात स्रोत स्नात पुनरपि जठरे सोऽपि न जात ।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ॥७॥
पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जयजय जाह्नवि करुणापाङ्गे ।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे सुखदे शुभदे सेवकशरणे ॥८॥
रोग शोक ताप पाप हर मे भगवति कुमतिकलापम् ।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु ससारे ॥९॥
अलकानन्दे परमानन्दे कुरु कृपामयि कातरवन्द्ये ।
तव तटनिकटे यस्य निवास खलु वैकुण्ठे तस्य निवास ॥१०॥
वरमिह नीरे कमठो मीन किवा तीरे शरट क्षीण ।
अथ गव्यूतौ श्वपचोदीनस्तव नहि दूरे नृपति कुलीन ॥११॥
भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये ।
गङ्गास्तवमिदममल नित्य पठति नरो य स जयति सत्यम् ॥१२॥
येषा हृदये गगाभक्तिस्तेषा भवति सदा सुखमुक्ति ।
मधुरकान्तापज्झटिकाभि परमानन्दकलितललिताभि. ॥१३॥

हे गगे ! जिस व्यक्ति ने तुम्हारे जल मे स्नान किया है, पुन वह व्यक्ति माता के गर्भ मे नही आता है। हे जाह्नवी ! तुम्ही भक्तगणो को नरक से निवारण करती हुई उनके पाप समूहो का विनाश करती हो, अत तुम्हारा माहात्म्य अति उत्तुग (श्रेष्ठ) है ॥७॥

हे देवि ! तुम्हारा सामान्य शरीर नही है, इसीलिये तुम्हारी सम्पूर्ण तरगे अत्यन्त पुण्य प्रदान करती है। हे जाह्नवी ! तुम्हारा अपाग देश कृपापूर्ण है, तुम से किसी की भी महिमा का उत्कर्ष (आधिक्य) नही है। हे मात ! तुम्हारे चरण देवराज इन्द्र की मुकुटमणि से प्रदीप्त है, तुम्ही सब को सुख और शुभ प्रदान करती हो और जो तुम्हारा सेवक होता है, उसको अभय प्रदान करती हो ॥८॥

हे भगवति ! मेरा रोग, शोक, ताप, पाप और कुमति हरण करो। तुम्ही त्रिभुवन की सारभूत और पृथिवी के (भूषण) स्वरूप से विद्यमान हो। हे देवि ! इस ससार मे एकमात्र तुम्ही मेरी गति हो अर्थात् मै केवल तुम्हारा ही आश्रित हूँ ॥९॥

हे देवि ! तुम्ही अलका (कुबेरपुरी) के समान आनन्द प्रदान करती हो और तुम्ही परमानन्द स्वरूप हो, एव सभी लोग कातर भाव से तुम्हारी वन्दना करते है, अत तुम्ही मेरे लिये कृपा करो। हे मात ! जो व्यक्ति तुम्हारे तट के समीप मे वास करता है, उसकी वैकुण्ठ मे स्थिति होती है, अथवा इसी काल मे वह व्यक्ति वैकुण्ठ के समान आनन्द का उपभोग करता है ॥१०॥

हे देवि ! तुम्हारे जल मे कच्छप अथवा मीन हो कर रहूँ, तुम्हारे तट पर क्षीणतर कृकलास (गिरगिट) हो कर वास करूँ, अथवा दो कोस के भीतर अति दीन चाण्डालकुल मे जन्म ग्रहण करने की भी कामना करता हूँ, किंतु तुमसे दूर देश मे कुलीन नृपति होने की भी इच्छा कभी नही करता ॥११॥

हे देवि ! तुम्ही त्रिभुवन की ईश्वरी और पुण्य स्वरूपा हो, तुमसे कोई भी प्रधान नही, तुम्ही जलमयी और मुनिवर की कन्या हो। अत जो मनुष्य प्रतिदिन यह गगा स्तोत्र पाठ करता है, वह व्यक्ति निश्चय ससार विजय करता है ॥१२॥

जिसके चित्त मे गगा के प्रति अचल भक्ति है, वह व्यक्ति सहज मे ही मुक्ति लाभ करता है। इस भाति अति मधुर और कोमल पदावली द्वारा विरचित यह गगास्तव परमानन्दप्रद और अति सुललित है ॥१३॥

गगास्तोत्रमिद भवसार वाञ्छितफलद विहितमलसारम् ।
शकरसेवकशकररचित पठति विजयी स्तव इति च समाप्त ।।१४।।
इति श्रीमच्छङ्कराचार्य्यविरचित गगास्तोत्र नाम पचमोऽध्याय ।।५।।

इस असार ससार मे उक्त गगा का स्तव ही सार पदार्थ है, इसलिए यह भक्तगणो को अभिलषित फल प्रदान करता है, इस प्रकार शकर के सेवक शकराचार्य कृत यह स्तव सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

श्री शकराचार्य रचित गगास्तोत्र नामक पाचवा अध्याय समाप्त ।।५।।

षष्ठोऽध्यायः

गङ्गाष्टकस्तोत्रम्

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि,
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथी प्रार्थये ।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खतः,
त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥१॥
त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरः,
त्वत्तीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः ।
नैवान्यत्रमदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारण,
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥२॥
काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं वीचिभिरान्दोलितं,
स्रोतोभिश्चलितं तटान्तमिलितं गोमायुभिर्लुण्ठितम् ।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा,
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥३॥
अभिनवबिसवल्लीपादपद्मस्य विष्णोः,
मदनमथनमौले मालतीपुष्पमाला ।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः,
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥४॥

हे मात ! गिरिजासपत्नि ! गंगे ! तुम पृथिवी के हार (भूषण) स्वरूप में विराजमान रहती हो, तुम्ही स्वर्गारोहण की सोपान स्वरूप हो और तुम्ही भगीरथ द्वारा लाई गयी हो, अतः मैं तुम्हारे निकट यही प्रार्थना करता हूँ कि—मैं तुम्हारे तीर में निवास कर के तुम्हारा जलपान करता, तुम्हारी तरंगमाला के सन्दर्शन पूर्वक तुम्हारा नाम स्मरण करता एवं तुम्हारा दर्शन करता हुआ अपने शरीर का त्याग करूँ ॥१॥

हे मात ! तुम्हारे तीरवर्ती वृक्ष के कोटर में पक्षी हो कर वास करूँ, वह भी श्रेष्ठ है, अथवा हे नरकान्तकारिणि ! तुम्हारे जल में मत्स्य (मीन) वा कच्छप हो कर रहूँ, यह भी श्रेष्ठ जानता हूँ । किन्तु तुम्हारे दूर देशवासी हो कर मदमत्त हस्ति समूह के घण्टानिनादों द्वारा त्रस्त शत्रुओं की वनिताओं से स्तुति को प्राप्त हो कर उस नरपतित्व का लाभ भी श्रेष्ठ नहीं जानता ॥२॥

हे भागीरथि ! परमेश्वरि ! गंगे ! मेरे शरीर को काक समूह नोचते हैं, कुत्ते भी ग्रास बना रहे हैं, और तुम्हारी लहरों के बीच टकराता एवं उस प्रवाह द्वारा बहता हुआ किनारे पर आ जाता है तो शृगाल (स्यार) भी उसे घसीटते हैं, ऐसे उस अपने शरीर को दिव्यांगनाओं के सुन्दर चामर डुलाने से उत्पन्न वायु द्वारा सुसेवित होता हुआ मैं कब देखूँगा ॥३॥

जो विष्णु के चरणकमलों की बिसलता (कमल की जड़) रूप है, शंकर के शिर में मालती-माला की भाँति शोभायमान है, संसार जय की पताका स्वरूप हो कर मुक्ति देने वाली है, और भक्तगणों के पापकलंक को दूर करती रहती है, वही जाह्नवी हमें पवित्र करें ॥४॥

यत्तत्तालतमालशालसरलव्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शखेन्दुकुन्दोज्ज्वलम्।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालित,
स्नानाय प्रतिवासर भवतु मे गाङ्ग जल निर्मलम् ।।५।।
गाग वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्। त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ।।६।।
पापापहारि दुरितारि तरगधारि, दूरप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।
झङ्कारकारि हरिपादरजोविहारि, गाग पुनातु सतत शुभकारि वारि ।।७।।
वरमिह गगातीरे शरट करट कृश शुनीतनय। न पुनर्दूरतरस्थ करिवरकोटीश्वरो नृपति ।।८।।
गगाष्टक पठति य प्रयत प्रभाते, वाल्मीकिना विरचित शुभद मनुष्य।
प्रक्षाल्य सोऽत्र कलिकल्मषपङ्कमाशु, मोक्ष लभेत्पतति नैव पुनर्भवाब्धौ ।।९।।
इति श्री वाल्मीकिना विरचित गगाष्टकस्तोत्र नाम षष्ठोऽध्याय समाप्त ।।६।।

जो ताल, तमाल, शाल और सरल वृक्ष की चचल एव गुच्छेदार लताओ से आच्छन्न है, सूर्य के प्रताप से रहित एव शख, चन्द्रमा तथा कुन्द पुष्प की भाति समुज्ज्वल है और गन्धर्व, देव, सिद्ध तथा किन्नर की सुन्दरियो के उन्नत (ऊचे) स्तनो द्वारा आस्फालित है, ऐसे गगा के निर्मल जल मे मै प्रतिदिन स्नान करूँ।।५।।

भगवान् कृष्ण के चरण-कमल से निकलने के नाते गगा-जल अत्यन्त मनोहर है, इसीलिए भगवान शकर ने उसे मस्तक पर धारण किया है। अत वह मुझे पवित्र करे।।६।।

यह (गगा) जल (सचित) पापो का नाशक और (वर्त्तमान) दुष्कृतो का अपहारी है, जो जल सर्वदा तरगो को लिए पर्वत राज (हिमालय) की गुफाओ को विदीर्ण कर बहुत दूर तक फैला हुआ है और झकार (की ध्वनि) करता हुआ भगवान् के चरण-रज मे बिहार करता है, वह मागलिक गगा-जल हमे सदैव पुनीत करे।।७।।

मै गगा-तट पर शरट (गिरगिट), करट (कौवा) अथवा क्षीणकाय कुत्ता भी हो कर रहना श्रेष्ठ मानता हूँ किन्तु गगा से दूर देश मे करोडो गजराजो के अधीश्वर नृपति भी होना नही चाहता ।।८।।

इस प्रकार जो मनुष्य वाल्मीकि मुनि रचित इस शुभमूर्त्ति गगाष्टक का प्रात काल पवित्र भावना से पाठ करता है, वह शीघ्र ही कलिकाल--जनित पाप-पक के प्रक्षालनपूर्वक मुक्ति लाभ करता है और पुन ससार-सागर मे कभी पतित नही होता है।।९।।

श्री वाल्मीकिरचित गगाष्टकस्तोत्र नामक छठा अध्याय समाप्त ।।६।।

परिशिष्ट

प्रथमोऽध्याय:

नारद उवाच

श्रुत पृथिव्युपाख्यानमतीवसुमनोहरम । गङ्गोपाख्यानमधुना वद वदविदा वर ॥१॥
भारत भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी[1] । विष्णुस्वरूपा परमा स्वय विष्णुपदी सती ॥२॥
कथ कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा । तत्क्रम श्रोतुमिच्छामि पापघ्न पुण्यद शुभम ॥३॥

नारायण उवाच

राजराजेश्वर श्रीमान्सगर सूर्यवशज । तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे ॥४॥
सत्यस्वरूप सत्येष्ट सत्यवाक्सत्यभावन । सत्यधर्मविचारज्ञ पर सत्ययुगोद्भव ॥५॥
एकस्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहर । असमञ्ज इति ख्यात शैव्याया कुलवर्धन: ॥६॥

नारद बोले—हे वेदविदो मे श्रेष्ठ ! पृथिवी का अत्यन्त सुमनोहर उपाख्यान तो मने सुन लिया, अब गगा[1] का उपाख्यान सुनाने की कृपा करे । सरस्वती के शापवश सुरेश्वरी (गगा) जो स्वय विष्णु का पद प्राप्त कर विष्णुस्वरूपा और परमा है, पहले समय मे किससे प्रेरित हो कर किस युग मे किसकी प्रार्थना से कहाँ अवतरित हुई थी । उस पापहारी, पुण्यप्रद और शुभ क्रम को म सुनना चाहता हूँ ॥१—३॥

नारायण बोले—सूर्य वश मे उत्पन्न, श्रीमान् महाराजाधिराज सगर के वदर्भी और शव्या नाम की अत्यन्त मनोहर दो स्त्रिया थी, जो (राजा) सत्य का स्वरूप, सत्यप्रिय, सत्य बोलने वाला, सत्य भावना और सत्य धर्म-विचार का ज्ञाता, श्रेष्ठ तथा सत्य युग मे उत्पन्न हुआ था। उस राजा की शव्या नामक पत्नी मे एक कन्या और 'असमजस' नामक एक अत्यन्त मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुल को बढाने वाला था। उनकी दूसरी पत्नी वेदर्भी ने पुत्र की कामना से भगवान्

---

१ सरस्वती ने जो गगा को शाप दिया था, वह प्रसग सक्षेप मे इस प्रकार है —

एक बार भगवान् विष्णु के समीप उनकी तीनो पत्नियाँ—गगा, सरस्वती और लक्ष्मी उपस्थित थी । उनमे गगा कामासक्त हो मदभरी दृष्टि से विष्णु को देखती हुई मन्द-मन्द मुसकाने लगी। भगवान विष्णु भी उनका मुख देख कर आनन्द से हँसने लगे। यह देख कर लक्ष्मी ने तो उस पर ध्यान नही दिया, किन्तु सरस्वती से नही रहा गया। उन्होने क्रोध मे आ कर गगा से कहा—'अरी निर्लज्जे ! तुझे अपने सौभाग्य का गर्व हो गया है । अभी मे दूर किए देती हूँ।' इतना कह कर सरस्वती ने गगा का केशपाश पकडना ही चाहा कि सती लक्ष्मी ने बीच मे पड कर वैसा न होने दिया। अनन्तर सरस्वती ने लक्ष्मी को शाप दे दिया कि तुम वृक्ष और नदी का रूप धारण करोगी, क्योकि तुमने गगा का अपराध देख कर भी कुछ नही कहा, केवल वृक्ष और नदी की भाति खडी रही। इस पर गगा ने सरस्वती को लक्ष्य कर के कहा कि जिसने रोष भरे शब्दो मे लक्ष्मी को शाप दिया है, वह स्वय भी नदी हो जाय। यह सुन कर सरस्वती ने गगा को भी शाप दे दिया कि तू भी नदी हो कर पृथ्वी पर जायगी और पापियो का पाप ग्रहण करेगी।

अन्या चाऽऽराधयामास शकर पुत्रकामुकी। बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य तु वरेण च ॥७॥
गते शताब्दे पूर्णे च मासपिण्ड सुषाव सा। तद्दृष्ट्वा च शिव ध्यात्वा रुरोदोच्चै पुन पुन ॥८॥
शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीप जगाम ह। चकार सविभज्यैतत्पिण्ड षष्टिसहस्रधा ॥९॥
सर्वे बभूवु पुत्राश्च महाबलपराक्रमा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाजुष्टकलेवरा. ॥१०॥
कपिलर्षे कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते। राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरण शुचा ॥११॥
तपश्चकारासमञ्जो गगानयनकारणात्। तप: कृत्वा लक्षवर्ष ममार कालयोगत ॥१२॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात्। तप कृत्वा लक्षवर्ष ययौ लोकान्तर नृप. ॥१३॥
अशुमास्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणात्। तप कृत्वा लक्षवर्ष मृतश्च कालयोगत ॥१४॥
भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवत सुधीः। वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामर ॥१५॥
तप कृत्वा लक्षवर्ष गङ्गानयनकारणात। ददर्श कृष्ण ह्रष्टास्य सूर्यकोटिसमप्रभम ॥१६॥
द्विभुज मुरलीहस्त किशोर गोपवेषकम्। परमात्मानमीश च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
स्वेच्छामय पर ब्रह्म परिपूर्णतम विभुम। ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुत मुनिगणैर्युतम ॥१८॥
निर्लिप्त साक्षिरूप च निर्गुण प्रकृते परम। ईषद्धास्य प्रसन्नास्य भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९॥
वह्निशुद्धाशुकाधान रत्नभूषणभूषितम। तुष्टाव दृष्ट्वा नृपति प्रणम्य च पुन पुन. ॥२०॥
लीलया च वर प्राप्य वाञ्छित वशतारकम। तत्राऽऽजगाम गङ्गा सा स्मरणात्परमात्मन ॥२१॥
त प्रणम्य प्रतस्थौ च तत्पुर सपुटाञ्जलि। उवाच भगवास्तत्र ता दृष्ट्वा सुमनोहराम् ॥२२॥

शकर की आराधना की, जिससे उनके वरदान द्वारा उसे भी गर्भ धारण हुआ। अनन्तर सौ वर्ष व्यतीत होने पर उसने एक मांस-पिण्ड उत्पन्न किया, जिसे देख कर शिव का ध्यान करती हुई उसने बार-बार रुदन किया। ब्राह्मण वेष धारण कर भगवान् शकर ने उसके समीप जा कर उस मांस-पिण्ड का भेदन किया, जिससे उसमें से साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी पुत्र महाबली, पराक्रमी और ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न मार्तण्ड के समान तेजस्वी शरीर धारण किए थे। (कुछ दिन के पश्चात्) भगवान् कपिल मुनि की कोप-दृष्टि से वे सभी भस्म हो गए। उसे सुन कर राजा ने बड़ा रुदन किया और शोकाकुल हो कर प्राण त्याग कर दिया। उपरान्त असमंजस ने गंगा लाने के लिए तप करना आरम्भ किया। एक लाख वर्ष तक तप करने पर कालयोग से उनकी मृत्यु हो गयी। पश्चात् उनके पुत्र दिलीप ने गंगा लाने के लिए एक लाख वर्ष तक तप किया किन्तु बीच में ही असफल रह कर उन्होंने भी परलोक की यात्रा की। उनके पुत्र अंशुमान ने भी गंगा लाने के लिए एक लाख वर्ष तक तप किया और अन्त में कालयोग से (असफल रह कर) शरीर का त्याग किया। अनन्तर उन महाभाग्यशाली के भगीरथ नामक अत्यन्त बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो वैष्णव, विष्णु भक्त, गुणवान् और अजर अमर था। एक लाख वर्ष तक तप करने के उपरान्त उसने भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त किया, जो प्रसन्न मुख, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, दो भुजाएँ, हाथ में मुरली, किशोरावस्था और गोप वेष से भूषित थे तथा परमात्मा, ईश्वर, भक्तों पर प्रसन्न हो कर शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, परब्रह्म, परिपूर्णतम, व्यापक, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि एवं मुनिगणों से सस्तुत, निर्लिप्त, साक्षी रूप, निर्गुण, प्रकृति से परे एवं मन्द मुसुकान करते हुए प्रसन्न मुख और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले थे। अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण किए और रत्नों के आभूषणों से भूषित उन भगवान् कृष्ण को देख कर राजा ने उनकी स्तुति कर बार-बार उन्हें प्रणाम किया। अनन्तर वंश को तारने वाला वरदान उनसे सहज ही में प्राप्त किया और परमात्मा के स्मरण करने पर गंगा भी उसी स्थान में आ गयी और भगवान् को प्रणाम कर के उन्हीं के सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी। भगवान् ने उन्हें दिव्य एवं अत्यन्त मनोहर स्तुति करते हुए देख कर उनसे कहा, जो पुलकायमान हो रही थी ॥७-२२॥

कुर्वती स्तवन दिव्य पुलकाञ्चितविग्रहाम्

श्रीकृष्ण उवाच

भारत भारतीशापाद्गच्छ शीघ्र सुरेश्वरि ॥२३॥

सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया । त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम् ॥२४॥

बिभ्रतो दिव्यमूर्ति ते दिव्यस्यन्दनगामिन । मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकाल निरामया ॥२५॥

कर्मभोग समुच्छिद्य कृत जन्मनि जन्मनि । नानाविध महत्स्वल्प पाप स्याद्भारते नृभि ॥२६॥

गङ्गाया स्पर्शवातेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् । स्पर्शन दर्शनाद्देव्या पुण्य दशगुण तत ॥२७॥

मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् । कोटिजन्मार्जित पाप नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥२८॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । नानाजन्मार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च ॥२९॥

तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम् । पुण्याहस्नानज पुण्य वेदा नैव विदन्ति च ॥३०॥

केचिद्विदन्ति ते देवि फलमेव यथागमम् । ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्व नैव विदन्ति च ॥३१॥

सामान्यदिवसस्नानसकल्प शृणु सुन्दरि । पुण्य दशगुण चैव मौसलस्नानत परम् ॥३२॥

ततस्त्रिशद्गुण पुण्य रविसक्रमणे दिने । अमाया चापि तत्तुल्य द्विगुण दक्षिणायने ॥३३॥

ततो दशगुण पुण्य नराणामुत्तरायणे । चातुर्मास्या पौर्णमास्यामनन्त पुण्यमेव च ॥३४॥

अक्षयाया च तत्तुल्य नैतद्वेदे निरूपितम् । असख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् ॥३५॥

सामान्यदिवसे स्नान ध्यानाच्छतगुण फलम् । मन्वन्तरेषु देवेशि युगादिषु तथैव च ॥३६॥

श्रीकृष्ण बोले—हे सुरेश्वरि ! भारती (सरस्वती) के शाप वश तुम भारत जाओ और मेरी आज्ञा से वहाँ सगर के पुत्रो को पवित्र करो। वे तुम्हारे स्पर्श वायु से पवित्र होकर मेरे लोक चले जायँगे और वहाँ दिव्य मूर्ति धारण कर दिव्य रथ पर गमन करने वाले तथा सब समय निरामय (रोगहीन) मेरे पार्षद होगे । उनके प्रत्येक जन्मो का कर्मभोग नष्ट हो कर सुकृत रूप मे हो जायगा। क्योकि भारत मे मनुष्यो द्वारा बडे-छोटे अनेक भाँति के पाप होते ह, वे गगा के स्पर्श वायु द्वारा नष्ट हो जाते है, ऐसा वेद मे सुना गया है। देवी (गगा) के दर्शन से स्पर्श करने मे दश गुना पुण्य अधिक होता है । सामान्य दिनो मे भी मनुष्यो के मोसल (मुसल की तरह चुभ से डूब जाना) स्नान से उनके करोडो जन्म के पाप नष्ट होते है, ऐसा श्रुतियो मे सुना गया है । ब्रह्म हत्या आदि अनेको पाप, जो अनेको जन्मो मे अर्जित होते है और चाहे वे उसकी कामना वश ही किये गए हो, मनुष्यो के मौसल स्नान से नष्ट हो जाते है। और पुण्य दिनो मे स्नान करने से उत्पन्न पुण्य का वर्णन वेद भी नही कर सकते है। कुछ लोग कहते है—हे देवि ! तुम्हारा फल भी शास्त्र की भाति (गम्भीर) है, जिसे ब्रह्मा, विष्णु ओर शिव आदि सभी लोग नही जानते ह । हे सुन्दरि ! साधारण दिनो के स्नान सकल्प का, जो मौसल-स्नान से दश गुने अधिक पुण्य प्रदान करता है, बता रहा हूँ,सुनो ! रविवार के दिन सक्रान्ति होने से उससे तीस गुना पुण्य अधिक होता है, अमावस्या के दिन उसके समान ही पुण्य होता है। इसी भाति दक्षिणायन सूर्य मे दुगुना, उत्तरायण सूर्य म उससे दश गुना अधिक ओर चातुर्मास्य (चौमासे) की पूर्णिमा मे अनन्त पुण्य होता है। अक्षय तिथि म उसी के समान पुण्य होता है, यह वेद मे नही बताया गया है। अत इन दिनो स्नान करने मे असख्य पुण्य की प्राप्ति होती है। हे देवेशि ! सामान्य दिनो मे स्नान करने से ध्यान से सौ गुने अधिक फल प्राप्त होता है, उसी भाँति मन्वन्तरो और और युगादिको म भी कहा गया है। माघ की शुक्ल सप्तमी, भीष्म की अष्टमी, अशोकाष्टमी और रामनवमी के दिन जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे दुगुना पुण्य नन्दा (तिथि) मे प्राप्त होता है तथा दश पाप हरण करने वाली दशमी मे अत्यन्त महान् पुण्य फल प्राप्त होता है। नन्दा के समान ही वारुणी मे पुण्य प्राप्त होता है, महावारुणी म उससे चौगुना और महामहावारुणी म उससे भी चौगुने अधिक पुण्य प्राप्त होता है, जो सामान्य दिनो से करोडगुन अधिक है। चन्द्र सूर्य के ग्रहण मे स्नान करने से उससे दश गुने अधिक पुण्य होता है, उसी प्रकार पुण्य दिन

माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च । तथाऽशोकाष्टमीतिथ्यां नवम्यां च तथा हरेः ॥३७॥
ततोऽपि द्विगुण पुण्य नन्दायां तव दुर्लभम् । दशपापहरायां तु दशम्यां सुमहत्फलम् ॥३८॥
नन्दासम च वारुण्यां महत्पूर्वे चतुर्गुणम् । ततश्चतुर्गुण पुण्य द्विमहत्पूर्वके सति ॥३९॥
पुण्य कोटिगुण चैव सामान्यस्नानतो भवेत् । चन्द्रसूर्योपरागेषु स्मृत दशगुण तत ॥४०॥
पुण्येऽप्यर्धोदये काले ततः शतगुण फलम् । सर्वेषामेव सकल्पो वैष्णवाना विपर्यय. ॥४१॥
फलसधानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवा । मत्प्रीतिभक्तिकामास्ते सर्वदा सर्वकर्मसु ॥४२॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेत्पर । जीवन्मुक्त वैष्णव त वेदाः सर्वे वदन्ति च ॥४३॥
पुरुषाणा शत पूर्व पैतृक च पर शतम् । मातामहस्य च शत मातर मातृमातरम् ॥४४॥
भगिनी भ्रातर चैव भागिनेय च मातुलम् । श्वश्रू च श्वशुर चैव गुरुपत्नी गुरो सुतम् ॥४५॥
गुरु च ज्ञानदातार मित्र च सहचारिणम् । भृत्य शिष्य तथा चेटी प्रजा स्वाश्रमसनिधौ ॥४६॥
उद्धरेदात्मना सार्ध मन्त्रग्रहणमात्रत । मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नर ॥४७॥
तस्य सस्पर्शनात्पूत तीर्थ च भुवि भारते । तस्यैव पादरजसा सद्य पूता वसुधरा ॥४८॥
पादोदकस्थानमिद तीर्थमेव भवेद्ध्रुवम् । अन्न विष्ठा जल मूत्र यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥४९॥
खादन्ति नो वैष्णवाश्च सदा नैवेद्यभोजिन । विष्णोर्निवेदितान्न च नित्य ये भुञ्जते नरा ॥५०॥
पूतानि सर्वतीर्थानि तेषा च स्पर्शनादहो । विष्णो पादोदक पुण्य नित्य ये भुञ्जते नरा ॥५१॥
तत्पापानि पलायन्ते वैनतेयादिवोरगा । तेषा दर्शनमात्रेण पूत च भुवनत्रयम् ॥५२॥
विष्णोः सुदर्शन चक्र सततं ताश्च रक्षति । मद्गुणश्रवणाद्ये च पुलकाङ्कितविग्रहा ॥५३॥
गद्गदा साश्रुनेत्राश्च नरास्ते वैष्णवोत्तमा । पुत्रादपि पर स्नेहो मयि येषां निरन्तरम् ॥५४॥
गृहाद्याश्च मयि न्यस्तास्ते नरा वैष्णवोत्तमा ॥५५॥

के अर्द्धोदय (सूर्य निकलते) समय मे स्नान करने से सो गुने अधिक फल होता है। सभी के सकल्प से वैष्णवो के सकल्प मे विपर्यय होता है। वैष्णव लोग सर्वदा सभी कर्मो की फलासक्ति से रहित और जीवन्मुक्त होते है। वे मुझमे सदैव प्रीति-भक्ति की कामना रखते हे। क्योकि गुरु के मुख से निकल कर भगवान् विष्णु का मन्त्र जिसके कर्ण विवर मे प्रविष्ट होता है, उसे सभी वेद जीवन्मुक्त वैष्णव कहते हे। पूर्व की सो पीढी, पर की सौ पीढी, मातामह (ननिहाल) की सौ पीढी, माता, नानी, भगिनी, भाई, भानजा, मामा, सास-ससुर, गुरु पत्नी, गुरु पुत्र, ज्ञान देने वाले गुरु, सहचारी मित्र, नौकर, शिष्य, नोकरानी, आश्रम के समीप रहने वाली प्रजा का मन्त्र ग्रहण मात्र से अपने साथ वह उद्धार कर देता है। मन्त्र ग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त होता है। भारत-भूतल के तीर्थ उसके स्पर्श से पवित्र होते है और उसी के चरण रज से वसुन्धरा (पृथ्वी) पवित्र होती है। उसके पादोदक का स्थान निश्चित तीर्थ होता है। विष्णु को निवेदन न किया गया अन्न विष्ठा के समान ओर जल मूत्र के समान है। उसे वैष्णव गण कभी नही खाते है, क्योकि वे सदेव नवेद्य (वैष्णव द्वारा अर्पित) का ही भोजन करते है। विष्णु को निवेदन किया गया अन्न जो मनुष्य नित्य भोजन करते है, उनके स्पर्श से सभी तीर्थ पवित्र हो जाते है। भगवान् विष्णु के पुण्य पादोदक का नित्य पान करने वाले मनुष्यो के पाप, गरुड को देख कर सर्पो की भॉति भाग जाते है और उनके दर्शन मात्र से तीनो लोक पवित्र होने है। विष्णु का सुदर्शन चक्र उन लोगो की निरन्तर रक्षा करता है। मेरे गुणो के श्रवण-मनन आदि करने मे ही उनका शरीर सदैव पुलकायमान रहता है और वे स्वय गद्गद तथा (विशेष अवसर पर) ऑखो मे ऑसू भरे दिखायी देते है, वे मनुष्य उत्तम वैष्णव कहे जाते है। जिन लोगो का मुझमे पुत्र से भी बढ कर निरन्तर स्नेह रहता है और गृह आदि सभी कुछ मेरे भरोसे छोड कर उससे अलग रहते है, वे उत्तम वैष्णव है। यहाँ से ले कर ब्रह्म-लोक तक यह समस्त चराचर जगत् मेरे द्वारा ही

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं मत्तं सर्वं चराचरम्। सर्वेषामहमेवेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमा ॥५६॥
असख्यकोटिब्रह्माण्ड ब्रह्मविष्णुशिवादय। प्रलये मयि लीयन्ते चेतिज्ञा वैष्णवोत्तमा ॥५७॥
तेज स्वरूप परम भक्तानुग्रहविग्रहम्। स्वेच्छामय निर्गुण च निरीह प्रकृते परम् ॥५८॥
सर्वे प्राकृतिका मत्त आविर्भूतास्तिरोहिता। इति जानन्ति ये देवि ते नरा वैष्णवोत्तमा ॥५९॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयो पुर। उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकधरा ॥६०॥

गङ्गोवाच

यामि चेद्भारत नाथ भारतीशापन पुरा। तवाऽऽज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम् ॥६१॥
यानि कानि च पापानि मह्य दास्यन्ति पापिन। तानि मे केन नश्यन्ति तदुपाय वद प्रभो ॥६२॥
कति काल परिमित स्थितिर्मे तत्र भारते। कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णो परम पदम् ॥६३॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत्सर्व जानासि सर्ववित्। सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपाय वद प्रभो ॥६४॥

श्रीकृष्ण उवाच

जानामि वाञ्छित गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि। पतिस्ते रुद्ररूपोऽय लवणोदो भविष्यति ॥६५॥
ममैवांशः समुद्रश्च त्व च लक्ष्मीस्वरूपिणी। विदग्धाया विदग्धेन सगमो गुणवान्भुवि ॥६६॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते। सौभाग्य तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥६७॥
अद्यप्रभृति देवेशि कले पञ्चसहस्रकम्। वर्षं स्थितिस्ते भारत्या भुवि शापेन भारते ॥६८॥
नित्य वारिधिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम्। त्वमेव रसिका देवी रसिकेन्द्रेण सयुता ॥६९॥
त्वां तोषयन्ति स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च। भारतस्था जना सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तित ॥७०॥

उत्पन्न होता है और मैं ही सब का अधीश्वर हूँ, ऐसा ज्ञान रखने वाले उत्तम वैष्णव कहे जाते है। असख्य करोड ब्रह्माण्ड और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी प्रलय के समय मुझमे ही लीन होते है, ऐसा जानने वाले उत्तम वैष्णव होते है। तेज स्वरूप, श्रेष्ठ, भक्तो पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, निर्गुण, निरीह और प्रकृति से परे मै हूँ। समस्त प्राकृतिक सृष्टि मेरे द्वारा ही आविर्भूत (उत्पन्न) और तिरोहित (नष्ट) होती रहती है। हे देवि! ऐसा जानने वाले मनुष्य उत्तम वैष्णव कहे जाते है। उन दोनो के सामने ऐसा कह कर देवेश (भगवान् श्रीकृष्ण) चुप हो गये। अनन्तर भक्तिपूर्वक शिर झुकाये गगा ने कहा ॥२३-६०॥

गगा ने कहा—हे नाथ! पूर्व काल के सरस्वती-शाप वश मे आप की आज्ञा और राजेन्द्र (भगीरथ) के तप के कारण अभी भारत जा रही हूँ किन्तु हे प्रभो! वहाँ पापी लोग पाप की राशि मुझे देगे, उसका नाश कैसे होगा, बताने की कृपा करे। हे सर्वेश! भारत मे कितने दिनो तक मेरी स्थिति रहेगी और कब आपके परमोत्तम विष्णु लोक जाऊँगी हे प्रभो! सर्वज्ञ होने के नाते आप मेरा अन्य सभी अभीष्ट जानते है, अत उसका उपाय बताने की कृपा करे, क्योकि आप सभी के अन्तरात्मा और सर्वज्ञाता है ॥६१ ६४॥

श्रीकृष्ण बोले—हे गगे, हे सुरेश्वरि! मै तुम्हारा सभी मनोरथ जानता हूँ, भीषण रूप धारण करने वाला लवण (खारा) सागर तुम्हारा पति होगा। समुद्र मेरा ही अश है और लक्ष्मी स्वरूपिणी तुम हो। विद्वान् के साथ विदुषी का समागम भूतल मे अति उत्तम माना गया है। भारत मे सरस्वती आदि नदियो को तुम्हारे द्वारा सौभाग्य प्राप्त होगा तथा लवण सागर की तुम सबसे अधिक प्रेमभाजन बनोगी। हे देवेशि! भारत मे भारती के शापवश आज से कलियुग के पाच सहस्र वर्ष तक तुम्हारी स्थिति रहेगी। तुम वहाँ एकान्त स्थान मे रसिकेद्र समुद्र के साथ नित्य क्रीडा करोगी। क्योकि तुम अत्यन्त रसविलासिनी हो। भारत निवासी सभी लोग भक्तिपूर्वक भगीरथ निर्मित स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति और पूजा करेगे। कौथुमी शाखा की पद्धति के अनुसार जो तुम्हारा नित्य ध्यान, पूजा, स्तुति और प्रणाम करेगे,

ध्यानेन कौथुमोक्तेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति । य स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफल लभेत् ।।७१।।
गङ्गा गङ्गेति योब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति ।।७२।।
सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पाप ते भविष्यति । मद्भक्तदर्शने तावत्तत्रैव हि विनश्यति ।।७३।।
पापिना तु सहस्राणा शवस्पर्शेन यत्तव । मन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघ च विनश्यति ।।७४।।
यत्र यत्र भवेद्गङ्गे मन्नामगुणकीर्तनम् । तत्रैव त्वमधिष्ठान करिष्यस्यघमोचनात् ।।७५।।
सार्ध सरिद्भि श्रेष्ठाभि सरस्वत्यादिभि शुभे । तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र मद्गुणकीर्तनम् । ७६।।
यद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी । रेणुप्रमाण वर्ष च स वैकुण्ठे वसेद्ध्रुवम् ।।७७।
स्नास्यन्ति त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृतिपूर्वकम् । समुत्सृजन्ति प्राणाश्च ते गच्छन्ति हरे पदम् ।।७८।।
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम् । असख्यक प्राकृतिक लय द्रक्ष्यन्ति ते नरा ।।७९।।
मृतस्य बहुपुण्येन तच्छव त्वयि विन्यसेत् । प्रयाति स च वैकुण्ठ यावदस्थना स्थितिस्त्वयि ।।८०।।
कायव्यूह तत कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मजम् । तस्मै ददानि सारूप्य त करोमि च पार्षदम् ।।८१।।
अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत् । तस्मै ददामि सारूप्य त करोमि च पार्षदम् ।।८२।।
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणास्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मै ददामि सारूप्यमसख्य प्राकृत लयम् ।।८३।।
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणान्मन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मै ददामि सालोक्य यावद्वै ब्रह्मणो वय ।।८४।।
तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन । मन्मन्त्रोपासकाना च नित्य नैवेद्यभोजिनाम् ।।८५।।
पूत कर्तु स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदै ।।८६।।
सद्य स याति गोलोक मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ।।८७।।
मद्भक्तबान्धवा ये ये ते ते पुण्यधिय शुभे । ते यान्ति रत्नयानेन गोलोक च सुदुर्लभम् ।।८८।।
यत्र तत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति । जीवन्मुक्ताश्च ते पूता भक्तसंनिधिमात्रत ।।८९।।

वे अश्वमेध-फल प्राप्त करेगे क्योकि सैकडो योजन से जो 'गगे-गगे' कहता है, वह समस्त पापो से मुक्त हो कर विष्णु लोक प्राप्त करता है ।।६५-७२।।

सहस्रो पापियो के स्नान करने से जो पाप तुम्हे होगा, वह मेरे भक्तो के दर्शन करने से ही उसी समय नष्ट हो जायगा। उसी प्रकार सहस्रो पापियो के शव (मुर्दा) स्पर्श से जो पाप तुम्हे प्राप्त होगा, वह मेरे मन्त्रो के उपासक भक्तो के स्नान करने से नष्ट हो जायगा। हे गगे ! जहाँ-जहाँ मेरे नाम व गुणो के कीर्तन होगे, वहाँ पाप नाश करने के लिए तुम्हारा अधिष्ठान होगा। हे शुभे ! सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियो के साथ (रह कर तुम्हारे तट पर) जहाँ कही मेरे गुणो का कीर्तन होगा वह उसी समय तीर्थ स्वरूप हो जायगा। उसके रेणु स्पर्श मात्र करने से पातकी पवित्र हो कर वैकुण्ठ मे उतने रेणु प्रमाण वर्ष निश्चित निवास करेगे। भक्ति ज्ञान पूर्वक और मेरे नाम का स्मरण करते हुए जो तुम्हारे जल मे अपना प्राण परित्याग करेगे, वे विष्णु पद प्राप्त करेगे तथा वे मनुष्य विष्णु के चिरस्थायी पार्षद होगे और, वहाँ रह कर असख्य प्राकृतिक प्रलय का दर्शन करते रहेगे। मृतक प्राणी के बहु पुण्य होने पर ही उसका शव तुम्हारे जल मे डाला जायगा और जब तक उसकी अस्थि तुम्हारे भीतर रहेगी उतने समय वह वैकुण्ठ मे रहेगा। इस प्रकार अपने कर्मों के भोग कराने और कायव्यूह (काया कल्प) करने के अनन्तर उसे सारूप्य मोक्ष दे कर मै अपना पार्षद बनाता हूँ। अज्ञानी प्राणी यदि तुम्हारे जल का स्पर्श कर के अपने प्राणो का परित्याग करता है, तो मै उसे सारूप्य मोक्ष दे कर अपना पार्षद बनाता हूँ। तुम्हारे नाम का स्मरण करते हुए यदि कही अन्यत्र प्राणोत्सर्जन करता है, तो मै उसे सालोक्य मोक्ष देता हूँ, जिसमे रह कर असख्य प्रलय का दर्शन करता है। मेरे नामो के स्मरण पूर्वक अन्यत्र प्राण परित्याग करने पर उसे ब्रह्मा की आयु तक सालोक्य (मोक्ष) प्रदान

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्ता च तमुवाच भगीरथम् । स्तुहि गङ्गामिमा भक्त्या पूजा कुरु च साम्प्रतम् ॥९०॥
भगीरथस्ता तुष्टाव पूजयामास भक्तित । ध्यानेन कौथुमोक्तेन स्तोत्रेण च पुन पुन ॥९१॥
श्रीकृष्ण प्रणनामाथ परमात्मानमीश्वरम् । भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धान गतो हरि ॥९२॥
इति श्रीब्रम्हवैवर्तेमहापुराणे प्रकृतिखण्डे नारदनारायणसवादे गङ्गोपाख्यान नाम प्रथमोऽध्याय ॥१॥

करता हूँ। मेरे मन्त्रो के उपासक गणो के, जो नित्य मेरे नैवेद्य (मेरे लिए अर्पित) का भोजन करते है, तीर्थ या तीर्थ से भिन्न स्थानो मे प्राण त्याग करने की कोई विशेषता नही रहती है। क्योकि वह लीलामात्र से तीनो लोको को पवित्र करने मे समर्थ रहता है। इसीलिए उत्तम रत्नो के सार भाग मे रचित विमान द्वारा वह गोलोक जाता है। हे शुभे ! मेरे भक्तो के जितने पुण्यात्मा बान्धव गण रहते है, वे भी रत्न खचित विमाना द्वारा अत्यन्त दुर्लभ गोलोक प्राप्त करते है। ज्ञानी, अज्ञानी किसी भी अवस्था मे रह कर वे जहा-कही प्राण परित्याग करते है, केवल भक्तो की सन्निधिमात्र से वे पवित्र एव जीवन्मुक्त होते है। गगा जी मे इतना कह कर भगवान् श्री हरि ने भगीरथ से भी कहा कि भक्तिपूर्वक इन गगा की स्तुति और पूजा करो। पश्चात् भगीरथ ने भक्तिपूर्वक कोथुमी शाखानुसार ध्यान, पूजन और स्तोत्र द्वारा गगा की बार-बार स्तुति की तथा परमात्मा एव ईश्वर श्रीकृष्ण और गगा को प्रणाम किया। उपरान्त भगवान् अन्तर्हित हो कर चले गये। ॥७३-९२॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृतिखण्ड मे नारद और नारायण के सवाद मे गगोपाख्यान नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

नारदउवाच

कले पञ्चसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वरी । क्व गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारायण उवाच

भारत भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया । जगाम त च वैकुण्ठ शापान्ते पुनरेव सा ॥२॥
भारत भारती त्यक्त्वा चागमत्तद्धरे पदम् । पद्मावती च शापान्ते गङ्गायाश्चैव नारद ॥३॥
गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतातिस्र' प्रिया हरे । तुलसीसहिता ब्रह्मश्चतस्र कीर्तिता श्रुतौ ॥४॥

नारद उवाच—

हेतुना केन देवी वै विष्णुपादाब्जसभवा । धातुः कमण्डलुस्था च शकरस्य शिरोगता ॥५॥
बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायणप्रिया । अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

श्रीनारायण उवाच

पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी । राधाकृष्णाङ्गसभूता तदशा तत्स्वरूपिणी ॥७॥
द्रवाधिष्ठातृरूपा या रूपेणाप्रतिमा भुवि । नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिता । ८ ।
शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा । तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा ।९॥

नारद बोले—कलियुग के पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने के अनन्तर महाभागा सुरेश्वरी (गगा) कहाँ चली गयी, मुझे बताने की कृपा करे ॥१॥

नारायण बोले—सरस्वती के शापवश गगा जी भारत आयी और शाप के अन्त होने पर ईश्वर की इच्छा से उन्होने पुन वैकुण्ठ की यात्रा की। हे नारद ! गगा शाप के अन्त होने पर सरस्वती और पद्मावती (लक्ष्मी) ने भी भारत त्याग कर विष्णु लोक (वैकुण्ठ) की यात्रा की। हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णु की गगा, सरस्वती और लक्ष्मी ये तीन स्त्रियाँ है तथा वेद मे तुलसी समेत चार बतायी गयी है ॥२-४॥

नारद बोले—गगा देवी भगवान् विष्णु के चरण कमल से क्यो निकली, ब्रह्मा के कमण्डलु मे क्यो स्थित हुई और शकर जी के मस्तक पर कैसे पहुँची। हे मुनिश्रेष्ठ ! वही गगा भगवान विष्णु की प्रिया किस प्रकार हुई, यह सब मुझे बताने की कृपा करे ॥५-६॥

श्री नारायण बोले—पहले समय मे गगा राधाकृष्ण के अग से उत्पन्न होकर उसी गोलोक मे जल रूप हुई थी, जो उन्ही के अश और उन्ही के स्वरूप को धारण किये थी एक बार जल की अधिष्ठात्री देवी गगा, जो इस भूतल मे अनुपम रूप, नवीन यौवन और रत्नो के आभूषणो से विभूषित थी । शरत्काल के मध्याह्न (विकसित) कमल की भाँति मुख था। अत मन्द मुसुकान समेत अत्यन्त मनोहर लग रही थी। तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कीर्त्ति पूर्ण रूपरग तथा शारदीय चन्द्रमा के समान उनकी प्रभा थी स्निग्ध प्रभा के कारण उनके शरीर मे अत्यन्त लुनाई (चिकनाहट) थी, एव उनका शुद्ध स्वरूप था। अत्यन्त पीन (मोटी) और कठिन श्रोणी (नाभि के नीचे और दोनो जाघो के आमने-सामने वाला भाग), अत्यन्त सुन्दर एव श्रेष्ठ नितम्ब, पीन, उन्नत, अत्यन्त कठिन और अत्यन्त गोलाकार दोनो स्तन, सुचारु, सुन्दर कटाक्ष पूर्ण तिरछी आँखे, मालती की माला से युक्त टेढे शिर के बाल समूह (शिर का जूडा), चन्दन बिन्दु मिश्रित

स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी । सुपीनकठिनश्रोणी सुनितम्बयुगं वरम् ॥१०॥
पीनोन्नत सुकठिनं स्तनयुग्म सुवर्तुलम् । सुचारुनेत्रयुगल सुकटाक्ष सुवक्रिमम् ॥११॥
वक्रिम कबरीभार मालतीमाल्यसयुतम् । सिन्दूरबिन्दुललित सार्ध चन्दनबिन्दुभि ॥१२॥
कस्तूरीपत्रिकायुक्त गण्डयुग्म मनोहरम् । बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठ च सुन्दरम् ॥१३॥
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वलाम् । वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥१४॥
सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुत्तस्थे सुलज्जिता । वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्या विभोर्मुखम् ॥१५॥
निमेषरहिताभ्या च पिबन्ती सतत मुदा । प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसगमलालसा ॥१६॥
मूर्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका ॥१७॥
गोपी त्रिशत्कोटियुक्ता कोटिचन्द्रसमप्रभा । कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना ॥१८॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा मत्तवारणगामिनी । अमूल्यरत्नरचितनानाभरणभूषिता ॥१९॥
माणिक्यखचित हारममूल्य वह्निशौचकम् । पीताभवस्त्रयुगल नीवीयुक्त च बिभ्रती ॥२०॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्ट कोमल च सुरञ्जितम् । कृष्णदत्तार्घ्यसयुक्त विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम् ॥२१॥
रत्नेन्द्रराजखचितविमानादवरुह्य च । सेव्यमाना च सखिभि श्वेतचामरवायुना ॥२२॥
कस्तूरी बिन्दुतिलक चन्दनेन्दुसमन्वितम् । दीप्तदीपप्रभाकार सिन्दूरारुणसुन्दरम् ॥२३॥
दधती भालमध्ये च सीमन्ताधस्तदुज्ज्वलम् । पारिजातप्रसूनादिमालायुक्त सुवक्रिमम् ॥२४॥
सुचारुकबरीभार कम्पयन्ती च कम्पिता । सुचारुनासा सयुक्तमोष्ठ कम्पयती रुषा ॥२५॥
गत्वा तस्थौ कृष्णपार्श्वे रत्नसिहासने वरे । सखीना च समूहैश्च परिपूर्णा विभो सभा ॥२६॥

सिन्दूर की ललित बिन्दु, कस्तूरी-पत्रिका (कामकला) से सुशोभित और मनोहर दोनो कपोल, बन्धूक (दुपहरिया) पुष्प के समान सुन्दर अधरोष्ठ, पके अनार के दाने के समान अत्यन्त उज्वल दाँतो की पक्तियाँ और अग्नि की भाँति विशुद्ध दो वस्त्रो को धारण किये सुन्दर नीवी से सुशोभित हो रही थी। इस प्रकार अत्यन्त सज-धज कर कामुकी भाव से लजाती हुई वह भगवान् श्री कृष्ण के समीप बैठी थी और नवसगम की लालसा से हर्ष पूर्ण एव प्रफुल्लित मुख किये अपने उन नेत्रो से, जो कमल के पत्ते की भाँति बडे थे, भगवान् के मुख का निरन्तर एकटक लगाये दर्शन-पान कर रही थी। भगवान् के रूप मे इतना विभोर थी कि वह मूर्छित-सी मालूम हो रही थी और उनके शरीर मे पुलकावली से रोमाच हो रहा था। उस समय वहाँ राधिका जी भी विद्यमान थी, जो तीस करोड गोपियो से युक्त, करोडो चन्द्रमा के समान प्रभा पूर्ण थी। क्रुद्ध होने के नाते उनका मुख रक्त कमल की भाँति (लाल) हो गया था और रक्त कमल की भाँति नेत्र भी थे। श्वेत चम्पा के समान उनके शरीर का रग, मतवाले हाथी की भाँति गमन (चाल), अमूल्य रत्नो के बने अनेक भाँति के आभूषणो से भूषित, मणियो से खचित अमूल्य हार से सुशोभित, वह्नि के समान विशुद्ध दो वस्त्र धारण किये थी, जिसकी नीवी भी अत्यन्त सुन्दर थी। स्थल कमल की भाँति कान्ति पूर्ण, कोमल एव अत्यन्त रजित, उनका चरण कमल था, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण अर्घ्य प्रदान करते थे। इस प्रकार के चरणो का विन्यास करती (उठा-उठाकर रखती) हुई परमोत्तम रत्नो से खचित विमान से नीचे उतरी, जो सखियो द्वारा लाये गये चामरो की वायु से सुसेवित हो रही थी। उनके भाल के मध्य मे चन्दन के चन्द्रमा युक्त कस्तूरी की विन्दी की तिलक थी, जो प्रदीप्त दीप-प्रभा के समान कान्ति वाली सिन्दूर की अरुणिमा से अत्यन्त सुन्दर थी। उनके केशपाश के नीचे पारिजात के पुष्पो की माला से विभूषित, अत्यन्त टेढे-मेढे बधी हुई चार चोटी थी, जो उस समय उनके (कोपावेग से) कम्पित होनेपर कम्पित हो रही थी और अत्यन्त सुन्दर नासिका युक्त ओष्ठ फडक रहा था। विभु की उस सभा मे सखी समूहो के साथ जाकर उस रत्नसिहासन पर भगवान् श्रीकृष्ण के पार्श्व (बगल) मे बैठ गयी। उन्हे देखकर अच्युत श्रीकृष्ण ने उठकर उनका सादर स्वागत किया

ता च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरमच्युतः । सभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः ॥२७॥
प्रणेमुरतिभक्ताश्च गोपा नम्रात्मकधरा. । तुष्टुवुस्ते च भक्त्या त तुष्टाव परमेश्वर ॥२८॥
उत्थाय गगा सहसा सभापा च चकार सा । कुशल परिपप्रच्छ भीताऽतिविनयेन च ॥२९॥
नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । ध्यानेन शरणापन्ना श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥३०॥
तद्धृत्पद्मे स्थित. कृष्णो भीतायै चाभय ददौ । बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च ॥३१॥
ऊर्ध्वे सिहासनस्था च राधा गगा ददर्श सा । सुस्निग्धा सुखदृश्या च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥३२॥
असख्यब्रह्मणामाद्या चाऽदिसृष्टि सनातनीम् । यथा द्वादशवर्षीया कन्या च नवयौवनाम् ॥३३॥
विश्ववृन्दे निरुपमा रूपेण च गुणेन च । शान्ता कान्तामनन्ता तामाद्यन्तरहिता सतीम् ॥३४॥
शुभा सुभद्रा सुभगा स्वामिसौभाग्य मयुताम् । सौन्दर्यसुन्दरी श्रेष्ठा सुन्दरीष्वखिलासु च ॥३५॥
कृष्णार्धा गी कृष्णसमा तेजसा वयसा त्विषा । पूजिता च महालक्ष्म्या महालक्ष्मीश्वरेण च ॥३६॥
प्रच्छाद्यमाना प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम् । सखीदत्त च ताम्बूल गृह्णतीमन्यदुर्लभम् ॥३७॥
अजन्या सर्वजननी धन्या मान्या च मानिनीम् । कृष्णप्राणाधिदेवी च प्राणप्रियतमा रमाम् ॥३८॥
दृष्ट्वा रासेश्वरी तृप्ति न जगाम सुरेश्वरी । निमेषरहिताभ्या च लोचनाभ्या पपौ च ताम् ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा । वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने ॥४०॥

राधिकोवाच

केय प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम् । पश्यन्ती सतत पार्श्वे सकामा रक्तलोचना ॥४१॥
मूर्छा प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः ॥४२॥

और मन्द मुसुकान एव मधुर वाणी द्वारा उनसे सम्भाषण करते हुए उन्हे बैठाया । अनन्तर गोपगणो ने भयभीत होकर उन्हे प्रणाम किया और भक्ति पूर्वक परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति आरम्भ कर दी । गगा ने भी सहसा उठकर उनसे कुछ बातचीत की ओर भयभीत होकर अत्यन्त विस्मय से उनसे कुशल पूछी। उस समय गगा त्रस्त होकर, भय के नाते जिनके कण्ठ, ओठ ओर तालू सूख गये थे, नम्र भावसे भगवान् श्रीकृष्ण के चरणशरण मे ध्यान मग्न हो रही थी । अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके हृदय-कमल मे स्थित होकर उन्हे अभय दान दिया और सर्वेश्वर भगवान् के वरदान द्वारा वह शात चित्त हुई । पश्चात् गगा ने ऊपर सिहासनासीन श्री राधिका जी को देखा, जो अत्यन्त स्निग्ध, देखने मे अत्यन्त सुखकर ओर ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो रही थी । असख्य ब्रह्म की आदि जननी, आदि सृष्टि तथा सनातनी राधाजी की मूर्ति, नव यौवन-भूषित बारह वर्ष वाली कन्या के समान प्रतीत हो रही थी । जो समस्त विश्व समूहो मे गुण और रूप मे निरुपम (अद्वितीय), शान्त प्रकृति की स्त्री, अनन्त, आदि अन्त (जन्म- मरण)से रहित, सती, शुभ, अत्यन्त भद्र रूप, सुन्दरी, स्वामी-सौभाग्य से युक्त, सौन्दर्य की रानी, समस्त सुन्दरियां मे श्रेष्ठथी । भगवान् श्रीकृष्ण की अर्द्धागिनी, उनके समान तेज, अवस्था और कान्ति से युक्त, महालक्ष्मीश्वर द्वारा पूजित होने वाली महालक्ष्मी, भगवान् की उस सभा को अपनी कान्ति से आच्छादित करने वाली उस अत्यन्त प्रभा से पूर्ण थी। सखियो के दिए हुए ताम्बूल (पान) का ही ग्रहण करती थी जो अन्य के लिए दुर्लभ है। स्वय जन्म रहित, समस्त की जननी, धन्य, मान्य, मानिनी, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणो की अधीश्वरी, उनके प्राणो की प्रियतमा एव रमा रूप ह । रासेश्वरी राधिका जी को इस भाँति देख कर गगा को तृप्ति नही होती थी, वे अपने अनिमेष लोचनो से उनकी माधुरी छवि का एकटक दर्शन-पान कर रही थी। हे मुने! इसी बीच शान्त विनीत राधिका ने मन्द-मन्द हँसती हुई मधुर वाणी द्वारा जगदीश भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥७-४०॥

राधिका बोली—हे प्राणेश! यह कल्याण मूर्ति कौन है जो तुम्हारे पार्श्व मे बैठ कर सस्मित भाव से तुम्हारे मुखकमल को निरन्तर देख रही है। काम उत्पन्न होने से उसके नेत्र लाल हो गए हे। तुम्हारे रूप पर (मोहित होकर)

त्वं चापि मा संनिरीक्ष्य सकाम सस्मित सदा । मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ।।४३।।
त्वमेव चैव दुर्वृत्त वार वारं करोषि च । क्षमां करोति ते प्रेम्णा स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा।।४४।।
सगृह्येमां प्रियामिष्टा गोलोकाद्गच्छ लम्पट । अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति सुरेश्वर ।।४५।।
दृष्टस्त्व विरजायुक्तो मया चन्दनकानने । क्षमा कृता मया पूर्व सखीनां वचनादहो ।।४६।।
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधान कृत पुरा । देह सत्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा ।।४७।।
कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ।।४८।।
गृह मयि गताया च पुनर्गत्वा तदन्तिकम् । उच्चैरौषीर्विरजे विरजे चेति सस्मरन् ।।४९।।
तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी । सालकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्य च दर्शनम् ।।५०।।
ततस्तां च समाश्लिष्य वीर्याऽधान कृत त्वया । ततो बभूवुस्तस्या च समुद्राः सप्तचैव हि ।।५१।।
दृष्टस्त्व शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने । सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधान कृत त्वया ।।५२।।
शोभा देह परित्यज्य प्राविशच्चन्द्रमण्डलम् । ततस्तस्या शरीर च स्निग्ध तेजो बभूव ह ।।५३।।
सविभज्य त्वया दत्त हृदयेन विदूयता । रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किंचिन्मतिवराय च ।।५४।।
किंचित्स्त्रीणा मुखाब्जेभ्य किंचिद्राज्ञे च किंचन । किंचित्प्रकृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्च किंचन ।।५५।।
किंचिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किंचन । किंचित्कलसरौप्येभ्यः पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ।।५६।।
किंचित्फलेभ्य सस्येभ्य सुपक्वेभ्यश्च किंचन । नृपदेवगृहेभ्यश्च सस्कृतेभ्यश्च किंचन ।।५७।।
किंचिन्नूतनवस्त्रेभ्यो गोरसेभ्यश्च किंचन ।।५८।।

मूर्च्छित-सी हो रही है (सुधि बुधि खो रही है), इसके शरीर मे रोमाच हो गया है और वस्त्र से अपना मुख ढाके हुए बार-बार तुम्हे देख रही है। तुम मुझे ही देख कर सदैव सस्मित भाव से कामुक होते थे, किन्तु मेरे रहते हुए गोलोक म इस प्रकार का दुराचार हो ! तुम इस प्रकार का दुर्व्यवहार बार-बार करते आये हो, किन्तु तुम्हारे प्रेम के नाते म क्षमा कर देती हू क्योकि स्त्री जाति भोली-भाली स्वभाव की होती है। हे लम्पट ! (यदि ऐसा ही करना है) तो इसे ले कर यहा गोलोक से चले जाओ। हे सुरेश्वर ! अन्यथा तुम्हारा कल्याण नही होगा। क्योकि पहले एक बार मैने चन्दन वन मे तुम्हे विरजा के साथ (विलास मग्न) देखा था, किन्तु सखियो के कहने से मैने क्षमा कर दिया था। मेरा शब्द सुनने ही तुमने उसे पहले ही तिरोहित कर (छिपा) दिया था। पर, वह विरजा अपनी देह का त्याग कर नदी रूप हो गयी थी। जो एक करोड योजन की विस्तृत और उससे चौगुने योजनो की लम्बी हो कर तुम्हारी सत्कीर्ति रूप मे आज भी विद्यमान है। जब मै घर चली गयी तो पुन उसके समीप जाकर—हा विरजे, हा विरजे ! कह कर उच्च स्वर से (गला फाडकर) रुदन कर रहे थे, उस समय उस सिद्ध योगिनी ने योग द्वारा जल से निकल कर अलकारो से सज-धज कर तुम्हे अपना दर्शन दिया था। अनन्तर तुमने उसका गाढालिगन कर उसमे वीर्याधान किया, जिससे उसमे सात समुद्रो की उत्पत्ति हुई। दूसरी बार चम्पक वन मे शोभा गोपी के साथ (रति) करते) तुम पकडे गये थे। मेरा शब्द सुनने ही तुमने उसे छिपा दिया था। अनन्तर शोभा ने देह त्याग कर चन्द्र मण्डल मे प्रवेश किया और उसका शरीर स्निग्ध तेज मे परिवर्तित हो गयी थी। तब तुमने हार्दिक समवेदना प्रकट करते हुए उस तेज का विभाग कर रत्न, सुवर्ण, श्रेष्ठ बुद्धि वाले, स्त्रियो के मुख कमल, राजा, उत्तम वस्त्र, चाँदी, चन्दन-पक, जल, किसलय (नूतन पल्लव), पुष्प, फल, पके अन्न, सुसस्कृत राजगृह और देव मन्दिर को थोडा-थोडा कर बाँट दिया था। फिर वृन्दावन मे प्रभा गोपी के साथ समागम करते देखे गए। मेरा शब्द सुनने ही तुमने उसे अन्तर्हित कर दिया था। किन्तु प्रभा अपनी शरीर छोड कर सूर्य मण्डल मे प्रविष्ट हो गयी थी और उसकी देह तीक्ष्ण तेज मे परिणत हो गयी थी। रुदन करते हुए तुमने सप्रेम उस तेज का विभाजन किया था और लज्जा तथा उसके भय के नाते नेत्र, अग्नि, राजा, जन समुदाय, देवताओ, चोर गण, नाग गण, ब्राह्मण, मुनि, तपस्वी, सौभाग्यवती स्त्रियाँ और यशस्वी व्यक्तियो को बाँट दिया था।

दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने । सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ।।५९।।
प्रभा देहं परित्यज्य प्राविशत्सूर्यमण्डलम् । ततस्तस्याः शरीरं च तीक्ष्णं तेजो च बभूह ।।६०।।
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा । विभज्य चक्षुषोर्दत्तं लज्जया मद्भयेन च ।।६१।।
हुताशनाय किंचिच्च नृपेभ्यश्चापि किंचन । किंचित्पुरुषसंघेभ्यो देवेभ्यश्चापि किंचन ।।६२।।
किंचिद्दस्युगणेभ्यश्च नागेभ्यश्चापि किंचन । ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किंचन ।।६३।।
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किंचन । तच्च दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं रोदितुमुद्यत ।।६४।।
शान्त्या गोप्या युतस्त्वं च दृष्टो वै रासमण्डले । वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षित ।।६५।।
रत्नप्रदीपैर्युक्तश्च रत्ननिर्मितमन्दिरे । रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ।।६६।।
त्वया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवत्यै सुवासितम् । तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांस्त्वं पुरा विभो ।।६७।।
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया । शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ।।६८।।
ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह । संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा ।।६९।।
विश्वे विषयिणे किंचित्सत्त्वरूपाय विष्णवे । शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किंचिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ।।७०।।
त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किंचन । तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किंचन ।।७१।।
मया पूर्वं हि दृष्टस्त्वं गोप्या च क्षमया सह । सुवेषवान्माल्यवांश्च गन्धचन्दनसंयुत ।।७२।।
रत्नभूषितया चारुचन्दनोक्षितया तया । सुखेन मूर्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनसंयुते ।।७३।।
श्लिष्टोऽभून्निद्रया सद्यः सुखेन नवसंगमात् । मया प्रबोधितौ सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ।।७४।।
गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुरली च मनोहरा वनमाला कौस्तुभश्च ह्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ।।७५।।
पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्यापि च भवान्प्रभो ।।७६।।
क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ।।७७।।
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा । किंचिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किंचन ।।७८।।

इस प्रकार वह तेज सभी लोगों को दे कर पहले की भांति पुन: रुदन करने लग गए थे। पुन: रास मण्डल के अवसर पर वसन्त के समय चन्दन चर्चित सर्वांग और पुष्प माला धारण किये पुष्प की शय्यापर तुम शान्ति गोपी के साथ (विहार करते) देखे गये थे। हे विभो! उस रत्न खचित महल में रत्न प्रदीप के प्रकाश में तुम दोनों रत्नों के भूषणों से भूषित हो कर तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुवासित ताम्बूल वह खा रही थी और उसका दिया हुआ पान तुम खा रहे थे। हे प्रभो! उस समय मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे अन्तर्हित कर (दिया) दिया था। किन्तु भयभीत हो कर वह शान्ति अपनी देह त्याग कर तुममें लीन हो गयी थी और उसका शरीर श्रेष्ठ गुण में परिवर्तित हो गया था। सप्रेम रुदन करते हुए तुमने उसका विभाजन कर के विश्व में विषयी सत्त्वरूप विष्णु और शुद्ध सत्त्व स्वरूप महालक्ष्मी, तुम्हारे मन्त्र के उपासक वैष्णव गण, तपस्वीगण, धर्म और धर्मनिष्ठ व्यक्तियों को साप दिया था। फिर मैंने क्षमा गोपी के साथ तुम्हें देखा था। उत्तम वेष बनाये—पुष्प माला पहने गन्ध चन्दन से चर्चित—थे। पुष्प और चन्दन से सुवासित उस शय्या पर रत्न भूषण भूषित और चारु चन्दन चर्चित उस रमणी के साथ सुख विहार कर रहे थे, अनन्तर नव समागम के कारण तुम दोनों शीघ्र ही निद्रा मग्न हो गए थे तो मैंने ही तुम दोनों को जगाया था, यह स्मरण करो। उस समय मैंने तुम्हारा पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभ मणि और अमूल्य रत्न कुण्डल ले लिया था किन्तु प्रेमवश और सखियों के कहने से मैंने पुन: तुम्हें लौटा दिया था। हे प्रभो! उसी लज्जा के कारण आप कृष्ण वर्ण के (काले) हो गये थे, जो आज भी दिखायी दे रहा है। और क्षमा ने लज्जित हो कर देह त्याग दिया, पृथिवी में प्रविष्ट हो गयी तथा उसका शरीर श्रेष्ठ गुण में परिवर्तित हो गया था। प्रेम का आसू बहाते हुए तुमने उसका विभाग कर विष्णु, वैष्णव, धर्मनिष्ठ, धर्म, दुर्बल, तपस्वी, देवताओ और

धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किंचन। तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किंचन ॥७९॥
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। त्वद्गुणं बहुविस्तारं जानामि च परं प्रभो ॥८०॥
इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना। गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्या लज्जिता सतीम् ।८१।
गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। तिरोभूय सभामध्यात्स्वजलं प्रविवेश सा ॥८२॥
गङ्गा रहस्य योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। श्रीकृष्णचरणाम्भोजं परमं शरणं ययौ ॥८३॥
गोलोकं चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकादिकं तथा। ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा ॥८४॥
सर्वतो जलशून्यं च शुष्कं गोलोकपङ्कजम्। जलजन्तुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥८५॥
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः। मनवो मानवाः सर्वे देवाः सिद्धास्तपस्विनः ।८६॥
गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः। सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥८७॥
वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम्। वरेशं च वरार्हं च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥८८॥
निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम्। निर्गुणं च निरुत्साहं निर्व्यूहं च निरञ्जनम् ॥८९॥
स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्। सत्यस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥९०॥
परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम्। प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥९१॥
सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाङ्कितविग्रहाः। सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ९२॥

पण्डितो को थोडा-थोडा कर के बाँट दिया था। हे प्रभो! यह सब मैंने तुम्हे सुना दिया अब और क्या सुनना चाहते हो, क्योकि मैं जानती हूँ कि तुम्हारा गुण बहुत विस्तृत है॥४१-७९॥

इतना कह कर राधा ने रक्त कमल की भाँति (लाल) नेत्र किये गगा से कहना आरम्भ किया, जो लज्जित होने के कारण नीचे मुख किये खडी थी। उस समय सिद्धयोगिनी गगा योग द्वारा समस्त रहस्य जान कर सभा मध्य से तिरोहित हो कर अपने जल में प्रविष्ट हो गयी। अनन्तर सिद्धयोगिनी राधिका जी ने भी योग द्वारा गगा को सब स्थानो मे जल रूप से अवस्थित देख कर अपने चुल्लू से उन्हे पान करना आरम्भ कर दिया। इस रहस्य को सिद्ध योगिनी गगा ने योग बल से जान कर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल का परमोत्तम शरण प्राप्त किया। राधिका जी ने गोलोक, वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक आदि समस्त लोको मे सभी स्थान ढूढा किन्तु गगा नही दिखायी पडी। चारो ओर जलशून्य दिखायी देता था—गोलक (कुण्ड) के कमल सूख गये थे। जल जन्तुओ का समूह अपना शरीर छोड चुका था। अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, मनु, मानव, समस्त देव, सिद्ध और तपस्वीगण ने कण्ठ, ओठ एव तालू के सूख जाने पर (विह्वल होकर) गोलोक का प्रस्थान किया और वहा प्रकृति से परे रहने वाले सर्वेश गोविन्द को प्रणाम किया, जो उत्तम, वर के योग्य, वर प्रद, श्रेष्ठ, वरकारण, वरेश, वरार्ह, सर्वश्रेष्ठ, प्रभु, निरीह, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, अशरीरी, निरजन, स्वेच्छामय, साकार, भक्तो के अनुग्रहार्थ प्रकट होने वाले, सत्यस्वरूप, सत्येश, साक्षी रूप, सनातन, श्रेष्ठ, श्रेष्ठाधीश्वर, एव परम परमात्मा ईश्वर है। सभी लोगो ने भक्तिपूर्वक विनय विनम्र हो कर उस परमात्मा को प्रणाम किया और और गद्गद, आँखो मे आँसू भरे एव रोमाच शरीर हो कर भगवान् श्रीकृष्ण सर्वेश की स्तुति करना आरम्भ किया। उस समय ज्योति रूप परब्रह्म, जो समस्त कारणो का कारण है, अमूल्य रत्नो द्वारा खचित चित्र-विचित्र सिहासन पर सुशोभित हो रहा था। गोपाल गण श्वेत चामर से उसकी सेवा कर रहे थे ओर वह प्रसन्न मुख से मन्द मुसुकान करते हुए गोपियो का नृत्य-गान देख रहा था। सौ करोड गोपगण अपना सुन्दर वेष बनाये उसे चारो ओर से घेरे सेवा कर रहे थे, जो चन्दन चर्चित, रत्नो के भूषणो से भूषित, नूतन घन की भाति श्याम वर्ण, किशोरावस्था, पीताम्बर भूषित बारह वर्ष वाले गोपाल बाल की भाँति रूप बनाये स्थित था। करोडो चन्द्रमा की प्रभा से पूर्ण, पुष्ट और श्रीसम्पन्न शरीर धारण किये, अपने तेज से वहाँ चारो ओर आच्छन्न किए था और अति समान, मनोहर एव करोड़ो काम की सौन्दर्य लीला के लावण्यमय उसके शरीर को मन्द मुसुकान

ज्योतिर्मय पर ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । अमूल्यरत्नखचितचित्रसिंहासनस्थितम् ॥९३॥
सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना । गोपालिका नृत्यगीत पश्यन्त सस्मित मुदा ॥९४॥
वल्गुवेषैः परिवृत गोपैश्च शतकोटिभि । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गैरत्नभूषणभूषितम् ॥९५॥
नवीननीरदश्याम किशोर पीतवाससम् । यथा द्वादशवर्षीय बाल गोपालरूपिणम् ॥९६।
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । स्वतेजसा परिवृत सुखदृश्य मनोहरम् ॥९७॥
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यलीलालावण्यविग्रहम् । दृश्यमान च गोपीभि सस्मिताभिश्च सततम् ॥९८॥
भूषणैर्भूषिताभिश्च महारत्नविनिर्मितै । पिबन्तीभिर्लोचनाभ्या मुखचन्द्र प्रभोर्मुदा ॥९९॥
प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्ष स्थलस्थितम् । तया प्रदत्त ताम्बूल भुक्तवन्त सुवासितम् ॥१००॥
परिपूर्णतम रासे ददृशु सर्वत सुरा । मुनयो मानवा सिद्धास्तपसा च तपस्विन ॥१०१॥
प्रहृष्टमानसा सर्वे जग्मु परमविस्मयम् । परस्पर समालोच्य ते तमूचुश्चतुर्मुखम् ॥१०२॥
निवेदितु जगन्नाथ स्वाभिप्रायमभीप्सितम् । ब्रह्मा तद्वचन श्रुत्वा स्थित विष्णोस्तु दक्षिणे ॥१०२॥
वामतो वामदेवस्य चागमत्कृष्णमुत्तमम् । परमानन्दयुक्त च परमानन्दरूपकम् ॥१०३॥
सर्व कृष्णमय धाता चापश्यद्रासमण्डले । सर्व समानवेष च समानासनसस्थितम् ॥१०४।
द्विभुज मुरलीहस्त वनमालाविभूषितम् । मयूरपुच्छचूड च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०५।
अतीव कमनीय च सुन्दर शान्तविग्रहम् । गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥१०६॥
वाससा यशसा कीर्त्या मूर्त्या सुन्दरया समम् । परिपूर्णतम सर्व सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥१०७॥
क सेव्य सेवको वेति दृष्ट्वा निव क्तुमक्षम । क्षण तेज स्वरूप च रूपराशियुत क्षणम् ॥१०८॥
निराकार च साकार ददर्श द्वैधलक्षणम् ॥१०९॥
एकमेव क्षण कृष्ण राधया सहित परम् । प्रत्येकासनसस्थ च तया च सहित क्षणम् ॥१०९॥
राधारूपधर कृष्ण कृष्णरूपकलत्रकम् । किं स्त्रीरूप च पुरूप विधाता ध्यातुमक्षम ॥११०॥
हृत्पद्मस्थ च श्रीकृष्ण धाता ध्यानेन चेतसा । चकार स्तवन भक्त्या प्रणम्याथ त्वनेकधा ॥१११॥
तत स चक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया । अपश्यत्कृष्णमेक च राधावक्ष स्थलस्थितम् ॥१२॥

करती हुई गोपियाँ निरन्तर देख रही थी। महा-रत्नो से भूषित वे गोपियाँ प्रसन्न मुख मुद्रा मे भगवान् श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का अपने नेत्रो से (निमेष) पान कर रही थी, जिसे रास के समय देवो ने (भगवान् के) प्राणो की प्रियतमा श्री राधाजी के वक्ष स्थल पर स्थित और उन्ही द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूल (पान) खाते एव उस परिपूर्णतम को चारो ओर देखा था। मुनिगण, मानवगण, सिद्ध ओर तापस जनो को उसे देख कर अत्यन्त हर्ष ओर महान आश्चर्य हुआ था। अनन्तर आपस मे विचार-विमर्श करके देवो ने अपना अभिप्राय भगवान् जगदीश्वर से निवेदन करने के हेतु ब्रह्मा से कहा। ब्रह्मा देवो की बाते सुन कर विष्णु के दक्षिण भाग और वामदेव के बाँये भाग मे स्थित भगवान् श्रीकृष्ण के समीप गए। वहाँ उन्होने उस रासमण्डल मे परमानन्द युक्त ओर परमानन्द स्वरूप भगवान् कृष्णमय समस्त को देखा। वहाँ सभी लोग समान वेप, समान सिहासन पर स्थित, दो भुजा, हाथ मे मुरली, वनमाला से भूपित, (मुकुट मे) मोरपख लगाये, कौस्तुभ मणि से सुशोभित, अत्यन्त सुन्दर एव शान्त स्वरूप थे । तथा गुण, भूषण, रूप, तेज, अवस्था उनके वस्त्र, यश, आकृति, मूर्ति औरसुन्दरता सब मे समानता थी। सभी लोग समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न परिपूर्णतम (ब्रह्म) रूप थे। 'कौन स्वामी है और कोन सेवक' इसका निर्णय करने मे ब्रह्मा वहाँ देखते हुए भी असमर्थ थे । क्योकि क्षण मात्र मे तेज रूप, क्षण मे रूप राशि युक्त, क्षण मे कही अकेले कृष्ण और कही राधा समेत तथा कही क्षण मे राधा समेत कृष्ण प्रत्येक सिहासन पर स्थित थे। राधा रूप कृष्ण और कृष्ण रूप राधा को देख कर 'कौन स्त्री रूप है और कोन पुरुष रूप' इसका निर्णय बिना किए ब्रह्मा ध्यान करने मे असमर्थ हो गए थे। इसलिए अपने हृदय-कमल मे स्थित भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान ब्रह्मा चेतन

स्वपार्षदै परिवृत गोपीमण्डलमण्डितम् । पुन प्रणेमुस्त दृष्ट्वा तुष्टुवुश्च पुनश्च ते ॥११३॥
विज्ञाय तदभिप्राय तानुवाच सुरेश्वर । सर्वात्मा सर्वयज्ञेश सर्वेश सर्वभावन ॥११४॥

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशल ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते । इहाऽऽगच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु व ॥११५॥
आगता स्थ महाभागा गङ्गानयनकारणात् । गङ्गा मच्चरणाम्भोजे भयेन शरण गता ॥११६।
राधेमा पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्सनिधानत । दास्यामीमा बहि कृत्वा यूय कुरुत निर्भयाम् ॥११७॥
श्रीकृष्णस्य वच श्रुत्वा सस्मित कमलोद्भव । तुष्टाव सर्वाराध्या ता राधा श्रीकृष्णपूजिताम् ॥११८॥
वक्त्रैश्चतुर्भि सस्तूय भक्तिनम्रात्मकधर । धाता चतुर्णा वेदानामुवाच चतुरानन । ११९॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गा त्वदङ्गसभूता प्रभोर्वै रासमण्डले । युवयोर्द्रवरूपा या मुग्धयो शकर स्वराट् ॥१२०॥
कृष्णाशा च त्वदशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया । त्वन्मन्त्रग्रहण कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥१२१॥
भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठे च चतुर्भुज । भूगताया कलायाश्च लवणोदश्च वारिधि. ।१२२॥
गोलोकस्थाच या राधा सर्वत्रस्था तथात्मिका । तदात्मिका त्व देवेशि सर्वदा च तवाऽऽत्मजा ॥१२३॥
ब्रह्मणो वचन श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता । बहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रत ॥१२४॥
तत्रैव सवृता शान्ता तस्थौ तेषा च मध्यत । उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥१२५॥
तत्तोय ब्रह्मणा किंचित्स्थापित च कमण्डलौ । किंचिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धे चन्द्रशेखर ॥१२६॥
गङ्गायै राधिकामन्त्र प्रददौ कमलोद्भव । तत्स्तोत्र कवच पूजाविधान ध्यानमेव च ॥१२७॥
सर्व तत्सामवेदोक्त पुरश्चर्याक्रम तथा । गङ्गा तामेव सपूज्य वैकुण्ठ प्रययौ सती ॥१२८॥
लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने ॥१२९॥
अथ त सस्मित कृष्णो ब्रह्माण समुवाच ह । सर्व कालस्य वृत्तान्त दुर्बोध्यमविपश्चिताम् ॥१३०॥

हो कर करने लगे और भक्तिपूर्व अनेक बार प्रणाम कर के स्तुति करने लगे। अनन्तर भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मा ने नेत्र खोला तो राधाजी के वक्ष स्थल पर स्थित एक भगवान् श्रीकृष्ण ही उन्हे दिखायी पडे। जो अपने पार्षदो से घिरे हुए गोपी मण्डल से मण्डित थे। देवो ने उन्हे देख कर बार-बार प्रणाम ओर बार-बार स्तुति करना आरम्भ किया। उनके अभिप्राय को जान कर देवाधीश्वर भगवान् ने उन लोगो से कहा, जो सब के आत्मा, समस्त यज्ञो के ईश समस्त (चराचर) के ईश और सब को प्रिय है ॥८८-११५॥

श्री भगवान् बोले—हे ब्रह्मन्, हे कमलापते ! आवो। ओर महादेव ! यहा आवो। तुम लोगो का निरन्तर कुशल हो। गगा को ले जाने के लिए तुम लोग यहाँ आये हो, अत महाभाग हो । गगा भयभीत हो कर हमारे चरण कमल की शरण में प्राप्त है। राधिका जी मेरे समीप उसे देख कर उसका पान करना चाहती है। अत मै उसे तुम लोगो को दे रहा हूँ, तुम लोग इसे यहाँ से बाहर ले जा कर निर्भय बनाओ । भगवान् श्रीकृष्ण की बाते सुन कर हँसते हुए ब्रह्मा ने भगवान् की पूज्या और समस्त की आराध्या श्री राधिकाजी की स्तुति करना आरम्भ किया । चतुरानन ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक शिर झुकाये अपने चारो मुख द्वारा उनकी वेद स्तुति कर के पुन कहा कि भगवान के रासमण्डल मे यह गगा तुम्हारे ही अग से उत्पन्न हुई है और शकर जी द्वारा स्वरतान समेत (भगवान् के) गुण-गान करते समय यह द्रव (जल) रूप हो गयी है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण का अश ओर तुम्हारा अश होने के नाते यह तुम्हारी प्रिय कन्या के सदृश है। इसे उचित है कि तुम्हारे मन्त्र का ग्रहण कर तुम्हारा पूजन करे। इसके पति वैकुण्ठ निवासी चतुर्भुज विष्णु होगे ओर अपनी कलामात्र से पृथ्वी पर जाने पर लवण (खारा) सागर इसका पति होगा। हे देवेशि ! तुम गोलोक मे स्थित रहने वाली राधा हो, जो सर्वत्र स्थित रहती है और यह सर्वदा तुम्हारी कन्या है।

तृतीयोऽध्याय:

नारद उवाच

लक्ष्मी· सरस्वती गङ्गा तुलसी लोकपावनी एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति ॥१॥
गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुत मया। कथ सा तस्य पत्नी च बभूव ब्रूहि केशव ॥२॥

नारायण उवाच

गङ्गा जगाम वैकुण्ठ तत्पश्चाच्च गतो विधि·। गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥३॥

ब्रह्मोवाच

राधाकृष्णाङ्गसभूता या देवी द्रवरूपिणी। तदधिष्ठातृदेवीय रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥४॥
नवयौवनसपन्ना सुशीला सुन्दरी वरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहकारवर्जिता ॥५॥
यदङ्गसभवा नान्य वृणोतीय च त विना। तत्रापि मानिनी राधा महातेजस्विनी वरा ॥६॥
समुद्यता पातुमिमा भीतेय बुद्धिपूर्वकम्। विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मन ॥७॥
सर्वं विशुष्क गोलोक दृष्ट्वाऽहमगम तदा। गोलोक यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तलब्धये ॥८॥
सर्वान्तरात्मा सर्वं नो ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च। बहिश्चकार गङ्गा च पादाङ्गुष्ठनखाग्रत ॥९॥
दत्त्वाऽस्यै राधिकामन्त्र पूरयित्वा च गोलकम्। सप्रणम्य च राधेश गृहीत्वाऽऽगम विभो ॥१०॥
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमा सुरेश्वरीम्। सुरेश्वरस्त्व रसिको रसिका रसभावन ॥११॥
त्व रत्न पुसु देवेश स्त्रीरत्न स्त्रीष्विय सती। विदग्धाया विदग्धेन सगमो गुणवान्भवेत् ॥१२॥

नारद बोले—लक्ष्मी, सरस्वती, गगा और लोक-पावनी तुलसी, ये चारो स्त्रियाँ भगवान् विष्णु की ही पत्नी है और यह भी मैने सुना है कि गगा वैकुण्ठ लोक चली गयी है। अत हे केशव! वह उनकी पत्नी कैसे हुई, यह बताने की कृपा करे ॥१-२॥

नारायण बोले—गगा के वैकुण्ठ लोक चली जाने पर उनके पीछे ब्रह्मा भी वहाँ पहुँचे और गगा के साथ ही भगवान् जगदीश्वर को प्रणाम कर उनसे कहने लगे ॥३॥

ब्रह्मा बोले—श्री राधा और भगवान् श्रीकृष्ण के अग से यह जलमयी गगा उत्पन्न हो कर जल की अधिष्ठात्री देवी और भूतल मे अनुपम रुपवती है, जो नवीन युवावस्था से भूषित, सुशील, परममुन्दरी, शुद्ध सत्त्व-स्वरूप और क्रोध-अहकार से रहित है। जिसके अग से उत्पन्न हुई है उसके अतिरिक्त अन्य किसी को नही चाहती है किन्तु वहा की महातेजस्विनी राधा अत्यन्त मानिनी है। वे इसका पान कर लेने के लिए एकदम तैयार हो गयी थी पर भयभीत होते हुए भी इसने बुद्धि से काम लिया। परमात्मा श्रीकृष्ण के चरण कमल मे प्रवेश कर लिया। समस्त विश्व को सूखा हुआ देख कर मै भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा समस्त वृत्तान्त जानने के लिए गोलोक मे गया। समस्त के अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने मेरा सम्पूर्ण अभिप्राय जानकर अपने चरण के अगूठे के नखाग्र भाग मे गगा को बाहर निकाला ॥४-९॥

हे विभो! अनन्तर गगा को राधिकामत्र प्रदान किया और भगवान् द्वारा विश्व के समस्त गोलक (कुण्ड आदि जलाशयो) को जलपूर्ण कराया, उपरान्त श्री राधावर को प्रणाम कर के गगा साथ ले यहाँ आ रहा हूँ। अत गान्धर्व विवाह द्वारा इस सुरेश्वरी को अपनाओ, क्योकि तुम सुरेश्वर और रसिक हो। इसलिए रसिया को रसिक ही कामिनी

कृष्णवामाङ्गसभूता परमा राधिका पुरा । दक्षिणाङ्गात्स्वय सा च वामाङ्गात्कमला यथा ॥१६॥
तेन त्वा सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसभवा । स्त्रीपुंसौ वै तथैकाङ्गौ यथा प्रकृतिपूरुषौ ॥१७॥
इत्येवमुक्त्वा धाता च ता समर्प्य जगाम स । गान्धर्वेण विवाहेन ता जग्राह हरि स्वयम् ॥१८॥
शय्या रतिकरी कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । रेमे रमापतिस्तत्र गङ्गया सहितो मुदा ॥१९॥
गां पृथ्वी च गता यस्मात्स्वस्थान पुनरागता । निर्गता विष्णुपादाच्च गङ्गा विष्णुपदी स्मृता ॥२०॥
मूर्छा सम्प्राप सा देवी नवसगममात्रत । रसिका सुखसभोगाद्रसिकेश्वरसयुता ॥२१॥
तद्दृष्ट्वा दु खिता वाणी सापत्न्येर्ष्याविवर्जिता । नित्यमीर्ष्यति ता वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम् २२॥
गङ्गया सहितस्यैव तिस्रो भार्या रमापते. । सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रो ह्यभवन्मुने ॥२३॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे नारदनारायणसम्वादे गङ्गोपाख्यान नाम तृतीयोऽध्याय ॥३॥

चाहिए। तुम देव-पुरुषो मे पुरुष रत्न हो ओर यह स्त्रियो मे स्त्री रत्न है । अत विदग्ध (चतुर पुरुष) का विदग्धा (कलापूर्ण नायिका) के साथ समागम होना चाहिए, क्योकि ऐसा होना सुखकर बताया गया हे। जो मद (नशे) मे आकर किसी उपस्थित कन्या का त्याग करता हे उसे रुष्ट हो कर महालक्ष्मी छोड देती हे ओर अन्यत्र चली जाती हैं, इसमे सशय नही। ओर जो पण्डित होता है वह भी प्रकृति (रूपधारी स्त्री) का अपमान नही करता हे। क्योकि पुरुषगण प्राकृतिक (प्रकृति द्वारा उत्पन्न) ओर स्त्रियाँ प्रकृति की कला हैं। तुम आदि भगवान्, निर्गुण ओर प्रकृति से परे रहने वाले हो—दो भुजाओ को धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्द्धाग है ओर अर्द्धाग से चतुर्भुज (विष्णु) हुए हैं । पूर्वकाल मे परमोत्तम राधिकाजी भगवान् श्रीकृष्ण के बाये अग से उत्पन्न हुई है और बाये अग से उत्पन्न कमला (लक्ष्मी) की भाँति यह भी उनके दाहिने अग से उत्पन्न हुई है। इसीलिए यह तुम्हारी देह से उत्पन्न होने के कारण तुम्हारा वरण करना चाहती है, प्रकृति ओर पुरुष की भाँति स्त्री-पुरुष भी (मिल कर) एक ही अग कहे जाते हैं ॥१०-१७॥

इस प्रकार कह कर ब्रह्मा ने उसे उन्हे साप दिया ओर स्वय चले गये। पश्चात् स्वय विष्णु ने गान्धर्व विवाह द्वारा गगा को अपनाया। रति करने के निमित्त पुष्प की चन्दन-चर्चित उत्तम शय्या बना कर रमापति (विष्णु) ने उस पर गगा के साथ अत्यन्त प्रसन्नता से रमण किया। गा (पृथ्वी) मे आकर पुन अपने स्थान लौट आने से 'गगा' और भगवान् विष्णु के पाद (चरण) से निकलने के नाते 'विष्णुपदी' उन्हे कहा जाता है। रसियो मे प्रधान भगवान् विष्णु का समागम होने पर उस नव सगम मात्र से रसीली देवी गगा मूर्च्छित हो गयी। उस अवस्था को देख कर सरस्वती को बडा दुख हुआ क्योकि उन्हे उस समय सापत्न्य (सौत की) ईर्ष्या जाती रही। यद्यपि सरस्वती गगा से नित्य ईर्ष्या करती थी किन्तु गगा ने कभी भी सरस्वती से ईर्ष्या नही की। हे मुने! इस प्रकार रमापति (विष्णु) के गगा समेत तीन ही स्त्रियाँ हे और चौथी स्त्री तुलसी का साथ उसके पश्चात् हुआ है ॥१८-२३॥